वर्ष –02 अंक –05 जनवरी -मार्च –2024 ISSN-2993-4648

शोध उत्कर्ष

Shodh Utkarsh

A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary Quarterly E-Research Journal

जनवरी - मार्च - 2024

https://shodhutkarsh.com/

अतिथि संपादक -डॉ. रेणु सिन्हा

त्रैमासिक ऑनलाइन पत्रिका - शोध उत्कर्ष

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh (RESEARCH ARETE JOURNAL)

शोध उत्कर्ष
Shodh Utkarsh

A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary Quarterly E- Research Journal
वर्ष-02 अंक -05 जनवरी - मार्च - 2024

सलाहकार मण्डल (Advisory Board)

Shri Jai Prakash Pandey
Director-Department of Education And Literacy, Ministery Of Education, Govt.Of India.
Prof. Prabha Shankar Shukla
Vice Chancellor North Eastern Hill University (NEHU) Shillong
डॉ. कन्हैया त्रिपाठी पूर्व (OSD),महामहिम राष्ट्रपति 'भारत'
प्रो. दिनेश कुशवाह,रीवा (म.प्र.)
प्रो. राजेश कुमार गर्ग, प्रयागराज (उ.प्र.)
प्रो. अनुराग मिश्रा द्वारका, नई दिल्ली
प्रो. के. एस. नेताम, सीधी (म.प्र.)
डॉ.एम.जी. एच. जैदी, पन्त नगर (उत्तराखण्ड)
डॉ.राजकुमार उपाध्याय 'मणि' बठिंडा (पंजाब)
डॉ. संगीता मसीह, शहडोल (म.प्र.)
डॉ. अंजनी कुमार श्रीवास्तव, मोतिहारी विहार
डॉ. अनिल कुमार दीक्षित,भोपाल (म.प्र.)
श्री संकर्षण मिश्रा ऊधम सिंह नगर, उत्तराखण्ड
प्रो.एम.यू.सिद्दीक़ी, सिंगरौली (म.प्र.)
डॉ. बी.पी. बडोला (हिमांचल प्रदेश)
डॉ.अजय चौधरी,नागपुर (महाराष्ट्र)
श्री प्रदीप कुमार- मूल्यांकक केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली
डॉ. रेणु सिन्हा,रांची- (झारखंड)
डॉ. निशा मुरलीधरन,वड़पलनी- चेन्नई
डॉ. अंजलि एस. एर्नाकुलम, (केरल)
श्री पांडुरंग एस. जाधव बेंगलुरु, (कर्नाटक)

संपादक मंडल

प्रधान संपादक -डॉ. एन. पी. प्रजापति सह संपादक -डॉ. मंजुला चौहान
कार्यकारी संपादक -प्रो. रीनू रानी मिश्रा डॉ. संतोष कुमार सोनकर (English)
प्रो. (डॉ.) मोहन लाल 'आर्य' डॉ. उमाकांत सिंह

लेख भेजने के लिए –Mail-ID-shodh utkasrsh@gmail.com
पत्रिका के बारे मे विस्तार से जानने के लिए देखें- Website:–http://www.shodhutkarsh.com
प्रकाशक :-
Radha publications **Mail id-**radhapub@gmail.com **फोन** -087505 51515, 9350551515
Website:-https://radhapublications.com **पता :-**4231, 1, Ansari Rd, Delhi Gate, Daryaganj New Delhi, Delhi, 110002

दलित उत्कर्ष समिति द्वारा प्रकाशित

शोध उत्कर्ष
Shodh Utkarsh
A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary Quarterly Research E-Journal
वर्ष-02 अंक -05 जनवरी - मार्च - 2024

Table of Content

S.N. Title and Name of Author(s)	Page No.
संपादकीय ....रेनु सिन्हा	03
1.आधुनिक शिक्षा में संवेगात्मक बुद्धि की उपादेयता एक अध्ययन - **डॉ. राजकुमारी गोला**	4-5
2.दलित कहानियों में संवेदनात्मक पक्ष, परिवर्तन और दिशा - **डॉ. राजकुमारी**	6-9
3.मैं द्रौपदी नहीं हूँ : नारी के अंत:करण की वेदना - **डॉ. प्रवीन कुमार**	9-11
4.भारत राष्ट्र की अर्थव्यवस्था पर युद्ध से होने वाले नुकसान - **डॉ. एन.पी.प्रजापति**	11-13
5.'वसीयत' उपन्यास में अभिव्यक्त वृद्धावस्था जनित अकेलापन, अलगावबोध और स्मृतियां - **पूजा यादव**	14-16
6.एक महायात्रा : भक्ति से प्रेम तक - **सुभाष राय**	17-21
7.छायावादी काव्य जगत में श्री सुमित्रा नन्दन् पंत का स्थान - **षीना.वी.के**	21-23
8.मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री -जीवन के चित्र - **डॉ.सारिका देवी**	23-25
9.प्रो.वशिष्ठ द्विवेदी : एक रचनात्मक व्यक्तित्व - **सीमांकन यादव**	25-26
10.समाज की रूढी-परम्पराओं, झठी शान, आडंबरों से परदा उठाती कहानी- 'परदा'- **डॉ. प्रमोद पडवळ**	26-28
11.कवि डॉ.बृजेश सिंह की ग़ज़लों में अस्मितामूलक विमर्श **-प्रा.रविंद्र पुंजाराम ठाकरे & प्रो.डॉ.अनिता पोपटराव नेरे**	29-30
12.राजस्थानी लोक नृत्यों में ' ढोल नृत्य'- **डॉ. गोविन्द राम**	31-32
13.पंत जी के काव्य में सामाजिक चेतना - **डॉ. कृष्ण बिहारी रॉय**	32-33
14.A Study on the techniques of development of Empathy among the students of Vidya: The living school of Dhemaji, Assam - **Sehnaz Begum & Protim Gogoi**	34-36
15.Globalization as A key Factor of Global Warming and Environmental Crisis - **Barun Das**	37-41
16.संजीव की कहानियों में नारी शोषण के प्रति प्रतिशोध- **पी. एम. आर.जयंती**	42-43
17.The Panchatantra text in Ancient India: A Study - **Saurabh Shubham**	43-44
18.'एक औरत एक जिन्दगी' कहानी की विधवा का जीवन- संघर्ष - **डॉ. पुष्पा गोविंदराव गायकवाड**	45-46
19.Social stigma and questions of mental health of transgender individuals in India-**Dr.Disent Kumar Sahu & Dr. Ravindra Kumar**	46-50
20.भक्ति जागरण में निर्गुण काव्य के प्रवर्तक-संत नामदेव - **डॉ. राजकुमार उपाध्याय 'मणि'**	50-52
21.हिंदी की नवगीत परंपरा का वैशिष्ट्य - **प्रो. चंद्रकांत सिंह**	53-55
22.समकालीन हिन्दी कविताओं में पर्यावरण - **डॉ. सजिना. पी. एस**	56-57
23.मंडा पर्व का विश्लेषण - **देवेंद्र साह**	58-62
24.सेक्स, जेंडर एवं लैंगिकता के आधार पर क्वीर का एक संक्षिप्त अध्ययन - **सलीजा ए पी**	62-64
25.Analysis of Production and Growth pattern of Lentil Pulse crops in the state of Madhya Pradesh- **Jageshwar Prasad Prajapati & Dr. Sunil Kumar Tripathi**	64-67
26.दलित आत्मकथाओं में अभिव्यक्त जीवन संघर्ष - **डॉ. रमेश मनोहर लमाणी**	68-69
27.A CRITICAL STUDY ON THE INQUIRY OF MECHANIC COMPETENCE OF FABRICATE BASE HYBRID COMPOSITES- **Kalyankar Navnath Sambhaji & Dr. Nirmal Sharma**	70-74
28.सोशल मीडिया का गृहणियों पर प्रभाव: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन - **श्रीमती सीमा सोनी**	74-77
29.डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के साहित्य में शिक्षा की भूमिका - **मालती बी.आर.& बृज भूषण गुप्ता**	78-79
30.Constructivist Pedagogy as an Approach to Enhance Meaningful Learning-**Dr.Arun Kumar**	79-81
31.गांधीवादी राजनीतिक चिंतन और भारतीय अर्थव्यवस्था- **पूरन मल मीना & अनिल कुमार शर्मा**	82-83

☆☆☆

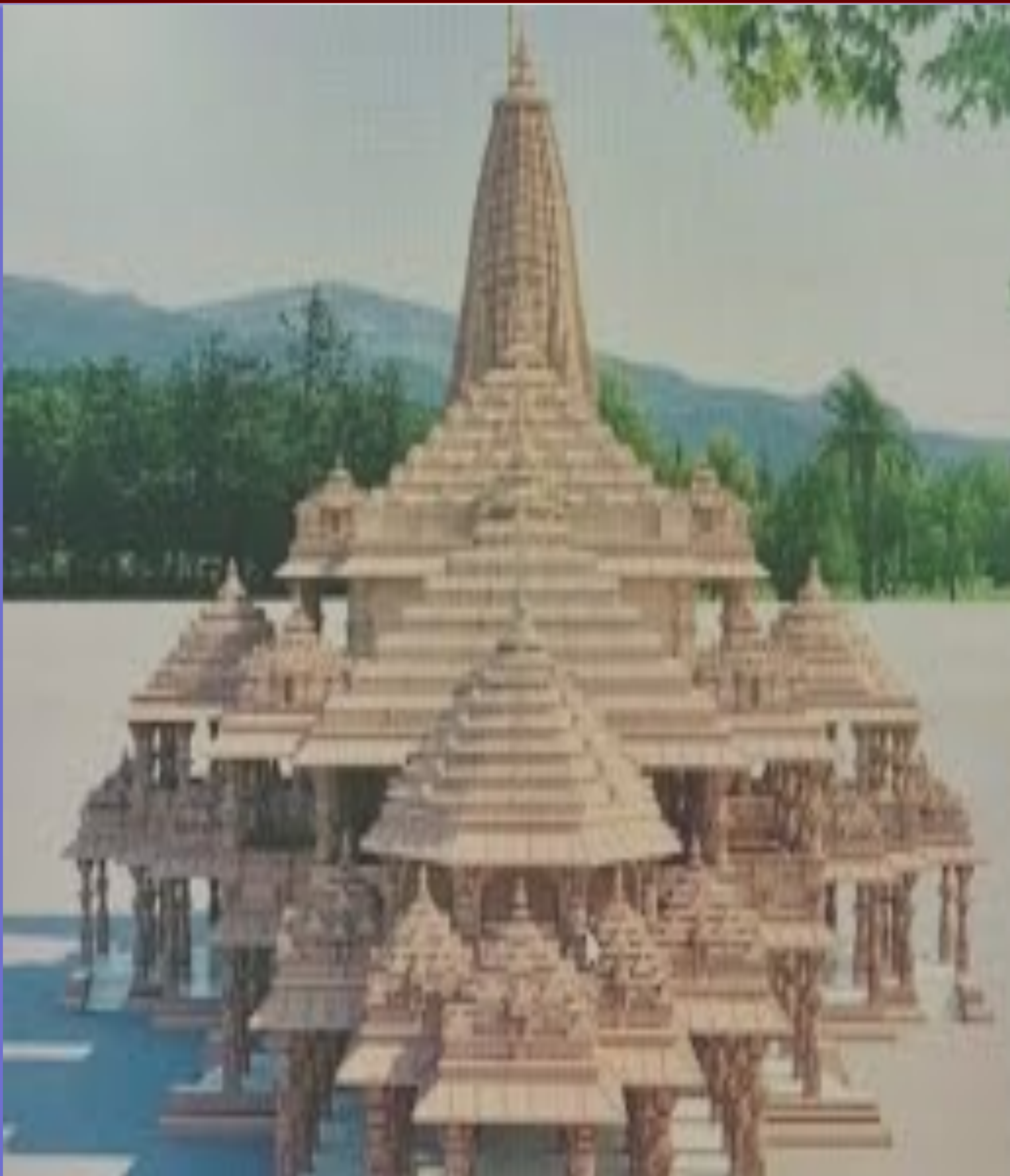

भव्य राम मंदिर – अयोध्या

संपादक की कलम से ------

2024 की शुभकामनाओं को समाहित किया हुआ समयचक्र के साथ सोपान दर सोपान आगे कदम बढ़ाता ई-पत्रिका शोध उत्कर्ष अपनी ऊर्जस्विता को ऊर्जस्वित करता 2024 का प्रथम खंड अंतर्गत पत्रिका पांचवें अंक के रूप में साहित्य प्रेमियों ,शोध अध्येताओं तथा समस्त पाठकों के बीच बखूबी आने को बेताब है ।डिजिटल पटल पर साहित्य तथा अन्य विषयों के विविध शोधालेखों के साथ 'शोध उत्कर्ष' भारतीय साहित्य को एक नये आयाम के साथ जोड़ने में अल्प समय में ही आशानुरूप उत्साह वर्धक सफलता अर्जित किया है --- यह आपका उत्साह और प्रेम ही तो है।

ध्यातव्य है ,पांचवां त्रैमासिक अंक वक्त के कई महत्वपूर्ण तथ्यों को समेटे हुए है ।यह तीन माह समय के घर्घर नाद का एक ऐसा अविस्मरणीय खंड है ,जो अतीत, वर्तमान और भविष्य के लिए बहुत कुछ कहता है। इसमें तीनों काल का स्वर समाहित है ।यह तीन माह मात्र भारतीय पटल पर ही नहीं बल्कि वैश्विक पटल पर भी भारत के धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं नैतिक मूल्यों को पारिभाषित-विश्लेषित करता है ।आम भारतीय जनमानस के मनोविज्ञान को रेखांकित करता है।

प्रथमतः – ऋषि वाल्मीकि के 'राजा राम' हों , या बाबा गोस्वामी तुलसीदास के "सियाराम मय सब जग जानी ,करहुँ प्रणाम जोड़ी जुगपानी" ,संत कबीर के घट-घट व्यापि निर्गुण राम हों अथवा महात्मा गाँधी के सत्य में समाहित 'हे राम' , राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त के " राम तुम्हारा नाम स्वयं ही काव्य है ,कोई कवि बन जाए, सहज संभाव्य है" और तो और बेल्जियम से भारत आये ईसाई कैथलिक धर्म प्रचारक हिंदी सेवी और तुलसीदास के अटूट प्रेमी संत फादर कामिल बुल्के के समन्वयवादी " राम वाल्मीकि कथा के मिथकीय नाम नहीं बल्कि वे इतिहास पुरूष हैं ,जिनकी व्याप्ति सिर्फ भारत ही नहीं पूरी दुनिया में है ---" "राम मानवता के लिए सार्वभौमिक और सर्वार्थ सिद्धिदात्री हैं" या फिर रामानंद सागर निर्मित दूरदर्शन धारावाहिक --- जिसके प्रसारण पर सड़कें निर्जन हो जाया करती थी – 'राम' हों। विगत 500 वर्षों से अपने जन्म स्थान की लड़ाई लड़ते "रामलला विराजमान" ------- हर सांस में ,हर रूप में ,प्रत्येक भारतीय की सोच में (सकारात्मक / नकारात्मक / मिथकीय / दैवीय) ,भारतीय वाङ्मय के आधार बीज स्रोत में विराजमान।

हाँ ,यह सत्य है कि राम भारत के कण-कण में कहीं परमतत्व – परमब्रह्म -परमात्मा ,तो कहीं मर्यादापुरुषोत्तम राम, कहीं सर्वज्ञ निरंजन राम, कहीं सत्य की परिणति राम, कहीं समय की विराटता---- अंततः अवतारी अपने जन्म गृह से वंचित-----उसे एक टक निहारते ,आक्रांताओं के हाथों टुकड़े-टुकड़े हुए बेदखल छत विहीन झोपड़ी में डेरा डाले कलियुग के अदालत में न्याय की गुहार के लिए तर्क-वितर्क करते ,राजनीति का अखाड़ा सजाये करोड़ों परम भक्तों के हृदय में सकारात्मकता की लौ जगाए--- न जाने किस-किस रूप और सोच में बसे अंततः अपने चाहे-अनचाहे प्रतिपक्षियों से विधिसम्मत,कानूनन,सकारात्मक जीत हासिल कर अयोध्या के आलीशान महल में 22 जनवरी 2024 को गृह प्रवेश कर 'विराजमान' हो गए।

हे प्रभु राम ! अद्भुत लीला आपकी -----आपने पुनः पुनः साहित्य और समाज शास्त्र को शोध का ऐसा विराट भंडार रख दिया कि अनंतकाल तक साहित्य सृजनात्मकता और शोध के उत्कर्ष पर चढ़ता चला जायेगा। राम ! आपने इस समय काल में कुछ और प्रमुख तथ्यों को सोचने – विचारने को रख छोड़ा है क्योंकि हम तो आप के समान परमज्ञानी-तत्वदर्शी हैं नहीं ?? हमें तो सोच-विचार करना ही है ------

इन दिनों देश के अंदर भारतीय शिक्षा क्षेत्र में 'नई शिक्षा नीति' (NEP) का व्याख्या – विश्लेषण और उसे सफलतापूर्वक लागू करने की चहल कदमी चल रही है। इस नीति का मूल मकसद राष्ट्र की शिक्षा नियमावली / प्रक्रिया को गुलाम औपनिवेशिक मानसिकता अथवा यूँ कहें – मैकॉले की ब्रिटिश कालीन शिक्षा नीति से निकाल कर भारतीय आवश्यकता एवं संस्कृति के अनुरूप त्रैभाषिक फार्मूला को अपना कर 'सुरसा' की भांति बेरोजगारी की समस्या को गंभीरता के साथ समाप्त करने की ओर उन्मुख होना है । शिक्षा को रोजगारोन्मुख बनाने के लिए सतत क्रियाशील होना है ।युवापीढ़ी को 75 वर्षों से चला आ रहा सरकारी नौकरी के काल्पनिक मोहजाल से उबार कर स्टार्टअप ,स्वरोजगार की ओर उन्मुख करने की है। क्योंकि यह कटु सत्य है ,जिसे हर किसी को समझना होगा कि इतनी बड़ी आबादी में हर किसी को सरकारी नौकरी नहीं मिल सकती। सरकारी नौकरियाँ सीमित है -----। Startup योजना के अंतर्गत भारत सरकार अनेक प्रकार से युवा वर्ग को रोजगार के लिए कार्य योजनाओं को सामने रख रही है ,जरूरत है उसे positive way में समझने की --- इससे युवा वर्ग रोजगार को वैश्विक बाजार वाद से जोड़कर व्यवसाय के माध्यम से अपने को समृद्ध कर सकता है ,जरूरत है प्रोत्साहन की ,सही दिशानिर्देशन की। आज भारत में करीबन 37.14 करोड़ युवा आबादी है इसमें करीब 4 करोड़ 8.2% युवा बेरोजगार हैं ,जो किसी भी विकासोन्मुख राष्ट्र के लिए बहुत ही गंभीर समस्या है। इसे शिक्षा पद्धति में किए गये नई नीतियों को अपना कर निश्चित तौर पर कम किया जा सकता है , जरूरत है प्रोत्साहन की।

इन दिनों विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र भारत के अठारहवें संसद के गठन हेतु चुनाव आयोग का बिगुल बज चुका है। इस चुनावी यज्ञ में भांति-भांति के नगाड़ों का नाद बज रहा है। यज्ञ पूर्णाहुति तक तो 'शोध उत्कर्ष' का छठा अंक आने की तैयारी में जुटा होगा ,परंतु यह पांचवां अंक विविध नाद युक्त नगाड़े की आवाज़ पर गहन गंभीर मंथन के लिए पाठक समूह के बीच सोचने-विचारने तथा पवित्र मतदान के सहारे मजबूत, विकसित, उन्नत राष्ट्र निर्माण के जयघोष का संदेश देता --- इन सबके बीच एक और महत्वपूर्ण राष्ट्रीय पहलू CAA पर व्याख्या-विश्लेषण के मध्य सही सोच विकसित कर भारतमाता को विश्व में पूर्ण विकसित राष्ट्र के रूप में स्थापित करने का सकारात्मक संदेश के साथ कलम को विराम देता ---------

****

दिनांक : 31:03:2024

डॉ रेणु सिन्हा

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 02 अंक– 05 जनवरी - मार्च - 2024 Impact factor– 3

आधुनिक शिक्षा में संवेगात्मक बुद्धि की उपादेयता एक अध्ययन

डॉ.राजकुमारी गोला
असिस्टेंट प्रोफेसर,शिक्षा विभाग
स्कूल ऑफ सोशल साईजिस
आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद

प्रस्तावनाः- शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है। शिक्षा मानव जीवन के सर्वांगीण विकास के साथ-साथ सामाजिक, संवेगात्मक एवं मानसिक विकास का मार्ग प्रषस्त करती है। शिक्षा का लक्ष्य बालक का सर्वांगीण विकास करना होता है बालक के सर्वांगीण विकास के परिवार, विद्यालय, शिक्षा एवं समाज का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। संवेगात्मक बुद्धि को समझने हेतु बुद्धि से आरम्भ करना होता है। संवेगात्मक बुद्धि (इमोशनल इंटेलिजेन्स) स्वयं की एवं दूसरों की भावनाओं अथवा संवेगों को समझने, व्यक्त करने और नियंत्रित करने की योग्यता है। दूसरे शब्दों में, अपनी और दूसरों की भावनाओ को पहचानने की क्षमता, अलग भावनाओं के बीच भेदभाव और उन्हें उचित रूप से लेबल करना, सोच और व्यवहार मार्गदर्शन करने के लिए भावनात्मक जानकारी का उपयोग को संवेगात्मक बुद्धि (इमोशनल इन्टेलिजेन्स) कहते हैं। अपनी भावनाओं, संवेगों को समझना उनका उचित तरह से प्रबंधन करना ही भावनात्मक समझ है। व्यक्ति अपनी 'भावनात्मक समझ ' का उपयोग कर सामने वाले व्यक्ति से ज्यादा अच्छी तरह से संवाद कर सकता है और ज्यादा बेहतर परिणाम पा सकता है। डेनियल गोलमैन की पुस्तक भावनात्मक बुद्धि' (मुउवजपवदंस प्दजमससपहमदबम) ने इस शब्द को को सारे विश्व में प्रचलित कर दिया। इससे पहले बुद्धि लब्धि को ही सब कुछ माना जाता था। अब यह माना जाने लगा है कि एक अच्छी बुद्धि लब्धि वाला व्यक्ति अच्छी सफलता पा सकता है पर सबसे ऊपर पहुँचने के लिए भावनात्मक समझ का होना भी जरूरी है। अच्छी भावनात्मक समझ रखने वाला व्यक्ति कभी भी क्रोध और खुशी के अतिरेक में आ कर अनुचित कदम नही उठाता है।

बुद्धि को सीखने की क्षमता कहा जाता है। अधिक बुद्धि वाला व्यक्ति अधिक गहनता एवं शीघ्रता से सीखने में योग्य होता है। इसके अतिरिक्त इसे 'अमूर्त चिन्तन' के रूप में भी जाना जाता है जिससे परिस्थितियों को समझने में प्रत्ययों एवं संकेतों का प्रभावी उपयोग विशेष तौर पर समस्याओं के समाधान में आंशिक एवं मौखिक संकेतों के द्वारा किया जाता है। कोई भी व्यक्ति, अधिकारी अपने कार्यक्षेत्र में तब ही सफल होता है जब वह अपने मित्रों, सहयोगियों एवं अधिकारियों की समस्याओं एवं परेशानियों को समझ कर उनके साथ व्यावहारिक रूप से पेश आता है। व्यक्ति के व्यावहारिक रूप को निर्मित करने में संवेगात्मक बुद्धि की अहम् भूमिका रहती है। संवेगात्मक बुद्धि द्वारा व्यक्ति में अंतर वैयक्तिक जागरूकता एवं प्रबन्धन का गुण विकसित होता है। संवेगात्मक बुद्धि किसी व्यक्ति में संवेगात्मक योग्यता तथा संवेगात्मक कौशल विकसित करती हैं, जिससे संवेगात्मक सम्बन्धों के निर्वाह में सहयोग प्राप्त होता है। संवेगात्मक बुद्धि को सार्वजनिक रूप में अधिकांश नेताओं के लिए प्रभावपूर्ण बातचीत और ठोस कौशल के लिए जाना जाता है। वे पूरी दुनिया को प्रेरित एवं प्रभावित करने के लिए उनके साथ काम कर सकते हैं। वे अपने तरीके से दूसरों के लिए कुछ समानता निर्मित कर सकते हैं। बुद्धि के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए बैंसलर ने बताया है कि बुद्धि अनेक शक्तियों का समुच्चय है जिसके आधार पर व्यक्ति में प्रयोजनपूर्वक कार्य करने, तर्कपूर्वक सोचने और अपने वातावरण (पर्यावरण) के प्रति उचित प्रकार से व्यवहार करने की समुच्चय योग्यता विकसित होती है। जिससे बुद्धिमान व्यक्ति अनुभव को प्रभावपूर्वक प्रयोग करता है, अधिक लम्बे समय तक अपने ध्यान को लगाये रखने में समर्थ होता है, एक नवीन अपरिचित परिस्थिति के साथ अधिक तेजी, कम असमंजस्य एवं कम गलतियों के साथ अनुकूलन करता है। संवेगात्मक बुद्धि व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण गुणों का एक समूह है जिसके आधार पर व्यक्तियों की तुलना की जा सकती है। संवेगात्मक बुद्धि को आंतरिक प्रतिक्रिया, पस्थितिजन्य प्रतिक्रिया एवं आनुवांशिक प्रतिक्रिया के विकास की तुलना में ज्ञानात्मक प्रक्रिया के स्मृति, बोध, तार्किकता एवं समस्या समाधान के मध्यस्थ के रूप में समझा जा सकता है जिसे संवेगात्मक व्यवहार का उच्च रूप माना जाता है। जिसके आधार पर संवेगात्मक ज्ञान में अधिकता होती है जिससे संवेगात्मक व्यवहार में विभिन्नता दृष्टिगत होती है। डेनियल गोलमैन ने ब्रेन साइंसः एक बायोलॉजी की वर्तमान खोज'' पुस्तक लिखी है जिसमें उन्होंने यह बताया है कि हम लोग एक-दूसरे से तार द्वारा इस प्रकार से जुड़े रहत हैं कि हमारे जीवन के प्रत्येक पहलू पर तथा प्रत्येक संबंध पर इसका गहरा प्रभाव पडता है व्यवहार का विशैला प्रभाव व्यक्ति को क्रोधी, ईर्ष्यालु, कुण्ठित एवं अशिष्ट बना देता है जबकि पौष्टिक (बलवर्द्धक) व्यवहार व्यक्ति को सम्माननीय, प्रामाणिक एवं योग्य बनाता है। ऐसा देखा जाता है कि बहुत से व्यक्ति अपना व्यवसाय खो देते हैं, मित्र खो देते है, जीवन साथी खो देते हैं क्योंकि उनमें संवेगात्मक असामर्थ्य होता है जिससे विषैला व्यावहारिक संबंध विकसित होता है तथा अन्य कारण भी इसके साथ मिल जाते हैं जबकि पौष्टिक व्यवहार द्वारा व्यक्ति में संवेगात्मक बुद्धि का सही रूप विकसित होता है जिससे उनके अधिक मित्र होते हैं, वे अपने व्यवसाय में अधिक सफल होते है तथा अधिक सुखी जीवनयापन करते हैं।

यह एक सार्वभौमिक सत्य है कि हम सभी संवेगात्मकता के लिए बनाये गये हैं और हमारे चारों ओर जो लोग हैं उनके सोच मस्तिष्क से मस्तिष्क द्वारा एक दूसरे से जुड़े होते हैं। हमारी दूसरों के प्रति अनुक्रिया तथा दूसरों की हमारे प्रति अनुक्रिया एक जैवकीय प्रभाव बनाता है तथा हार्मोन को हमारे हृदय से रक्षा तंत्र तक भेजता है जिसमें एक पौष्टिक (अच्छा) संबंध विटामिन की तरह कार्य करता है तथा बुरा संबंध जहर की तरह कार्य करता है। हम दूसरों की भावनाओं की उसी प्रकार पकड़ते है जैसे-सर्दी जुकाम पकड़ते है तथा अकेलापन या एकाकीपन तथा संवेगात्मक दबाव जीवन को संकुचित कर देता है जिससे विषैला व्यवहार विकसित हो जाता है। संवेगात्मक बुद्धि व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण गुणों का एक समूह है जिसके आधार पर व्यक्तियों की तुलना की जा सकती है। संवेगात्मक बुद्धि को आंतरिक प्रतिक्रिया, पस्थितिजन्य प्रतिक्रिया एवं आनुवांशिक प्रतिक्रिया के विकास की तुलना में ज्ञानात्मक प्रक्रिया के स्मृति, बोध, तार्किकता एवं समस्या समाधान के मध्यस्थ के रूप में समझा जा सकता है जिसे संवेगात्मक व्यवहार का

उच्च रूप माना जाता है। जिसके आधार पर संवेगात्मक ज्ञान में अधिकता होती है जिससे संवेगात्मक व्यवहार में विभिन्नता दृष्टिगत होती है। नेन्सी कैन्टर तथा डेनियल गोलमेन ने संवेगात्मक बुद्धि हेतु निम्नलिखित पहलुओं को महत्वपूर्ण माना है-

1. परिस्थिति के अनुरूप निर्णय करना।
2. संवेदनशीलता रखना।
3. व्यवहार कुशलता प्रदर्शित करना।
4. दूसरों की भावनाओं को उचित प्रकार से समझना।
5. प्रतिकूल परिस्थितियों में धैर्य बनाये रखना।
6. अपने व्यवहार से दूसरों को प्रसन्न रखना।
7. जिंदगी में खुशी के पल ढूंढना।
8. संबंधों का सफलतापूर्वक निर्वहन करना।

सांवेगिक बुद्धि का संप्रत्यय बेहद लोकप्रिय हो गया है और जिन व्यक्तियों के पास यह क्षमता है, उन्हें मिलने वाले लाभों की वजह से सतत रूप से लोकप्रिय हो रहा है। इन लाभों में कुछेक निम्नानुसार हैः-

1. यह व्यक्तियों के लिए न केवल चिंतन क्षमताओं का दोहन संभव बनाती है, बल्कि उन सूचनाओं और ताकतों का भी इस्तेमाल करती है जो संवेगों से प्राप्त होती हैं।
2. यह पारंपरिक धारणाओं जो कि कुछेक संदर्भो से संवेगों को त्यागने और अस्वस्थ दमन को प्रोत्साहित करती हैं, के विपरीत संवेगों के प्रति यथार्थवादी और व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाती है।
3. सतही जानकारी से परे, स्वयं और दूसरों की समझ को सुगम बनाती है।
4. सहानुभूति को प्रोत्साहित और सक्षम करती है ताकि पारस्परिक संवादों की गुणवत्ता में सुधार हो।
5. केवल संज्ञानात्मक बुद्धि और तकनीकी कौशल से परे जाकर प्रतिस्पर्धात्मक लाभ प्रदान करती है ताकि व्यक्ति विविध बुद्धियों का उपयोग करते हुए उत्कृष्टता और सफलता प्राप्त कर सके।
6. ऐसे संवेगों जिन्हें संबंधित व्यक्ति किसी विशेष स्थिति में अधिकाधिक अनुभूत करना चाहते हों या अवांछनीय मानकर उनसे पीछा छुडाना चाहते हों, के बारे में अधिक साधन और नियंत्रण की अनुमति देती है। इस तरह निजी संबंधों से लेकर पेशेवर संदर्भो और माहौल तक हमारे जीवन की विविध स्थितियों में सांवेगिक बुद्धि के लाभों के निहितार्थ है।

संवेगात्मक बुद्धि व्यक्ति को अपने समाज के अनुकूल समायोजन करने की प्रभाविता रखने, दूसरे लोगों के साथ प्रभावपूर्ण व्यवहार करने, दूसरों के साथ अच्छा आचरण अपने एवं उनसे मिल-जुलकर रहने में सहयोग प्रदान करती है जिससे व्यक्ति में व्यवहार कौशल विकसित होती है। इसे स्पष्ट करने हेतु कार्ल एलवेरेस्ट ने संवेगात्मक बुद्धि को पांच आयामों में वर्गीकृत किया है,जो निम्न है। कुछ या दूसरों के संदर्भ के साथ सभी मानवीय अन्तःक्रिया स्थान लेती हैं तथा एक के साथ अन्तःक्रिया करने के संदर्भ में विशेषज्ञता संबद्ध करती है। इसलिए इस कारण के अनुसार संवेगात्मक बुद्धि का अर्थ संदर्भ समझना, विभिन्न संदर्भो के मध्य एवं संदर्भो की इकाईयों के मध्य व्याप्त कठिन जानकारी को समझना तथा एक व्यक्ति के उद्देश्यों की प्राप्ति के विभिन्न संदर्भो में आचरण करने की जानकारी रखता है। जबकि दूसरे शब्दों में संवेगात्मक बुद्धि व्यवहार का अनुमान लगाती है जिससे कि हम संवेगात्मक बुद्धि के सूचक (संकेतांक) के रूप में विभिन्न अनुसरण करने योग्य व्यवहार का उपयोग कर सकें। इस प्रकार शिक्षा व्यवस्था में संवेगात्मक बुद्धि की उपादेयता स्वतः स्पष्ट होती है।

निष्कर्षः-

निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि आधुनिक शिक्षा में भावनात्मक बुद्धिमत्ता की भूमिका शैक्षणिक उपलब्धि से आगे बढ़कर छात्रों के समग्र विकास और कल्याण को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सहानुभूति, लचीलापन और प्रभावी पारस्परिक कौशल को बढ़ावा देकर, शैक्षणिक संस्थान छात्रों को न केवल शैक्षणिक रूप से बल्कि उनके व्यक्तिगत और व्यावसायिक जीवन में भी सफल होने के लिए आवश्यक उपकरणों से लैस कर सकते हैं। शैक्षिक ढांचे में भावनात्मक बुद्धिमत्ता को एकीकृत करने से न केवल अधिक सहानुभूतिपूर्ण और समावेशी सीखने का माहौल तैयार होता है, बल्कि छात्रों को 21 वीं सदी की लगातार विकसित होने वाली चुनौतियों में सक्षम जिम्मेदार वैश्विक नागरिक बनने के लिए भी तैयार किया जाता है।

****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः-

1.Barnes, M.L., & Sternberg, R.J. (1989): Emotional intelligence and decoding of nonverbal cues. Intelligence.
2.Coleman, Andrew (2008). *A Dictionary of Psychology* (3 संस्करण). Oxford University Press. ISBN: 9780199534067.
3.Feldman, D. A. (1999): The Handbook of Emotionally Intelligent Leadership: Inspiring Others to Achieve Results, Leadership Performance Solutions Press, Falls Church, VA.
4.Goleman, Daniel (1995): Emotional Intelligence: Why It Can Matter More Than I.Q. New York: Bantam.
5.Goleman, D. (1998): Working with Emotional Intelligence, Bantam Books, New York.
6.Guilford, J.P. (1967): The nature of intelligence. New York: McGraw-Hill.
7.Guilford, J.P. & Hopener R. (1971): “The Analysis of Intelligence”, New york, McGraw Hill, 1971.

दलित कहानियों में संवेदनात्मक पक्ष, परिवर्तन और दिशा

डॉ. राजकुमारी
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (हिन्दी)
ज़ाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज (सांध्य)

मनुष्य और साहित्य की किसी भी विधा का मूलभूत आधार होती हैं, अपनी ज्ञानेंद्रियों के द्वारा ही मनुष्य जो सुखानुभूति और दुखानाभूति करता है। उसकी अभिव्यक्ति ही वह रचना में करता रहा है। हिन्दी साहित्य में कथाओं का वृहद इतिहास रहा है, कभी कथाएं मौखिक तो कभी लिखित रूप में रही हैं। पाश्चत्य देशों से प्रारंभ हुई इस विधा ने हिन्दी साहित्य को अत्यंत प्रभावित किया और अंग्रेज़ी कथाओं का प्रत्यक्ष प्रभाव भी हिन्दी कथासाहित्य पर सप्ष्ट रूप में परिलक्षित होता है। आधुनिक युग संवेदना में कहानी विधा का हिन्दी साहित्य में आगमन हो चुका था। भारतेंदु युग के अंतिम दशक में इस विधा की उत्पत्ति हो चुकी थी। प्रारंभिक कहानियों में सामाजिक कुरीतियों और समाज सुधार का स्वर दृष्टव्य होता है।

"आज की हिन्दी कहानी गतिशील है, आधुनिकता की चुनौती को स्वीकार कर रही है और आधुनिकता एक प्रक्रिया है जिसे नई कहानी ने मूल्य में परिणित कर इसे रूढ़ बनाया है। इसीलिए नई कहानी अपने नयेपन को छोड़कर नए नाम धारण करने को विवश है।"[1]

नयापन और नवजागरण दलित साहित्य में भी बखूबी उभरा है, कविता, उपन्यास और कहानी, नाटक आदि विधाओं के रूप में इसे देखा जाता रहा है। इसी परम्परा में कथा के क्षेत्र में एक ख्याति प्राप्त नाम है रतनकुमार सांभरिया।

साहित्यकार सांभरिया दलित साहित्य लेखन के अप्रतिम साहित्यकार हैं। उनकी कहानियों की विषयवस्तु में सामाजिक शोषित व्यक्तियों के संवेदनात्मक पहलुओं के साथ अस्मिताबोध, चेतना और आत्मचिन्तन की छवि प्रत्यक्ष नज़र आती है। वर्तमान युग में हाशिए पर खड़े समुदाय और जातियों के अविकसित समाज की यथार्थ अभिव्यक्ति कथाओं में हुई है। एक ओर जहां बंजारे, कंजर, सपेरे, जैसी समस्त कहानियां खानाबदोश जीवन जीने वाली जातियों के खुरदरे जीवन के कटुतापूर्ण सत्यों का उदघाटन करती हैं तो वहीं दसरी ओर आंचलिक जीवन में सामान्य श्रमिक, लघु उद्योग से जुड़े लोगों, जातीय पेशे से जुड़े समाज, विधवा जीवन, स्त्री जीवन, विदुर पुरुष और वृद्धावस्था में कठिन परिस्थितियों में गुजरती जिंदगी और उनके साथ हो रहे मानवीय व्यहार के सत्य को चित्रित करती कहानियां हैं, संवेदना की आत्मिक अभिव्यक्ति उनकी कहानियों में हुई है। उनकी कथाओं में सशक्त बात ये भी है कि एक ओर यथास्थिति के अनुकूल नारी पात्र अपने निर्णय स्वयं लेते हैं, तो वहीं दसरी ओर अंतर्विरोध की स्थिति से निपटना भी भली- भांति जानते हैं। विपरीत परिस्थियों से जूझते जरूर हैं किंतु निराशावाद का दामन थामने के लिए विवश नहीं होते। जैसे - जैसे कथा आगे बढ़ती है रोचक होती चली जाती है। पाठकों को मुग्ध करने की सारी गुणवत्ता कथाओं में निहित है और वही उनके कथानक को सुदृढ़ बनाती है। संघर्षरत पात्रों को निर्मिति परिवेश की जटिलताओं को साहसपूर्वक पार करती है। आंचलिक क्षेत्र में जातीयता की जटिलता, शोषण की पराकाष्ठा, अपमान की लीक , संघर्ष का संकल्प, जन चेतना, खानाबदोश जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति को बड़ी ईमानदारी के साथ कथाकार ने शब्दबद्ध किया गया है।

सांभरिया की कहानियों में भी नारी शोषण, भारतीय जन जीवन, वर्ग संघर्ष, मानवीय मूल्यों की स्थापना, मानवीय संबंधों में उभरता द्वंद, बहुत गहन चिंतन हृदय को गहराई से प्रभावित करता है। कहानियों के कथ्यों में चेतनता के स्वर उभरते हैं। वृद्ध सेवक जी अपने घर को वृद्धों के लिए वृद्धाश्रम बना देते हैं, ये उनकी जिंदगी से मिले सबक से वो सीखते हैं कि बुजुर्ग होने पर एक सहारे की अवश्यकता होती है। ' आश्रय ' कहानी का कथानक इसी मूल भाव को रुपायित करता है। सेवक का बेटा जो शहर में निवास करता है वो पिता के उस रहन घर का भी सौदा करना चाहते हैं जिसमें सेवक जी दीन दुखी, रोगग्रस्त वृद्ध व्यक्तियों को आश्रय दिए हुए हैं जिन्हें उनके परिवार त्याग चुके हैं, रिटायरमेंट और पत्नी की मृत्यु के पश्चात वे धन और मन दोनों से ही बेसहारा लोगों के जीवन का संबल बने उदारवादी भावना से ओतप्रोत सेवक अपने बेटे परमेश्वर का कंधा थपका कर कहते हैं - "परमेश्वर जी, रिटारमेंट के बाद मुझे लगा कि बहु बेटे पर आश्रित होने की बजाय मेरा घर और धन बुजुर्गों का आश्रय बन जाए। आप जब भी आश्रय आएं, बेसहारा को जरूर लाएं।"[2]

पिता की गीली आंखों और इन शब्दों ने अपनी अंतर्वेदना के बहाव को बहा दिया। अप्रत्यक्ष रुप में उस मकान को न बेचने की घोषणा भी कर चुके थे। उनकी कहानियां नए सोपानों को स्पर्श करती हुई आगे बढ़ती हैं नारी पात्र जीवन की विभिन्न चुनौतियों को स्वीकार करते हुए आजीवन संघर्षशील बने रहते हैं। अस्मिता की धुरी पर घुमती स्त्रियां बहुयामी व्यक्तित्व में दिखाई पड़ती हैं।

भारतीय कृषक वर्ग, गरीब किसानों की पीड़ा को दर्शाती कहानी ' खेत ' जिसके माध्यम से कथाकार अपनी ज़मीन खोने की टीस लिए हैं, सड़क के किनारे स्थित ज़मीन हो या सड़क से दूर किसान का लगाव उससे मां सरीखा होता है, उसी के सहारे से अपने परिवार का लालन-पालन करते हैं। ज़मीन उनकी जिंदगी होती है। औद्योगिकीकरण के कारण

'पूंजीपति वर्ग की पैनी नज़र उसी ज़मीन पर गड़ी रहती है जहां वे अपने लाभ हेतु कारखाने, मॉल निर्मित कर एक उद्योगिक नगर बनाकर अपनी आर्थिक स्थिति को अधिक मज़बूत कर सकें, किंतु इसके परिणामस्वरूप आर्थिक रूप से कमज़ोर किसान बलि का बकरा बन जाता है। हथौड़ा ' कहानी "मूर्तिकार पत्थर पर बैठकर उसे मूर्ति बनाता है। मंदिर में जब मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा हो जाती है, वह उसे छू तक नहीं पाता है। मजूर की नियति। अपना श्रम स्वेद दफन कर जिस मकान का निर्माण करता है, नांगल मंगल के बाद उसी में जाते पीछे हटता है।"[3]

समाज में एक ये भी परंपरा रही कि खेत मजदूरी में जाने वाले निम्न जाति के लोग जिनके खेतों में काम करते उन्हें अपना जमींदार और वे उन्हें अपने चमार, नाई होने का हक जमाते थे वे उनके अतिरिक्त किसी अन्य बड़े परिवारों का काम नहीं कर सकते थे। वैसा ही एक उदाहरण हमें ' चमरवा ' कहानी में प्राप्त होता है चमारवा एक ऐसी जाति है जो पूर्वी और हरियाणा के पश्चिमी छोर पर रहती है, चमरवा एक बाभन जाति है जो चमारों के कर्मकांडो को पूर्ण कराते रहे हैं और अपना गुजर बसर करते हैं किंतु उसकी पहचान चमारों के बीच ब्राह्मण और ब्राह्मणों के मध्य चमार की है। प्रस्तुत कहानी में दरपन ब्राह्मण का पुत्र अपने दोस्त के मशवरे पर नौकरी के लिए जाति प्रमाण पत्र बनवाता है दरपण को इस प्रमाण पत्र को देखकर क्षोभ और झल्लाहट से भरकर क्रोधित हो उठता है और जातीय घृणा के कारण बौखला उठता है - " करण के हाथों ' चमार' का प्रमाण पत्र देखकर दरपन की आँखें मशाल बन गई। बाज़ परिंदे भी इतनी तेज़ नज़र नहीं खोजता होगा, जितना दरपन ने करण के हाथ पर झपटा मारा, प्रमाण पत्र फाड़ कर चिंदियां की और चूल्हे की जलती आग में भाड़ में भूसे की तरह झोंक दी, चमार बनने चला बेवकूफ।"[4] रस्सी जल गई पर बल नहीं गया। जातीय दंभ भरने वाले दरपन का पेट हालांकि चमारों के कर्मकांडो से चलता है उनका दिया खाते हैं , लेकिन जाति प्रमाण पत्र को देखकर उनके अन्दर निम्न जाति के प्रति घृणा की पराकाष्ठा देखने को मिलती है। मृत्यु के वक्त अछूतपन की भावना भी सपष्ट दिखाई पड़ती है।

कहानीकार अपनी कहानियों में सामंतवाद से टकराते सजीव पात्रों का भी चित्रण करते हैं और निम्न जातियों में सामाजिक चेतना का विकास भी करते हैं। उन्होंने गैर दलित समाज के व्यवहार को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। अत्याधिक लोग जातीय अभिमान में इंसानियत को भूला दिया गया है।'बात ' जैसी कहानी में विधवा सुरती मर्द की तरह अपनी दी गई ज़बान को पूरा करती है और अपने बेटे की पढ़ाई के साथ - साथ अपनी इज्ज़त की रक्षा भी कर लेती है, इससे ये सिद्ध होता है कि ज़बान का पक्का होने में कहीं भी लिंग का कोई महत्व नहीं होता। वह स्त्री -पुरुष कोई भी हो सकता है। गरीब की भी इज्ज़त आबरू होती है तथा वह मेहनतकश भी है, यही कारण है कि सुरती अपने स्वाभिमान को सुरक्षित रख पाती है। असल में वह भारत की हर श्रमिक स्त्री के स्वाभिमान का प्रतिनिधित्व करती है।

' काल ' कहानी भारतीय गरीब किसान की व्यथित कथा है जिसमें सूरदास बैल को भूख प्यास से राहत दिलाने के लिए खूंटे से खोलकर न चाहते हुए भी आज़ाद कर देता है ताकि वह मर न जाए, किंतु कुएं के निकट स्थित सूरदास बैल की मौत अकाल के कारण भूख प्यास से हो ही जाती है। जो मनुष्य और जानवर दोनों की विवशता और मौत का परिदृश्य दिखाती है।

कहानीकार अपनी कथाओं के माध्यम से भारतीय आंचलिक, शहरी क्षेत्रों के समाज में अपनी मज़बूत जड़े जमा चुकी विद्रूपताओं, पिछड़ेपन की जटिलताओं को चित्रित करते हैं। जनजातियों की दशा, सामंती मानसिकता, अभावग्रस्त जीवन, अकाल के समय की त्रासदी, भ्रष्टाचार की दिन ब दिन बढ़ती स्थिति ग्रामीण और देश की राजनीतिक स्थिति , जीवन में तीव्रता से हो रहे परिवर्तन आदि विभिन्न पहलुओं को जीवंत वातावरण के साथ प्रस्तुत करते हैं। स्त्रियों में अपनी अस्मिता को लेकर संजीदापन, अपने अपमान के प्रति प्रतिरोध, स्वर मुखरित करने की हिम्मत बा- कमाल है। शोषित वर्ग में चेतना, मनोवैज्ञानिक बदलाव, उनकी सक्रिय भूमिका को उभारते हैं। सभी कथाएं कालक्रमानुसार आए परिवर्तन का सार्थक निरूपण हैं।कथ्य में नवीनीकरण मिलता है,भाषा में ठेठ खड़ी बोली, राजस्थानी के शब्द प्रयोग हुए हैं,
"जीवन पचासेक के नीडे था।"[5]
खाट, गुदड़गाबा, चौसड़, आदि शब्द
गुण, शब्द शक्ति, लोकोक्ति, मुहावरे सभी उनके लेखन के मज़बूत पक्ष हैं। वर्णनात्मकता, प्रवहमयता, बिंब, ध्वन्यात्मकता, प्रतीकात्मकता ,कलात्मकता कथा उद्देश्य, शिल्प को विशिष्टता प्रदान करता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि उनकी कहानियों में आंचलिक मिट्टी की गंध समाई है, संवेदना पक्ष जनमानस के भावों का आदान-प्रदान करने में सफ़ल है। उनकी राजस्थानी, मेवाती मिश्रित भाषा उनके कथा संसार को सजीव बनाती है। सभी कहानियां सुन्दर सौष्ठव लिए सफ़ल कहानियां हैं।

'पाठशाला' युवा कथाकार सुनील पंवार की वर्ष 2018 में लिखित कहानी है। कहानी का परिवेश राजस्थान का क्षेत्र है। लेखक ने जहां एक ओर सामाजिक कुरीतियों और रीति-रिवाजों को दृष्टिगत कराया है, वहीं दूसरी ओर समाज के परिवर्तित स्वरूप व दलित चेतना को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया है। कहानी 'पाठशाला' में नयापन ये है कि इसमें समयाएं एवं समाधान दोनों ही मौजूद हैं। शिक्षा के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन होंगे ये सुनिश्चित किया गया है। शिक्षा से दृष्टिकोण बदलेंगे और फिर नवजागरण से देश बदलेगा; यही दशा और दिशा कहानी की विषयवस्तु है। कहानी के मुख्य पात्र 'सुखिया' के द्वारा बाल मन की जिज्ञासाओं ने प्रश्न को जन्म दिया और तर्क ने एक दिशा। पाठशाला में जाते समय बालक सुखिया की परेशानी, मन की उलझन, पाठशाला जाने से बचने की तरकीबें, कथा को रोचक बनाती हैं। घर से पाठशाला तक

पहुंचने से पूर्व मध्य मार्ग में कहानीकार ने कथा के मूल पात्र सुखिया की बौद्धिक क्षमता, पाठशाला न जाने के भिन्न-भिन्न बहाने, उसकी जिज्ञासा से उपजी तर्कशील बुद्धि, बाई में बापू को समझाने की क्षमता की पहचान व हाज़िरजवाबी का बेजोड़ चित्रण किया है। उसकी शिक्षा से कहीं अधिक गृहकार्यों में रुचि, बाई को प्रसन्न करने और रीति-रिवाज पर प्रश्न खड़े करने की अद्भुत शक्ति को कथाकार ने सूझबूझ के साथ लिखा है। बाई स्कूल नहीं जाती वह जानता है, बाई सारा दिन काम में व्यस्त रहती है इसलिए वह उनके मर्म को पकड़ कर उनकी फिक्र में घर के काम में हाथ बटाने की तरकीब लड़ाते हुए फिक्रमंद होने का नाटक करता है। तब बाई सुखिया की चालाकी को पहचानते हुए कहती है- "तू मेरी फिक्र न कर सुखिया, मेरा क्या है मैं तो पराया धन हूं, बापू मेरा ब्याह कर देगा, तो मैं चली जाऊंगी।"[6]
बाल मन चिंताग्रस्त होकर एक और प्रश्न कर बैठता है-
"तुम कहां चली जाओगी बाई?" सुखिया ने बड़े आश्चर्य से पूछा।
"अपने घर... और कहां?" बाई ने उत्तर दिया। "तुम्हारा घर? वह कहां है बाई?" सुखिया ने कौतूहल से पूछा।
"म्हारे सासरे में।" बाई ने हल्की सी हँसी के साथ ज़वाब दिया।
"तो क्या बापू का घर तुम्हारा नहीं है?"[7]
"नहीं!" "ये पराया धन क्या होता है?"
"बेटी पराई होती है। वो ब्याह के बाद दूसरे घर चली जाती है, जैसे मां नानी का घर छोड़कर हमारे घर आई।"
"बापू मेरा ब्याह कर देगा तो क्या मैं भी चला जाऊंगा?" सुखिया के मासूम सवाल में बड़ा आश्चर्य था एवं स्त्री मन की दृढ़ता और स्वीकार्यता भी। वह खुद को पराया मान चुकी है। यह बात सामाजिक परंपरा ने उसे सीखा दी है। "हा हा हा! बावले! छोरे थोड़े ही जाते हैं, बेटियां होती हैं पराई।"[8]बाई उसे समझाती है। परम्पराओं ने दर्शाया है कि स्त्री धन है, संपत्ति है। वह मनुष्य नहीं बल्कि अपनी इच्छा एवं अधिकार से वंचित एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजी जाने वाली वस्तु मात्र है। वह केवल पुरुष की सत्ता की वाहक, इससे अधिक कुछ नहीं। दोनों बहन-भाइयों के बीच बेहद रोचक संवाद शैली है, जो पाठकों में रुचि पैदा करने के साथ ही भेदीय नीतियों का भी खुलासा करती है। "बाई। तुम बापू को समझाती क्यों नहीं? मैं पढ़-लिखकर क्या करूंगा?" सुखिया ने एकाएक बाई से पूछा- "तू अनपढ़ रहकर भी क्या करेगा?" बाई ने सवाल का ज़वाब सवाल से दिया। "मैं खेत में बापू की मदद करूंगा। तुम्हारी काम में भी मदद करूंगा और मां का भी हाथ बटांऊगा।" उसने चतुराई से ज़वाब दिया।[9] "बाई...! अगर मैं रोज पाठशाला जाऊंगा, तो तुम्हारे साथ पानी लेने कौन जाएगा? बापू की रोटी देने खेत में कौन जाएगा? तुम बिल्कुल अकेली हो जाओगी बाई।" सुखिया ने बाई को काम का प्रलोभन दिया ताकि बाई अपना इरादा बदल दे और उसे पाठशाला के झमेले से मुक्ति मिल जाए। वह बातें बनाने में तो बहुत माहिर था, किंतु आज बाई के सामने दाल गलती नज़र नहीं आ रही थी। बाई निरक्षर होने के बावजूद भी शिक्षा के महत्व को समझती है यही मूल कारण है कि वह सुखिया का दाखिला करवाने पाठशाला जाती है।

सुखिया की मां बाई ही थी ये तो कहानीकार ने लिखा लेकिन क्यों थी ? ये सपष्टिकरण पूरी कहानी में कहीं भी नहीं लिखा गया। मां जीवित थी या नहीं थी? कामकाज से घर से बाहर रहती थी? इसलिए वह बड़ी बहन होने के नाते देखभाल करती थी? या बीमार थी? इस बात का कोई भी संकेत कथा में नहीं मिलता। बाई जो की लड़की है और निम्न वर्ग से संबंध रखती है, पराया धन भी है शायद यही कारण है कि वह पाठशाला नहीं गई या उसे पाठशाला नहीं भेजा गया। कहानी का प्रथम भाग यही है।

दूसरे भाग में पाठशाला के बाह्य रूप को चित्रित किया गया है। गांव देहात की कच्ची मिट्टी की दीवार वाली लोहे की सलाखों वाला गेट, सफेदी से अंदर की लीपी-पुती दिवारें, पेड़ों के नीचे लगी कक्षाएं, पानी के मटकों की हालत, वातावरण की वास्तविकता और सरकारी स्कूलों की जर्जर हालत को बयान करती है। सुखिया की शरारतों और बौद्धिक शक्ति से गुरू जी भी परिचित हैं, किंतु सामाजिक बाध्यताओं के आगे वे भी बेबस हैं। यही कारण है कि वे सुखिया को पढ़ाने को राज़ी तो हुए परन्तु शर्त पर कि टाट और पानी ख़ुद का होगा। क्यों कि वो पढ़े लिखे तो हैं किंतु सामाजिक परंपराओं से टकराने की ताकत उनमें भी नहीं है। दूसरी महत्वपूर्ण बात ये थी कि वह गांव का पहला बच्चा था, जो नीची जाति से विद्यार्थी जीवन में भी प्रवेश करने वाला था। शिक्षक किस जाति से संबंध रखता है इसका भी कोई ब्यौरा नहीं दिया गया जो कहानीकार का शुरुआती कहानी होने के कारण क्षम्य है या अंडरस्टूड बात मान सकते हैं। लेखक शिक्षक और शिक्षा पर बहुत अहम सवाल खड़ा करते हैं कि शिक्षा भी सामाजिक वर्ण विभाजन, रीति- रिवाज, जाति भेद, लिंग भेद नहीं बदल पाई। लेकिन गुरू जी इस बात का आश्वासन देते हैं कि भविष्य में ये होगा। शिक्षा केवल सामाजिक कायाकल्प ही नहीं करेगी वह वैचारिक काया भी पलट देगी। गुरू जी एक शिक्षक होने के नाते सर्व मानवाधिकार सुखिया को देते हैं। कथा स्वतंत्र भारत की पृष्ठ भूमि में लिखी गई है इसीलिए बहुत सहजता से विद्यालय प्रवेश तो हो गया, परंतु उच्च जाति का भय अब भी गले की फांस बनी हुई है। गुरू जी अपने शिक्षक होने के कर्तव्य का भली-भांति पालन कर रहे हैं। सहयोगी के रूप में अपना योगादान, स्थिति और गलत परम्पराओं से बाहर निकलने की दिशा दे, सुखिया का मार्ग दर्शन ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण समाज की गलत परम्पराओं से मुक्ति का प्रतिनिधित्व भी कर रहे हैं। वहीं कहानी को नया मोड़ देने के लिए लेखक ने सुखिया की वेशभूषा सफ़ेद कमीज़ को, जिसका जिक्र विषयवस्तु के आधार पर कहानी में पूर्व में भी होना चाहिए था, किन्तु नहीं हुआ। ऐसा लगता है जैसे कहानीकार को यकायक इसे लिखने की जरूरत पड़ी, ताकि कथा के उद्देश्य की पूर्ति हो सके। अंतिम भाग में डॉ.आंबेडकर के स्लोगन से चमकती दीवार शिक्षा की ताकत का महत्व बता रही है। "सुखिया देखो, अपने पीछे की इस भीत को देखो।

जब तुम पाठशाला आए थे, तब क्या ये भीत ऐसी ही थी?" "नहीं।" 10 सुखिया ने पलटकर भीत को देखा जिस पर सफ़ेदी पुती थी, जिसने दिवारों और गिरे हुए लेवड़ो को ढक दिया था और उस पर मध्यम, मध्य में नीले रंग का अशोक चक्र बना था व नीचे बड़े बड़े सुंदर अक्षरों से महापुरूषों के कथन अंकित थे। सुखिया उस कथन को तो पढ़ नहीं पाया किंतु भीत को देखकर उसे अच्छा लगा।

"अब ये दीवार अच्छी दिख रही है न?"

"हां, गुरू जी।"

"देखो। चार अक्षर लिखने के बाद ये भीत भी बोलती हुई नज़र आ रही है। इसकी दरारें, इसकी जर्जरता सब इन अक्षरों के नीचे दब गई है न?"

"हां, गुरु जी।"

"बस यही बदलाव लाएगी। तुम्हारी पढ़ाई-लिखाई। जिसने दीवार को जीवंत कर दिया वह एक दिन रीतियों, कुरीतियों, जाति, वर्ग और सामाजिक व्यवस्था की सभी दरारों को ढक देती। नीला रंग क्रांति का, धोला रंग शांति का। ये दोनों ही शिक्षा से संभव हो सकेंगे। समय के साथ बदलाव ज़रूर होंगे सुखिया, ज़रूर होंगे।" [11]

कहानी सफ़ेद और नीले रंग के व्यापक अर्थ को दृष्टिगत कराती है। बालमन को आंदोलित कर मुक्ति की आस, सपने जगा रही है। समस्या और समाधान दोनों ही कहानी में हैं। कहानी में तर्कसम्मत विवेचन, कहानीकार की विचारक, चिंतक छवि का बोध भी कहानी कराती है।

प्रगतिशील कहानी है, जो स्वस्थ मानसिकता वाले समाज की परिकल्पना लिए है। संवादों की जितनी प्रशंसा की जाए उतनी कम है। कहानी पूर्णतः अधिकार चेतना, सामाजिक चेतना व समानता की बात करती है व गैर दलित जाति के इंसान के दलित समाज के सहयोग को स्थापित करती कथा है। कहानी संवाद, शैली वैविध्य, मौलिकता व आत्मीय स्वर लिए है। कहानी संवादों से आरंभ होकर भविष्य के उज्ज्वल सपने और नई सुबह जो नया प्रकाश फैलाएगी; पर अंत की गई है। कथावस्तु, गठन, वाक्य संरचना, व्यंग्य विनोद व सपाटबयानी कहानी की गुणवत्ता है। इसके लिए कहानीकार श्लाध्य योग्य हैं।

****

संदर्भ :-

1. हिन्दी कहानी एक नई दृष्टि - इंद्र मदान - पृष्ठ -35
2. समकालीन भारतीय साहित्य - पत्रिका मार्च, अप्रैल अंक -2021
3. हथौड़ा - 135
4. चमरवा रतनकुमार सांभरिया की प्रतिनिधि कहानियां,डॉ. लोकेश गुप्ता पृष्ठ - 44
5 - खेत और अन्य कहानियां संग्रह - रत्नकुमार सांभरिया - पेज - 90
6. एक कप चाय और तुम (कहानी संग्रह)- सुनील पंवार -73
7. एक कप चाय और तुम द्वितीय संस्करण - सुनील पंवार - 73
8. एक कप चाय और तुम - " - सुनील पंवार -74
9. एक कप चाय और तुम - " -सुनील पंवार - वही
10. एक कप चाय और तुम - (कहानी संग्रह) सुनील पंवार - 75

मैं द्रौपदी नहीं हूँ : नारी के अंत:करण की वेदना

डॉ प्रवीन कुमार
सहायक प्रोफेसर (हिंदी)
राजकीय महाविद्यालय सिधरावली,मो.9811401368

'मैं द्रौपदी नहीं हूँ' डॉ. ज्ञानी देवी जी का प्रथम कहानी-संग्रह है। इस कहानी-संग्राह में हमें ज्ञात होता है कि नारी की जीवनशैली में आज भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। उसे आज भी पूर्वकालों की तरह दासी ही समझा जाता है। वैदिककाल में नारी की स्थिति उत्तम थी, परंतु जैसे-जैसे दास वर्ग का जन्म हुआ है, स्त्रियों की पारिवारिक एवं सामाजिक स्थिति में पतन आरंभ होता गया है। सेवा ही नारी का मुख्य कार्य बन गया, यद्यपि घर का सारा काम एवं व्यवस्था अभी भी स्त्री के हाथों में है, परंतु अपने मूल अधिकारों से वह अभी तक वंचित है।

सामंती समाज में स्त्री को तीन नाम दिए गए थे-पत्नी, रखैल, वेश्या। इसके अलावा वह किसी चौथे संबंध को स्वीकार नहीं करता है यथा-

...जब औरत को वह संरक्षण यानी रोटी, कपड़ा और मकान देने के साथ अपना नाम देकर सामाजिक स्वीकृति देता है तो वह उसे पत्नी कहता है लेकिन जब संरक्षण देकर अपना नाम नहीं देता तो वह रखैल है।"[1]

शेक्सपियर जैसे महान विद्वान ने कहा है-'नाम में क्या रखा है? लेकिन क्या आपने कभी किसी को अपनी बेटी या पोती का नाम द्रौपदी रखते हुए सुना है? सीता, रमा, लक्ष्मी, दुर्गा यहाँ तक की काली नाम की लड़की आपको मिलेगी, लेकिन द्रौपदी नहीं मिलेगी। शायद इसीलिए लेखिका ने अपने काव्य-संग्रह का नाम 'मैं द्रौपदी नहीं हूँ' रखा है। कहानी संग्रह का शीर्षक ही इतना जिज्ञासावर्द्धक है कि पाठक अनायास ही इस कहानी संग्रह को पढ़ने के लिए खिंचा चला आता है। इस कहानी संग्रह के माध्यम से लेखिका उन सभी रूढ़िवादी परंपराओं को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए प्रयासरत है, जिन्होंने नारी-जीवन के विकास को अवरुद्ध किया है।

'मैं द्रौपदी नहीं हूँ' कहानी एक पहाड़ी लड़की की पीड़ा और विवशता को व्यक्त करती है, जिसका विवाह हरियाणा प्रदेश के कुरुक्षेत्र जनपद के एक अधेड़ व्यक्ति के साथ कर दिया जाता है। श्रेष्ठा नाम की यह सुंदर लड़की अपनी पीड़ा को एक चित्रकार के समक्ष व्यक्त करते हुए कहती है कि मैंने अपनी नियति समझकर अधेड़ उम्र के पति को स्वीकार कर लिया था, परंतु दूसरी रात मेरे कमरे में मेरे पति की जगह कोई दूसरा व्यक्ति आता है। मैं उसका विरोध करती हूँ तो वह कहता है-'... वह तुम्हारा पति किस-किस को जान से मारेगा। कल तुम्हारे पास तीसरा आएगा, परसो चौथा व नरसो पाँचवाँ...। वह अकेले थोड़े ही तुम्हारा पति है? फिर, हमें बाहर निकालने वाला यह कौन है? हम पाँचों ने तुम्हें मिलकर खरीदा है।....यह कुरुक्षेत्र की भूमि है, यहाँ द्रौपदी जैसी राजकुमारी के भी पाँच-पाँच पति थे, फिर तुम्हारी तो औकात क्या है?' [2]

इस तरह अगली प्रातः श्रेष्ठा वहाँ से भाग आती है। वह चित्रकार को आपबीती सुनाते हुए कहती है कि-- बाबूजी, आप ही बताइए, क्या द्रौपदी बार-बार जन्म लेती रहेगी? नहीं ना? मैंने उन्हें छोड़कर क्या बुरा किया बाबूजी? मैं द्रौपदी नहीं दनना चाहती थी।' [3]

'काश' नामक कहानी में भ्रूण हत्या की समस्या के द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि नारी पर अत्याचार उसके जन्म लेने से पहले ही

प्रारंभ कर दिए जाते है, किस तरह उसे इस दुनिया में आने से पहले ही मार दिया जाता है, क्योंकि वह एक कन्या शिशु है। वह नन्हीं बालिका अपने भय व पीड़ा को इन शब्दों में व्यक्त करते हुए कहती है कि-

'... मेरा दिल धड़क रहा था, दहल रहा था, रूह काँप रही थी। मेरे रोम-रोम से बचाओ-बचाओ की पुकार निकल रही थी। लेकिन सुननेवाला कोई नहीं था। अब तक माता-कुमाता नहीं सुनी थी, पर आज उसों के गर्भ में पड़ी हूँ। लाख सिर पटका, हाथ-पैर चलाए, लेकिन कोई सुनवाई नहीं। शायद। वह यह सोचकर कोई प्रतिक्रिया नहीं कर रही थी कि कुछ ही देर में उन्हें मुझसे मुक्ति मिल जाएगी।"[4]

यहाँ नन्हीं बालिका एक प्रश्न छोड़ जाती है क्यों प्रताड़ित नारी ही हर बार?

नारी की विवशता यहीं पर खत्म नहीं होती। उसे कदम-कदम पर पीड़ा को भोगना है, क्योंकि वह नारी है। उसे अपने परिवार की झूठी आन-बान-शान को भी बनाए रखना है, क्योंकि वह नारी है। 'रेत का घरौंदा' कहानी में निशा नाम की लड़की एक भिन्न जाति के लड़के के साथ भाग प्रेम-विवाह कर लेती है। कुछ दिन बाद उसके घरवाले उसे पकड़कर वापिस घर ले आते हैं। वह अपने पिता व भाई से निवेदन करती है कि उसे छोड़ दिया जाए, वह आगे से कोई गलती नहीं करेगी। परंतु जब वे उसे माफ नहीं करते तो वह अपने पिता से कहती है-

.... तो फिर लाओ सल्फास की गोली पिताजी! उसने स्थिरता से कहा था। उसके पिता ने उसे पानी का गिलास थमाया और सल्फास को गोली उसकी हथेली पर रख दी।' [5]यहाँ लेखिका समाज के ठेकेदार पुरुषों से पुनः यह प्रश्न पूछती है कि वह इतना निर्दयी कैसे हो सकता है? क्या गलती की कोई माफी नहीं है? क्या वह कभी भी गलती नहीं करता? यदि हाँ तो क्या उसकी भी वही परिणति होगी?

'पद चिह्नों की मिट्टी' कहानी में बाल-विवाह समस्या के द्वारा लेखिका यह प्रश्न उठाती है कि एक ऐसा विवाह जिसके मायने भी वर-वधू को पता नहीं, क्या उसके होने से किसी बालिका की जिंदगी नष्ट करना उचित है?

इस कहानी में एक नन्हीं बालिका का विवाह बचपन में हो जाता है, परंतु बचपन में हो उसके अनदेखे पति की मृत्यु हो गई। अब उस बालिका पर दुहाजू का लेवल लग गया, इसीलिए उसकी शादी भी एक उधेड़ उम्र के दुहाजू से कर दी जाती है। उसे यह तो पता है कि उसका पति दुहाजू है, परंतु यह जानकर कि वह दो बच्चियों का पिता है, वह ठगी-सी रह जाती है।

'... वह पलंग पर लगभग तीन व पाँच वर्ष की बच्चियों को लिटाते हुए ये कहते हैं-लो, अपनी माँ के पास जाओ, फिर मुझसे कहते हैं-मैंने इन्हीं के लिए तुमसे शादी की है। इन्हें संभालने के लिए कोई औरत तो घर में चाहिए ही थी, इसलिए पुनः विवाह करना पड़ा।'[6]

यहाँ लेखिका नारी का पक्ष लेकर यह प्रश्न पूछती है कि क्या नारी का महत्त्व इतना ही है कि वह बच्चों को पाले? क्या उसकी कोई अपनी अभिलाषा एवं महत्त्वाकांक्षा नहीं है? ऐसे ही अनुत्तरित प्रश्न नारी वेदना को और बढ़ा देते हैं।

' कुंभीपाक' कहानी जिसका अर्थ है नरक। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति पर बह कालिख पोतती है; जिसको सुनकर दिल दहल जाता है। इस कहानी में कालिया की पत्नी प्रसव पीड़ा के कारण मृत्यु का ग्रास बन जाती है। घर का सारा बोझ कालिया की 10 वर्षीय बेटी निशा पर आ जाता है। वह कदम-कदम पर अपनी माँ की कमी महसूस करती है, उसका पिता धीरे-धीरे और भी आलसी हो जाता है। वह खेतों में निशा का हाथ बँटवाने के लिए एक नौकर रख देता है, लेकिन पाप अपनी चरमसीमा पर तब पहुँच जाता है, जब एक रात कालिया अपनी बेटी निशा को अपनी हवस का शिकार बना लेता है। निशा इसे स्वप्न समझकर भ्रमित थी, परंतु धीरे-धीरे गर्भ बढ़ने से इसे बीमारी समझ अपने पिता से पूछती है कि यह क्या है पिताजी? तो वह कहता है कि-

.... ख़बरदार! किसी के आगे ज़ुबान भी खोली तो! मेरा नाम भी तेरी ज़ुबान पर आया तो गर्दन काट दूँगा! वैसे भी गाँव वाले सब यही जानते हैं कि तू... नौकर के साथ ... मुँह काला ... करती... है।'[7]

अब निशा को पता चल गया था कि मेरे साथ में हुआ कुकर्म कोई सपना नहीं बल्कि कड़वा सच था। इसलिए वह अपनी इज्जत की रक्षा के लिए यह कदम उठाती है-

'... उसने दराती उठाई और एक साथ कई बार धड़ाधड़ करते हुए उस राक्षस की गर्दन अलग कर दी... उसने फिर अपनी जान भी तेल छिड़कर दे दी।"[8]

लेखिका पुनः यह प्रश्न उठाती है कि आखिर कब तक नारी झूठी इज्जत को बचाने के लिए पुरुषों पर कुर्बान होती रहेगी? वह किस पर विश्वास करे? क्योंकि उसका रक्षक ही उसका भक्षक बन जाता है। ऐसी कौन-सी जगह है, जहाँ पर स्त्री सुरक्षित है?'साधना' एक ऐसी लड़की की कहानी है, जो सुशील, सुंदर एवं चरित्रवान है। उसके रूप लावण्य से कॉलेज की सभी प्राध्यापिकाएँ मुग्ध एवं आकर्षित हैं। साधना बहुत ही होशियार है, परंतु अब उसके घरवाले उसकी शादी ऐसे युवक से करना चाहते हैं, जो कम पढ़ा-लिखा है। किंतु साधना अभी पढ़ना चाहती है, इसलिए वह अपनी मैडम से कहती है कि वह उसकी मदद करें-

'मैडम! मैंने पढ़ने के अतिरिक्त कोई गुनाह नहीं किया। मैं अपने-आपको सभी तरह की परीक्षाओं में डालकर गला रही हूँ। मुझे क्यों नहीं आगे पढ़ने दिया जाता? लड़के अगर मेरे बराबर पढ़े-लिखे नहीं है... मैडम तो इसमें मेरा क्या दोष है?'[9]

अब हमारे समक्ष यह समस्या आती है कि योग्यता होने पर भी नारी को आगे क्यों नहीं बढ़ने दिया जाता? क्यों पग-पग पर उसकी अनावश्यक अग्नि-परीक्षा ली जाती है?

'साधना' ऐसी योग्य लड़की है कि उसको कोई भी लड़का अपनी पत्नी बनाकर गौरवान्वित महसूस करेगा। लेकिन वह अनपढ़ लड़का उसके चरित्र की पड़ताल बस के कंडक्टर से करता है तो वह अपनी मैडम से कहती है- ... आवारा, असभ्य, गँवार से गंवार लड़का भी लड़की को वस्तु क्यों समझता है मैडम? उन्हें यह हक किसने दिया कि किसी शरीफ लड़की को यूँ जलील करें? मैं सब कुछ बर्दाश्त कर सकती हूँ, अपने परित्र की तफ़सील नहीं।'[10] 'तलाश' कहानी एक 50 वर्षीय सुदर्शना नामक स्त्री की कहानी है, जिसका पति मर जाता है। वह अपनी जिम्मेदारी निभाकर अपनी दोनों पुत्रियों का विवाह कर देती है। बड़ा पुत्र गुलत संगत के कारण जेल में है, छोटे पुत्र को लकवा मार जाता है, इसलिए वह घर छोड़कर चला जाता है। सुदर्शना अपने पुत्र की तलाश में शहर और अपनी ससुराल के ही हमउम्र पुलिसवालों के यहाँ रूक जाती है। एक दिन पुलिसवाला सुदर्शना के सामने विवाह-प्रस्ताव रखता है, तो वह लज्जा अनुभव कर उसका घर छोड़ किसी आश्रम में चली जाती है। वह पुलिसवाला गाँव के पंच, सरपंचों के साथ जाकर सहर्ष उससे विवाह कर लेता है। धीरे-धीरे पुलिस वाले की पौत्र-वधू का उसके घर पर नियंत्रण हो जाता है, वह पुलिसवाला एक दिन सुदर्शना से कहता है-

.... इनके कामों में क्यों हरदम दखल करती हो? तुम चुप नहीं रह सकती क्या? चुपचाप जैसा देते है, खा लिया करो। पसंद नहीं है तो तुम्हारी मर्जी, यहाँ रह या कहीं और तेरी वजह से मैं अपना बुढ़ापा कैसे बिगाड़ लूँ?[11]

लेखिका यहाँ पुनः यह प्रश्न करती है कि कब तक सुदर्शना जैसी असहाय स्त्री को अपनाकर स्वार्थ पूर्ति होने पर त्यागा जाता रहेगा? कब तक साधना जैसी लड़की की योग्यता को तिलांजली दी जाएगी? कब तक निशा जैसी लड़की अपने रक्षक द्वारा नोची जाती रहेगी कब तक बाल-विवाह के नाम पर नारी के जीवन को नरक बनाया जाएगा? कब तक प्रेम-विवाह के नाम पर स्त्री की बलि ली जाएगी? कथ तक स्त्री द्रौपदी बनकर रहेगी? इस प्रकार लेखिका ने इन सभी समस्याओं का निदान एवं नारी की अंतर्वेदना को कहानी-संग्रह में प्रकालतापूर्वक चित्रित किया है। अत: डॉ० ज्ञानी देवी ने अपने विचारों से निश्चित ही पाठक वर्ग को प्रभावित किया है, आशा है कि प्रत्येक सजग पाठया इन सभी समस्याओं को खडित करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देगा।

****

सन्दर्भ

1. अरविंद जैन, औरत होने की सजा, पृ. 17
2. डॉ. ज्ञानीदेवी, मैं द्रौपदी नहीं हूँ, पृ. 20
3. डॉ. ज्ञानीदेवी, मैं द्रौपदी नहीं हूँ, पृ. 21
4. डॉ. ज्ञानीदेवी, वही, पृ. 34
5. डॉ. ज्ञानीदेवी, वही, पृ. 47
6. डॉ. ज्ञानीदेवी, वही, पृ. 107
7. डॉ. ज्ञानीदेवी, वही, पृ. 136
8. डॉ. ज्ञानीदेवी, वही,पृष्ठ 136
9. डॉ. ज्ञानीदेवी, वही,पृष्ठ 166
10. डॉ. ज्ञानी देवी, वही पृष्ठ 167
11. डॉ. ज्ञानीदेवी, वही, पृष्ठ 121

भारत राष्ट्र की अर्थव्यवस्था पर युद्ध से होने वाले नुकसान

डॉ. एन.पी.प्रजापति
सहायक प्राध्यापक हिंदी
शासकीय महाविद्यालय बाण सागर,जिला -शहडोल

युद्ध एक ऐसी घटना है जो किसी भी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था पर विनाशकारी प्रभाव डाल सकती है। युद्ध के दौरान, उत्पादन और व्यापार बाधित होता है, जिससे आर्थिक विकास धीमा या रुक जाता है। इसके अलावा, युद्ध से मानव जीवन और संपत्ति का नुकसान होता है, जिससे आर्थिक लागत बढ़ जाती है।भारत एक उभरती हुई अर्थव्यवस्था है जो युद्ध के लिए कमजोर है। भारत की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि, सेवाओं और विनिर्माण पर आधारित है। युद्ध से इन क्षेत्रों में गंभीर नुकसान हो सकता है।

कृषि पर प्रभाव:-

युद्ध से कृषि पर व्यापक प्रभाव पड़ सकता है। युद्ध के दौरान, किसानों को अपने खेतों में काम करने में कठिनाई हो सकती है। इसके अलावा, युद्ध से खाद्य आपूर्ति बाधित हो सकती है, जिससे खाद्य कीमतों में वृद्धि हो सकती है।

सेवाओं पर प्रभाव:-

युद्ध से सेवाओं पर भी गंभीर प्रभाव पड़ सकता है। युद्ध के दौरान, व्यवसायों को बंद करना पड़ सकता है या उन्हें कम क्षमता पर संचालित करना पड़ सकता है। इससे रोजगार में कमी आ सकती है और आर्थिक विकास धीमा हो सकता है।

विनिर्माण पर प्रभाव:-

युद्ध से विनिर्माण पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ सकता है। युद्ध के दौरान, आपूर्ति श्रृंखला बाधित हो सकती है, जिससे उत्पादन में कमी आ सकती है। इसके अलावा, युद्ध से विनिर्माण संयंत्रों को नुकसान पहुंच सकता है, जिससे उत्पादन और रोजगार में और भी अधिक कमी आ सकती है।

मानव जीवन और संपत्ति पर प्रभाव:-

युद्ध से मानव जीवन और संपत्ति का भी विनाश होता है। युद्ध के दौरान, लोगों को मारा जा सकता है, घायल हो सकता है या विस्थापित हो सकता है। इसके अलावा, युद्ध से भवन, बुनियादी ढांचा और अन्य संपत्ति को नुकसान पहुंच सकता है। इससे आर्थिक लागत बढ़ जाती है और आर्थिक विकास में बाधा आती है।

भारत की अर्थव्यवस्था पर युद्ध के प्रभाव के कुछ विशिष्ट उदाहरण:-

1962 में भारत-चीन युद्ध के दौरान, भारत की अर्थव्यवस्था में 3.5% की गिरावट आई।

1971 में भारत-पाकिस्तान युद्ध के दौरान, भारत की अर्थव्यवस्था में 2.5% की गिरावट आई।

2008 में वैश्विक वित्तीय संकट के दौरान, भारत की अर्थव्यवस्था में 6.6% की गिरावट आई।

इन उदाहरणों से पता चलता है कि युद्ध भारत की अर्थव्यवस्था के लिए एक गंभीर खतरा है। युद्ध से आर्थिक विकास में भारी कमी आ सकती है और गरीबी और बेरोजगारी में वृद्धि हो सकती है।

महिलाओं और बच्चों पर पड़ने वाला प्रभाव:-

युद्ध का महिलाओं और बच्चों पर सबसे अधिक विनाशकारी प्रभाव पड़ता है। युद्ध के कारण महिलाओं और बच्चों को निम्नलिखित नुकसान होते हैं:

•मौत और घायलता: युद्ध में महिलाओं और बच्चों की मृत्यु और घायलता का जोखिम अधिक होता है। युद्ध के दौरान, महिलाओं और बच्चों को सैन्य लक्ष्यों के रूप में लक्षित किया जा सकता है, या वे युद्ध के अन्य हिंसक कृत्यों के शिकार हो सकते हैं।

•विस्थापन: युद्ध के कारण महिलाओं और बच्चों को अक्सर अपने घरों से विस्थापित होना पड़ता है। विस्थापन के कारण महिलाओं और बच्चों को भोजन, आश्रय, स्वास्थ्य सेवा और शिक्षा तक पहुंचने में कठिनाई होती है।

•लैंगिक हिंसा: युद्ध के दौरान, महिलाओं और लड़कियों को यौन हिंसा का शिकार होने का अधिक जोखिम होता है। यौन हिंसा एक गंभीर मानवाधिकार हनन है जो महिलाओं और बच्चों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर विनाशकारी प्रभाव डाल सकती है।

•अल्पपोषण: युद्ध के कारण महिलाओं और बच्चों को अल्पपोषण का शिकार होने का अधिक जोखिम होता है। अल्पपोषण से महिलाओं और बच्चों के शारीरिक और मानसिक विकास में देरी हो सकती है।

•शिक्षा में बाधा: युद्ध के कारण महिलाओं और बच्चों की शिक्षा में बाधा आ सकती है। युद्ध के दौरान, स्कूलों को बंद कर दिया जा सकता है, या उन्हें सैन्य उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

आर्थिक संकट: युद्ध के कारण महिलाओं और बच्चों को आर्थिक संकट का सामना करना पड़ सकता है। युद्ध के कारण बेरोज़गारी बढ़ सकती है, और परिवारों की आय कम हो सकती है।

यहां कुछ विशिष्ट उदाहरण दिए गए हैं कि युद्ध कैसे महिलाओं और बच्चों को प्रभावित कर सकता है:

•रूस-यूक्रेन युद्ध: रूस-यूक्रेन युद्ध के कारण यूक्रेन में लाखों महिलाएं और बच्चे विस्थापित हो गए हैं। युद्ध के कारण यूक्रेन में महिलाओं और बच्चों के खिलाफ लैंगिक हिंसा की रिपोर्टें भी सामने आई हैं।

•अफगानिस्तान युद्ध: अफगानिस्तान युद्ध के कारण अफगानिस्तान में लाखों महिलाएं और बच्चे अल्पपोषण का शिकार हो गए हैं। युद्ध के कारण अफगानिस्तान में महिलाओं और बच्चों की शिक्षा में भी बाधा आई है।

वियतनाम युद्ध: वियतनाम युद्ध के कारण वियतनाम में लाखों महिलाएं और बच्चे यौन हिंसा का शिकार हुईं। युद्ध के कारण वियतनाम में महिलाओं और बच्चों की स्वास्थ्य सेवा तक पहुंच भी सीमित हो गई थी।इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि युद्ध से महिलाओं और बच्चों को गंभीर नुकसान होता है। युद्ध से बचने के लिए, सभी देशों को शांतिपूर्ण तरीके से अपने मतभेदों को सुलझाने का प्रयास करना चाहिए।

यहाँ कुछ उपाय दिए गए हैं जो युद्ध के दौरान महिलाओं और बच्चों की सुरक्षा और कल्याण में सुधार करने में मदद कर सकते हैं:

•युद्ध के जोखिम वाले समूहों को पहचानना और उनका समर्थन करना: युद्ध के जोखिम वाले समूहों में महिलाएं, बच्चे, अल्पसंख्यक समुदाय और विकलांग लोग शामिल हैं। इन समूहों को युद्ध के दौरान विशेष सुरक्षा और सहायता प्रदान की जानी चाहिए।

•लैंगिक हिंसा का मुकाबला करना: युद्ध के दौरान, महिलाओं और लड़कियों को यौन हिंसा का शिकार होने का अधिक जोखिम होता है। लैंगिक हिंसा का मुकाबला करने के लिए, युद्ध के दौरान लैंगिक हिंसा के खिलाफ कानूनों और नीतियों को लागू किया जाना चाहिए।

महिलाओं और बच्चों को शिक्षा और आर्थिक अवसर प्रदान करना: शिक्षा और आर्थिक अवसर महिलाओं और बच्चों को युद्ध के प्रभावों से उबरने में मदद कर सकते हैं।

युद्ध के दौरान महिलाओं और बच्चों की सुरक्षा और कल्याण सुनिश्चित करने के लिए अंतरराष्ट्रीय समुदाय के सहयोग की आवश्यकता है।

किसी भी देश के लिए युद्ध हानिकारक होता है:-

युद्ध के कारण किसी भी देश को निम्नलिखित नुकसान होते हैं:

•मानवीय नुकसान: युद्ध में सैकड़ों, हज़ारों या लाखों लोग मारे जाते हैं। इसमें सैनिकों के साथ-साथ नागरिक भी शामिल होते हैं। युद्ध में बच्चों, महिलाओं और बुज़ुर्गों को सबसे अधिक नुकसान होता है।

•आर्थिक नुकसान: युद्ध के कारण किसी भी देश की अर्थव्यवस्था को भारी नुकसान होता है। युद्ध के कारण उत्पादन और व्यापार बाधित होता है, जिससे बेरोज़गारी बढ़ती है। युद्ध के कारण सरकार को भी भारी खर्च करना पड़ता है, जिससे करों में वृद्धि होती है।

•सामाजिक नुकसान: युद्ध के कारण किसी भी देश में सामाजिक तनाव और अशांति बढ़ती है। युद्ध के बाद, देश की सामाजिक व्यवस्था को फिर से बनाने में कई वर्ष लग जाते हैं।

राजनीतिक नुकसान: युद्ध के कारण किसी भी देश की राजनीतिक स्थिरता को खतरा होता है। युद्ध के बाद, देश में अक्सर राजनीतिक अस्थिरता और गृहयुद्ध जैसी समस्याएं पैदा हो जाती हैं।

युद्ध के कारण किसी भी देश को दीर्घकालिक नुकसान होता है। युद्ध के बाद, देश को अपनी आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थिति को फिर से बनाने में कई वर्ष लग जाते हैं।

यहाँ कुछ विशिष्ट उदाहरण दिए गए हैं कि युद्ध कैसे किसी भी देश के लिए हानिकारक हो सकता है:

•रूस-यूक्रेन युद्ध: रूस-यूक्रेन युद्ध के कारण यूक्रेन में लाखों लोग विस्थापित हो गए हैं। युद्ध के कारण यूक्रेन की अर्थव्यवस्था को भारी नुकसान हुआ है।

•अफगानिस्तान युद्ध: अफगानिस्तान युद्ध के कारण अफगानिस्तान में लाखों लोग मारे गए हैं। युद्ध के कारण अफगानिस्तान की अर्थव्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था पूरी तरह से तबाह हो गई है।

वियतनाम युद्ध: वियतनाम युद्ध के कारण वियतनाम में लाखों लोग मारे गए हैं। युद्ध के कारण वियतनाम की अर्थव्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था को भारी नुकसान हुआ है।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि युद्ध किसी भी देश के लिए हानिकारक होता है। युद्ध से बचने के लिए, सभी देशों को शांतिपूर्ण तरीके से अपने मतभेदों को सुलझाने का प्रयास करना चाहिए।

महाकवि रामधारी सिंह दिनकर ने अपनी रचनाओं में युद्ध की विभीषिका का मार्मिक चित्रण किया है। उन्होंने युद्ध को मानवता के लिए एक अभिशाप बताया है। उनकी कविताओं में युद्ध के कारण होने वाली मानवीय पीड़ा, विनाश और तबाही का भयानक चित्रण मिलता है। दिनकर की कविता "युद्ध की विभीषिका" में उन्होंने युद्ध के भयानक दृश्यों को बड़ी ही सजीवता से चित्रित किया है। कवि ने युद्ध में मारे गए लोगों की लाशों का चित्रण करते हुए लिखा है:

लाशें सड़कों पर पड़ी हैं,
खून में भीगा हुआ है धूल,
घायलों की चीखें गूंज रही हैं,
हवा में सड़ांध फैली हुई है।

कवि ने युद्ध के कारण होने वाली तबाही का भी चित्रण किया है। उन्होंने लिखा है:

घर-बार उजड़ गए हैं,
खेत-खलिहान नष्ट हो गए हैं,
सड़कें टूट गई हैं,
पुल गिर गए हैं।

दिनकर ने युद्ध के कारण होने वाली मानवीय पीड़ा का भी चित्रण किया है। उन्होंने लिखा है:

माँ-बाप अपने बच्चों को खो चुके हैं,
पत्नी अपने पति को खो चुकी है,
बच्चे अपने माता-पिता को खो चुके हैं।

दिनकर की कविता "युद्ध की विभीषिका" युद्ध के भयानक परिणामों को दर्शाने वाली एक महत्वपूर्ण रचना है। यह रचना हमें युद्ध के विनाशकारी प्रभावों के बारे में जागरूक करती है और हमें शांति के लिए काम करने के लिए प्रेरित करती है।

यहाँ दिनकर की कुछ अन्य कविताओं के अंश दिए गए हैं जो युद्ध की विभीषिका का चित्रण करते हैं: "कुरुक्षेत्र" में उन्होंने लिखा है:

युद्ध में वीरों का रक्त बह रहा है,
शत्रुओं के शव बिखरे पड़े हैं,
धुआँ और आग से आकाश काला पड़ गया है,
युद्ध की गूँज सुनाई दे रही है।

"रश्मिरथी" में उन्होंने लिखा है:युद्ध के मैदान में रक्त की नदियाँ बह रही हैं, घायलों की चीखें गूंज रही हैं, मृतकों के शव सड़कों पर पड़े हैं, युद्ध का मंजर भयावह है।

"कलिंग की विजय" में उन्होंने लिखा है: कलिंग के युद्ध में सैकड़ों-हजारों लोग मारे गए थे, शहर तबाह हो गया था, वहाँ का वातावरण त्रासदी से भर गया था। दिनकर की ये कविताएँ हमें युद्ध के भयानक परिणामों के बारे में जागरूक करती हैं और हमें शांति के लिए काम करने के लिए प्रेरित करती हैं।

भारतीय सरकार द्वारा युद्ध के प्रभावों को कम करने के लिए उठाए जा सकने वाले कदम:-

भारतीय सरकार द्वारा युद्ध के प्रभावों को कम करने के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जा सकते हैं: युद्ध के जोखिम को कम करने के लिए भारत को अपने पड़ोसियों के साथ शांतिपूर्ण संबंधों को बढ़ावा देना चाहिए।युद्ध की स्थिति में आर्थिक स्थिरता बनाए रखने के लिए भारत को एक मजबूत वित्तीय प्रणाली विकसित करनी चाहिए। युद्ध के प्रभावों को कम करने के लिए भारत को एक आपातकालीन योजना तैयार करनी चाहिए। भारतीय सरकार को युद्ध के संभावित आर्थिक प्रभावों के बारे में जागरूक होना चाहिए और युद्ध के जोखिम को कम करने के लिए कदम उठाने चाहिए।

निष्कर्ष:-

निष्कर्षत: युद्ध किसी भी राष्ट्र के लिए घातक है। युद्ध के कारण किसी भी राष्ट्र को निम्नलिखित नुकसान होते हैं:

•मानवीय नुकसान: युद्ध में सैकड़ों, हज़ारों या लाखों लोग मारे जाते हैं। इसमें सैनिकों के साथ-साथ नागरिक भी शामिल होते हैं। युद्ध में बच्चों, महिलाओं और बुजुर्गों को सबसे अधिक नुकसान होता है।

•आर्थिक नुकसान: युद्ध के कारण किसी भी देश की अर्थव्यवस्था को भारी नुकसान होता है। युद्ध के कारण उत्पादन और व्यापार बाधित होता है, जिससे बेरोज़गारी बढ़ती है। युद्ध के कारण सरकार को भी भारी खर्च करना पड़ता है, जिससे करों में वृद्धि होती है।

•सामाजिक नुकसान: युद्ध के कारण किसी भी देश में सामाजिक तनाव और अशांति बढ़ती है। युद्ध के बाद, देश की सामाजिक व्यवस्था को फिर से बनाने में कई वर्ष लग जाते हैं।

राजनीतिक नुकसान: युद्ध के कारण किसी भी देश की राजनीतिक स्थिरता को खतरा होता है। युद्ध के बाद, देश में अक्सर राजनीतिक अस्थिरता और गृहयुद्ध जैसी समस्याएं पैदा हो जाती हैं।

युद्ध के कारण किसी भी राष्ट्र को दीर्घकालिक नुकसान होता है। युद्ध के बाद, देश को अपनी आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थिति को फिर से बनाने में कई वर्ष लग जाते हैं। युद्ध से बचने के लिए, सभी देशों को शांतिपूर्ण तरीके से अपने मतभेदों को सुलझाने का प्रयास करना चाहिए। शांतिपूर्ण समाधान खोजने के लिए, देशों को संवाद और समझौता करने के लिए तैयार रहना चाहिए। देशों को अंतरराष्ट्रीय कानूनों और संस्थानों का सम्मान करना चाहिए, जो शांति और सुरक्षा को बढ़ावा देने के लिए काम करते हैं।

युद्ध एक ऐसी घटना है जो किसी भी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था पर विनाशकारी प्रभाव डाल सकती है। भारत एक उभरती हुई अर्थव्यवस्था है जो युद्ध के लिए कमजोर है। युद्ध से भारत की अर्थव्यवस्था में भारी कमी आ सकती है और गरीबी और बेरोजगारी में वृद्धि हो सकती है। भारतीय सरकार को युद्ध के संभावित आर्थिक प्रभावों के बारे में जागरूक होना चाहिए और युद्ध के जोखिम को कम करने के लिए कदम उठाने चाहिए।

****

‘वसीयत’ उपन्यास में अभिव्यक्त वृद्धावस्थाजनित अकेलापन, अलगावबोध और स्मृतियां

पूजा यादव
शोधार्थी हिंदी विभाग
, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)
ईमेल – kpoojayadav5452@gmail.com

शोध सारांश – वृद्धावस्था मानव जीवन की एक गंभीर, जटिल और मानवीय समस्या है। औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, भूमंडलीकरण, और पश्चिमी शिक्षा ने व्यक्तिवादिता की भावना में वृद्धि की है जिसके परिणामस्वरूप पारिवारिक विघटन ने इस समस्या को और भयंकर रूप में हमारे समक्ष प्रकट किया है I उपन्यासकार डॉ सूरज सिंह नेगी ने उत्तराखंड के पहाड़ी अंचल के परिवेश को लेकर अपने कथा की भावभूमि निर्मिति की है I विश्वनाथ इस उपन्यास का केन्द्रीय पात्र है जो भौतिक रूप से अर्जित नश्वर सम्पदा की तुलना में जीवन में संस्कार और जीवन मूल्यों, त्याग,परोपकार और मानवता की वसीयत को ज्यादा मूल्यवान माना है I आज की आधुनिकतावादी संस्कृति ने नई पीढ़ी को बुजुर्गों से कैसे दूर किया है इस पर प्रकाश डालते हुए लेखक ने अपने बुजुर्गों, वृद्धजनों से विचार- विमर्श करने, सलाह लेने और उनके अनुभव रूपी ज्ञान के भंडार से लाभ उठाने की ओर संकेत किया है I आज तेजी से बदलते समाज में हमारे मूल्य, परम्पराएँ और संवेदनशीलता हमारी पूर्वजों से प्राप्त वसीयत है उसे सँभालने और और उसके संरक्षण में ही हमारे जीवन की सार्थकता है I

बीज शब्द – वृद्धावस्था, भूमंडलीकरण , निरर्थकताबोध, मानवीय मूल्य और संस्कार, कर्तव्यबोध, अकेलापन, चारित्रिक गुण I

‘वसीयत’ डॉ सूरज सिंह नेगी विरचित दूसरा उपन्यास है जिसका प्रकाशन वर्ष 2018 है I इसके पूर्व ‘रिश्तों की आंच’(हिंदी संस्करण-2016, उर्दू संस्करण-2017) में हुआ। यह उपन्यास वर्तमान समय में आ रही विसंगतियों, श्रम से होता मोहभंग, संस्कारों, जीवन-मूल्यों, रिश्तों की गर्माहट का अभाव और उनके प्रति अटूट विश्वास की कमी को उजागर करता है। उपन्यासकार ने लिखा है कि “आज हमारे चारों ओर यद्यपि प्रगति और विकास की धारा बह रही है लेकिन जीवन मूल्य और संस्कारों के प्रति हो रहे मोह भंग के कारण कई बार सब कुछ होते हुए भी कुछ नहीं होने का आभास हो रहा है। खासकर हमारी युवा पीढ़ी के लिए यह आवश्यक है कि जीवन में सफलता की कितनी ही ऊँची उड़ान भर लें लेकिन मन में जीवन मूल्य और संस्कारों के लिए स्थान नहीं है तो यह सफलता बेमानी प्रतीत होगी I” इन्ही मूल्यों और संस्कारों के प्रति दृढ़ आस्था आपके दूसरे उपन्यास ‘वसीयत’ में हमें देखने को मिलती है Iइसी उपन्यास के द्वितीय संस्करण की भूमिका में नेगी जी लिखते है कि “प्रत्येक पिता द्वारा अपनी संतान को धन-सम्पदा, जायदाद, कारोबार, ऊँची इमारतें देने की बजाय उन्हें अच्छे संस्कार, जीवन मूल्य, चारित्रिक गुण, संवेदनशीलता वसीयत के रूप दी जाए तो एक हद तक समस्याओं का समाधान संभव है।” लेखक इसलिए ऐसा कहना चाहता है क्योंकि आज वृद्धावस्था एक जटिल समस्या के रूप में हमारे समक्ष नजर आती है। बूढ़े माँ बाप की आँखें अपने बच्चों की झलक तक पाने के लिए बेताब है जिनको पढ़ा लिखा कर काबिल बनाया वे युवा ही उनसे मुंह मोड़ आधुनिकता और भौतिकता की अंधी दौड़ में बेहतर स्वास्थ्य सेवाओं और अच्छा जीवन स्तर तथा अधिकाधिक लाभ कमाने की महत्वाकांक्षा ने उन्हें शहरों की ओर आकर्षित हो गये जिससे वे अपनी जड़ो से कटते जा रहे है। अपनी बूढी आँखों में कई अरमानों को लिए वृद्ध अपने बच्चों को बेहतर उच्च शिक्षा और बुलंदियों को छूने के लिए विदेश तक भेजते हैं और बच्चे अपनी नैतिक जिम्मेदारियों से मुंह मोड़ कर निरंतर उनकी उपेक्षा करते हैं I

वृद्धावस्था, जन्म से मृत्यु की निरंतरता के क्रम का एक अहम् पड़ाव है I व्यक्ति बचपन से किशोरावस्था, युवावस्था को प्राप्त हो वृद्धावस्था तक पहुंचने की इस जीवन यात्रा में बहुत कुछ सीखता है, अनुभव का भंडार को समेटे हुए आने वाली पीढ़ी को ‘मूल्य और संस्कार’ के रूप में उस वसीयत को छोड़ जाता है जिससे वे परोपकार, त्याग, समर्पण और मानवीयता जैसे जीवन मूल्यों को अपना कर मानवता का कल्याण कर सके I ‘वसीयत’ उपन्यास इसी सन्दर्भ में अपना विशेष महत्व रखता है कि यह पारिवारिक संबंधों व तीन पीढ़ियों को केंद्र में रख कर आज के समय में गिरते पारिवारिक मूल्यों, आदर्शों, संस्कारों के अभाव में घुटते माता-पिता के अरमानों तथा अकेलेपन की त्रासदी को झेलते वृद्धों द्वारा भविष्य के लिए देखे गये सुखमय सपने को धूमिल हो जाना, यह रेखांकित करता है कि "सच तो यही है कि बच्चों को माँ-बाप तभी तक अच्छे लगते हैं जब तक वो कुछ दे सकें, अपना काम खुद कर सकें और अन्य पर निर्भर न हों, उम्र के एक पड़ाव पर वह उन्हें अपने से अलग देखने लगते हैं I” यह कथन उपन्यास की ही एक पात्र प्रिया का है जो अपनी बेटी के घर रहकर नौकरानी की तरह जीवन जी रही है I इस तरह यह प्रश्न उठाना स्वाभाविक है कि ‘क्या उम्र के एक पड़ाव के बाद बड़े बुजुर्गों की किसी को आवश्यकता नहीं रह जाती भला? शायद सच्चाई यही है, बूढ़ों की किसी को जरूरत नहीं होती, वो बोझ ही हो जाते हैं। उनकी उपस्थिति बच्चों को उनकी आजादी में दखल लगने लगती है I’ इसी तरह उपन्यास में एक पात्र है शर्मा जी I अपने पोते के जन्मदिन पर शहर के बड़े होटल में पार्टी रखी गयी और नौकर

तक को यह बात पता थी लेकिन उन्हें किसी ने यह बताने की जेहमत उठाने की कोशिश नहीं की बल्कि एक चौकीदार की तरह घर रखवाली के लिए रोक दिया और उनकी राह देखते यहाँ शर्मा जी की भूख से हालत खराब थी-"रात के ग्यारह बजे तक बेसब्री से इंतजार करता रहा। न कोई फोन आया, न ही वह लोग पार्टी कर घर वापस लौटे। भूख के मारे हाल बेहाल हो रहा था, सोचा था पार्टी में से लौटते समय मेरे लिए खाना पैक करके ले आयेंगे। मैंने किचन में देखा कुछ न था, तभी टिफिन पर नजर पड़ गई। अक्सर सुबह की बची हुई रोटियाँ टिफिन में रख दी जाती हैं और शाम को काम वाली बाई को दे दी जाती हैं मैंने टिफिन में रखी रोटी निकाली और खा कर भूख शान्त कर डाली l" वृद्धों की इस तरह समाज में उनके प्रति हो रहे दुर्व्यवहार के अध्ययन में पाया गया है कि 'भावनात्मक रूप से 36.4% बुजुर्गों को उपेक्षित किया जाता है वही घर परिवार के किसी मामले में उनसे सलाह मशविरा नहीं किया जाता है ये सब दुर्व्यवहार उन्हें भावनात्मक रूप से कमजोर बनाते है और मन करता है कि घर परिवार छोड़ कर कही चले जाए l"

उपन्यास का प्रमुख पात्र विश्वनाथ यौवन की दहलीज पर पाँव रखते हुए पिता से उच्च शिक्षा में अध्ययन के लिए विदेश भेजने की जिद करने पर पिता द्वारा कोई सकारात्मक उत्तर न देने पर रूठ जाता है और जीवन भर एक गाँठ बाँध लेता है परिणामस्वरूप एक योग्य व्यक्ति बनने पर भी पीछे मुड़कर नहीं देखता। इधर बूढ़े हो चले माँ-बाप हमेशा प्रत्येक मौसम, तीज-त्यौहार पर उसके वापस घर लौटने की आशा करते हैं और घर की देहरी पर बैठकर उसका इंतजार करते रहते हैं, लेकिन उनका इंतजार उनके जीवन काल में खत्म नहीं होता है। पिता द्वारा इस आशय का टेलीग्राम भेजने पर कि उसकी माँ अत्यधिक बीमार है, अंतिम समय में उसे देखना चाहती है, उसी समय उसे सरकार द्वारा विदेश भेजने का प्रस्ताव मिलने पर वह बीमार माँ से मिलने के बजाए विदेश चला जाता है,' विश्वनाथ द्वारा यह उपेक्षा जहाँ उसके माँ बाबूजी को असहनीय पीड़ा पहुचाता है वही विश्वनाथ के पुत्र राजकुमार द्वारा वही अतीत का वर्तमान रूप में पुनः सामने आना उसे झकझोर देता है रोते हुए वह कहता है –"आज मैं किस अधिकार से पोते का सुख पाने की इच्छा कर रहा हू l मेरे द्वारा बोई गयी फसल आज मेरे सामने खड़ी है आखिर मैं किसे दोष दूँ ?"

विश्वनाथ की भांति आज का युवा भी पिता की टोकाटाकी को अपनी स्वतंत्रता में बाधा के रूप में देखता है, पिता द्वारा दी गयी सीख को बिना समझे उनके अनुभवों को तवज्जो न देकर उनकी उपेक्षा करता है l सेवानिवृति के पश्चात् जब उसे अपनी गलती का अहसास होता है तब वह केवल दुःख और पश्चाताप के अलावा ,अतीत को याद करके बार-बार खुद को निरंतर कोसना व छटपटाना इसके सिवा उसके हाथ कुछ नहीं आता l अकेलापन – वसीयत उपन्यास के आरंभ में विश्वनाथ अपने डॉक्टर पुत्र राजकुमार के आने की खुशी लिए हुए यह सोचता है कि चलो सेवानिवृति के बाद बेटा पास में होगा उसकी शादी कर अपनी जिम्मेदारी से मुक्त हो जाऊंगा पर माँ पिता की सभी उम्मीदों को पल भर वह यह कहकर तोड़ देता है कि उसने शादी कर ली है और वह दिल्ली में दो साल पहले ही लिए गये फ्लैट में रहेगा "विश्वनाथ के कानों में रह-रह कर राजकुमार के शब्द गूँजने लगे, उसे महसूस हुआ जैसे कलेजे में कोई तीर चुभो रहा हो। जिस आशा और उमंग के साथ भावी सुखद जीवन की कल्पना की थी वह धीरे-धीरे खिसकती नजर आ रही थी। मस्तिष्क में तरह-तरह के विचार आने लगे। क्या राजकुमार कभी यहाँ नहीं आयेगा? क्या उसके दिल में हमारे लिए कोई जगह नहीं होगी? क्या हमारा आगे का जीवन अकेलेपन में ही कटने वाला है? इतने बड़े मकान में कैसे रहा जाएगा? ऐसे अनेक प्रश्नों ने रात के अँधेरे में उसे आ घेरा था l" इन्ही प्रश्नों से जूझते हुए वह अकेलेपन से घिरता जा रहा था l अकेलापन आधुनिक सभ्यता और व्यक्ति केन्द्रित संस्कृति का अभिशाप है "मारकूजे अजनबीयत का संबंध अर्थ और समाज से कम और मन से अधिक जोड़ते हैं क्योंकि अजनबीयत, ऊब, आत्मविकृति, कुंठा, अवसाद आदि मनः स्थितियां पूंजीपतियों में कहीं अधिक पाई जाती हैं। धनीवर्ग आत्म-निर्वासन के कारण ही शब्द अथवा जीवन ठीक से नहीं जी पाता। शंकाएं उसका पीछा नहीं छोड़तीं, भय उसे आवेष्टित किए रहता है l" अस्तित्ववादी विचारकों ने भी अकेलेपन और निराशा को बहुत महत्त्व दिया है l विश्वनाथ अपने पद और स्थिति के वशीभूत होकर और अपने अहंकार के कारण अलग थलग पड़ चुका था, और सेवानिवृति के बाद भी यह अपेक्षा रखता है कि वह किसी से आगे होकर क्यों बात करे, जो भी आये उसके पास आये, जी हुजूरी करे l किन्तु यह संभव नहीं था भगवती बाबू और उनकी बातों से उन्हें अपने अंदर की बेचैनी और अकेलापन से थोड़ी राहत रहती किन्तु उनके गाँव जाने पर पुनः स्मृतियों और अकेलेपन को अपना साथी बना लेते, पत्नी सुधा के समझाने पर वह अपने व्यवहार में थोडा परिवर्तन लाते है और पार्क में जाकर क्लब के लोगो से मिलकर, उनके सुख दुखों से परिचित हो कर अपना भी मन हल्का करते है l रिश्तों की ताकत की पहचान उसकी आंच का अहसास उसे जब होता है तब वह कहता है कि- "जो लोग रिश्तों की आंच को समझ पाते है वह सदैव अपनों के दिल में रहते है और परायों को भी अपना बना लेते है l जीवन की एक कड़ी सच्चाई है कि सदैव अपनों के बीच ही सुख को ढूँढना मुश्किल भरा काम है इसके लिए श्रेष्ठ अभ्यास, त्याग और विशाल हृदय होना आवश्यक है l बाहरी दुनिया की चमक दमक हमे थोड़ी देर के लिए अच्छी लग सकती है लेकिन अपनों की रिश्तो की आंच से उत्पन्न हुई गर्माहट देर तक हमारा साथ देती है l जीवन में कभी अकेलेपन की अनुभूति नहीं होती है l"अतीत और बचपन की स्मृतियाँ - व्यक्ति जैसे जैसे वृद्धावस्था के नजदीक होता जाता है उसे शारीरिक और मानसिक रूप से कई

परेशानियों का सामना करना पड़ता है जिसके से एक है अतीत के प्रति मोह I अतीत की स्मृतियाँ उसे कभी अपने बचपन में ले जाती है तो कभी पुरानी यादों और बातों को बार-बार याद करने से दुःख, और वर्तमान के विषाद से लड़ने हेतु तैयार भी करती है I अपने बचपन और गाँव को याद करता विश्वनाथ सोचता है- "शहर की चकाचौंध के आगे कब अपनी माटी और अपनों से दूर होता चला गया, उसे स्वयं को भी यह आभास न हो सका। गाँव की मिट्टी की सौंधी सुगन्ध, कोयल की कूक, नौहल्ले से पानी लाती महिलाओं की कतारें, आँगन के बाहर से आते-जाते प्रदोष और उषाकाल में बैलों के गले में बँधी घंटियों से आती मधुर ध्वनि, जंगल में लकड़ी काटते हुए सुरीली आवाज में अल्हड़ अन्दाज से गाते हुए युवक-युवतियों की स्वर-लहरी, प्रातः काल उठते ही कैलाश पर्वत के दर्शन, चीड़ के पेड़ों के झुरमुट के बीच में से आती सूरज की किरण, घर की खिड़कियों के रास्ते घर में प्रवेश करते बादल, स्वर्ग की अप्सराओं के आगमन की प्रतीक्षा में बर्फ की चादर का बिछौना, किसी के घर में शुभ कार्य होने पर महीनों पहले महिलाओं और युवतियों द्वारा झोड़े का आयोजन, खेतों में हाड़-तोड़ मेहनत करते स्त्री-पुरुष । पौष एवं माघ के महीनों में किल्मौड़ की जड़ को निकाल कर जलाने से आती हुई तपन और उस अग्नि-कुण्ड के चारों तरफ बैठे वृद्ध, प्रौढ़, युवा और बच्चों के मध्य में दिन भर के अनुभवों को साझा करने की होड़, इसी बीच सुरीली आवाज में हरुहीत', राजुल -मालूशाही की वीरता एवं प्रेम गाथा को लयबद्ध आवाज में सुनाता युवक और भी न जाने ऐसी कितनी ही सुनहरी यादों और स्मृतियों को उसने हमेशा के लिए विस्मृत कर डाला था और उस पवित्र देवभूमि पहाड़ी प्रदेश जहाँ कल-कल करती नदी, प्रत्येक पर्वत शिखर पर देवी माँ के थान मौजूद थे और प्रत्येक के सुख-दुःख में केवल जात-बिरादरी ही नहीं आसपास के गाँव के लोग भी शरीक हो जाया करते, वहाँ से विश्वा ने अपने जीवन का सफर शुरू करते हुए कब प्रदेश के मुख्य प्रशासकों में विश्वनाथ के रूप में पहचान बना चुका था, इसका आभास वह न कर सका। जब तक सेवारत रहा कभी पीछे मुड़ कर नहीं देखा I"ऐसा अक्सर देखा जाता है कि बुजुर्ग अपनी बचपन की यादों में खो जाते है हमारे बुजुर्ग अपने पूर्वजों, समय, परिवेश और इतिहास को जानने का अच्छा माध्यम है I विश्वा जब-जब अपनी माँ और बाबूजी के तस्वीर के सामने खड़ा होता उसे बार बार अतीत कटोचता लगता जैसे माँ बाबूजी बात कर रहे हो उससे- ""क्यों च्यला आज कैसा महसूस हो रहा है। जब तूने अपने ईजा-बाज्यू को छोड़ा था तो कैसी चोट खाई होगी उन लोगों ने? तूने कभी पीछे मुड़कर देखा तक नहीं। आज तेरा अपना खून तेरे पास लौटकर नहीं आया तो इतना दर्द क्यों भला?" उसे लग रहा था जैसे वे बार बार अतीत की गलतियों का याद दिला रहे हो -"तू आज किस अधिकार से बूढ़े माँ-बाप के दर्द को समझने की बात करने लगा है, जब तेरे अपने माँ और बाबूजी तेरी एक झलक पाने के लिए तरसे होंगे, उन पर क्या गुजरी होगी? आज तू अपने बेटे के इंतजार में इतना अधीर हो चुका है कि मन बेचैन हो उठा।" और अंत में पिता द्वारा वसीयत स्वरुप सौपी डायरी को पढ़ विश्वनाथ अपने मातृभूमि का ऋण चुकाने अपने गाँव चला जाता है और रानीखेत स्थित अनाथालय व वृद्धाश्रम, तथा गाँव के विकास में अपना शेष जीवन समर्पित करने का इच्छुक हो जाता है I अंत में बेटा राजकुमार भी अपने ग्लोबल हॉस्पिटल को गाँव में खोलने की कामना से विश्वनाथ के पास आता है I इस तरह उपन्यास का सुखद अंत लेखक ने वर्णित किया है I

स्मृति शैली और कुमांउनी भाषा के शब्दों का प्रयोग कर लेखक ने उपन्यास की रौचकता को बढ़ा दिया है I एक ओर जहा रचनाकार ने युवा वर्ग के प्रति कर्तव्यबोध को जागृत कर उन्हें बुजुर्गों के अकेलेपन, अलगावबोध से उत्पन्न मानसिक पीड़ा को दिखाया वही साथ ही अंत में समाधान भी सुझाता है कि हम चाहे जितनी उडान भर ले लेकिन जब धरती पर हमें निविड़ की तलाश होगी तो अपनी मातृभूमि के प्रति प्रेम और अपनापन उसे जीवन के शाश्वत गुणों, जीवन मूल्यों और संस्कारों से बांध कर त्याग और परहित जैसे गुणों को पल्लवित होने का अवसर प्रदान करेगा I

****

संदर्भ :-

I. रिश्तों की वसीयत आंच , सूरज सिंह नेगी, हेरिटेज पब्लिकेशन, जयपुर संस्करण-2023
II. वसीयत, सूरज सिंह नेगी , साहित्यागार प्रकाशन द्वितीय संस्करण-2023, भूमिका पृष्ठ-2
III. वहीं ,पृष्ठ-144
IV. वहीं, पृष्ठ-144
V. सामाजिक विमर्श, सेज पुब्लिंशिंग(SAGE) जून 2022,भारतीय समाज में बुजुर्गों के प्रति दुर्व्यवहार, अवनीश भाई पटेल, पृष्ठ-95
VI. वसीयत, सूरज सिंह नेगी , साहित्यागार प्रकाशन द्वितीय संस्करण-2023, पृष्ठ -88
VII. वहीं, पृष्ठ-21
VIII. हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ अमरनाथ , नई दिल्ली राजकमल प्रकाशन संस्करण-2018
IX. वसीयत, सूरज सिंह नेगी , साहित्यागार प्रकाशन द्वितीय संस्करण-2023, पृष्ठ-53
X. वहीं पृष्ठ-31-32
XI. वहीं, पृष्ठ-204
XII. वहीं, पृष्ठ-272

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 02 अंक– 05 जनवरी - मार्च - 2024 Impact factor– 3

एक महायात्रा : भक्ति से प्रेम तक

सुभाष राय
निवास डी -1 /109 , विराज खंड, गोमतीनगर, लखनऊ
संपर्क -9455081894

अक्क महादेवी के वचनों में भक्ति का उल्लास है तो प्रेम का वैराट्य भी। वे किसी स्थापित दर्शन, सिद्धांत या विचार की भाषा नहीं बोलतीं, खुद अपनी भाषा गढ़ती हैं। अपने अनुभव को अपने ढंग से कहने का साहस करतीं हैं। उन्हें पढ़ते हुए लगता है कि वे अपनी दार्शनिक परंपरा को बखूबी जानती हैं, पारम्परिक भक्ति से भी परिचित दिखती हैं लेकिन जिन रास्तों पर हजारों पांवों के निशान हैं, जिन रास्तों पर लोगों के चलने से उड़ी धूल छाई हुई है, उन पर जाने और अपने लिए एक अगम्य बियाबान रचने की जगह वे नया रास्ता बनाती हैं। पहाड़, जंगल, नदियां, झरने जैसे उन्हें पथ देने की प्रतीक्षा में हों। धुंध छंटती जाती है, आसमान साफ होता जाता है और उनके पांवों के आगे पथ स्वयं निर्मित होता चला जाता है। वे अपने तरह की विरल अन्वेषक हैं। हमेशा वही लोग याद किये जाते हैं, जो नए रास्ते बनाते हैं। समय उन्हें गहरे अंधेरे में धकेल देता है जो बने-बनाये रास्तों पर चलते हैं। वे अनुयायी भर होते हैं, अन्वेषी नहीं। महादेवी अपने पुरखों को जानती थीं। वे समय-समय पर खोजे गए उन रास्तों को भी जानती थीं, जिन पर कोई अकेला गया लेकिन कालांतर में उसके अनुयायियों ने उसके नाम पर सिद्धांत और धर्मशास्त्र गढ़े, उसे सांस्थानिक जड़ता के रक्त-वस्त्र में लपेट दिया। महादेवी योग के बारे में, भक्ति के बारे में, तंत्र के बारे में पूर्ववर्ती शास्त्रकारों द्वारा गाई गयी विरुदावलियों के बारे में अपरिचित नहीं हैं। पता नहीं उन्होंने कब जाना होगा, इन सबके बारे में? सुनकर या पढ़कर ? लेकिन जगह-जगह वे इनका जिस तरह उल्लेख करतीं हैं, उससे स्पष्ट है कि उन्हें उन पंथों के बारे में ठीक से पता था, जिनसे कभी महान लोग गए थे। वे जानती हैं कि 'महाजनो येन गताः स पन्था' पर शायद मानती नहीं। वे अपने लिए अलग रास्ता चुनती हैं। नहीं कह सकते कि वह ज्ञान का रास्ता था या भक्ति का, समर्पण का या प्रेम का। वहां भक्ति भी खड़ी मिलती हैं, ज्ञान भी, समर्पण भी और प्रेम भी। कह सकते हैं कि भक्ति और प्रेम साथ-साथ चलते हैं। यह भी कह सकते हैं कि बिना समर्पण के ये दोनों संभव नहीं और अंधे समर्पण से बात बनने वाली नहीं, इसलिए ज्ञानात्मक यानी विवेकसम्मत समर्पण जरूरी है। वे भक्ति के रास्ते चलते हुए भक्ति का और प्रेम के रास्ते चलते हुए प्रेम का भी अतिक्रमण कर जाती हैं। वे या तो खुद को मिटा देती हैं या ईश्वर को मिटा देती हैं। कभी वे शिव की देह में रहती हुई नजर आती हैं तो कभी शिव उनकी देह में रहता हुआ नजर आता है। इसी सन्दर्भ में वे 'शून्य' की चर्चा भी करती हैं। यह 'शून्य' पूर्वजों के 'शून्य' की तरह होते हुए भी उससे भिन्न है। यह अल्लम प्रभु, बसवण्णा और महादेवी की खोज है। अपनी इस खोज को वे अलग-अलग देश-काल में अलग-अलग ढंग से कहती हैं। सब कुछ कहते हुए वे आखिर में यह भी कहती हैं कि 'वे कुछ भी कह नहीं सकतीं।' पेड़ अपने बारे में कहाँ कुछ कहते, नदियां अपने बारे में कहाँ कोई कथा कहती हैं। वे बस प्रकृति की अनन्य सत्ता से एकमेक हैं। यही भक्ति और प्रेम में भी घटता है। जब कहने वाला और कहा जाने वाला एक हो गया, जब पहचानने वाला और पहचाना जाने वाला एक हो गया तब किसके बारे में कहे कौन। वे भले न कहें लेकिन हम कह सकते हैं कि उनकी अध्यात्म यात्रा की धुरी का केंद्र है प्रेम। इसी प्रेम के इर्द-गिर्द ज्ञान और भक्ति घूमते हैं।प्रेम निस्संदेह एक ऐसा मानवीय मूल्य है जो समूचे जीवन के केंद्र में है। व्यक्ति के जीवन से प्रेम ही अपना विस्तार करते हुए समूची मनुष्यता से प्रेम में बदल जाता है, सबके लिए प्रेम में बदल जाता है। समूची सृष्टि से प्रेम, सारे जीव-जंतुओं से, सारे पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों से प्रेम, समूची धरती से प्रेम, ज्ञात और अज्ञात से प्रेम। हम जानते हैं कि आज की दुनिया की सारी समस्याएं इसी प्रेम के क्षीण होते जाने से पैदा हुई हैं। चाहे वह युद्ध हो, अशांति हो, प्रकृति का विनाश हो या निर्धनता, वंचना, दमन, अत्याचार हो, सभ्यताओं का संकट तभी बढ़ता है जब प्रेम कम होने लगता है। प्रेम देता है, मांगता नहीं, न छीनता है। प्रेम मदद करता है, किसी निरुपायता में नहीं धकेलता। प्रेम बांटता है, संग्रह नहीं करता। प्रेम सर्वोच्च बलिदान के लिए तैयार रहता है। 'शीश उतारे भुई धरे तब पैठे घर मांहि।' प्रेम कोई सरहद स्वीकार नहीं करता, कोई बंधन कुबूल नहीं करता। प्रेम कम होने लगता है, जब लालच बढ़ने लगता है, जब कोई जरूरत से ज्यादा चाहने लगता है। महात्मा गांधी ने कहा था, 'धरती सबकी जरूरतें पूरा कर सकती है लेकिन एक आदमी का भी लालच नहीं।' हमारे लालच ने धरती का किस तरह चीर-हरण किया है, किसी से छिपा नहीं है। धरती के गर्भ का पानी घट रहा है, तापमान बढ़ रहा है। आशंकाएं जताई जा रही हैं कि अगला विश्वयुद्ध पानी के लिए लड़ा जायेगा। इसी लालच की सभ्यता के प्रहार से अनगिनत पशु, पक्षी विलुप्त हो गए हैं, ऋतुएँ अपना अर्थ खो चुकी हैं। इसी लालच ने गरीब-अमीर के बीच संघर्ष का मार्ग प्रशस्त किया है। प्रेम ही एकमात्र रास्ता है। प्रेम ही है, जिसमें पाने की चाह नहीं होती, जिसमें नियंत्रित करने की लालसा नहीं होती। 'जिनको कछू न चाहिए, वे साहन के साह।' आज सब उल्टा हो गया है। समय-रथ का पहिया वक्र घूम रहा है। जिनको सब कुछ चाहिए, जो सब कुछ पाने की ताकत रखते हों, वही साहन के साह हैं। प्रेम ही इस चक्र को पलट सकता है। प्रेम ने बार-बार इसे पलटा है। बुद्ध आये, महावीर आये, बसवण्णा आये, कबीर आये, गांधी आये। सबने प्रेम को ही महत्वपूर्ण माना, सबने प्रेम का ही रास्ता दिया। इसी प्रेम ने नयी समाज रचना की राह बनाई। यह प्रेम केवल प्रेम नहीं है, यही क्रांति है। व्यक्ति के जीवन में भी और समाज के जीवन में भी। यह प्रेम पोथी पढ़कर नहीं हासिल किया जा सकता। 'पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भय न कोय। ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।' इस प्रेम के लिए संतों ने समय-समय पर धार्मिक ग्रंथों, शास्त्रों द्वारा खड़ी की गयी शोषण और दमन की इमारतों को ढहा दिया, धर्म, जाति और संप्रदाय की दीवारों को ध्वस्त कर दिया। अक्क महादेवी भी दुनिया के नाम एक प्रेम पाती लिखती हैं। वे शिव के प्रेम में डूबी नहीं रहतीं, अपना शिवत्व जगा लेती हैं। शिव नहीं रहता, शिवत्व रह जाता है। प्रेमी नहीं रहता, प्रेम रह जाता है। उनका रूपांतरण केवल एक व्यक्ति का रूपांतरण नहीं बल्कि समूची मानवता के रूपांतरण का बीज-रूप है। भक्ति मिले न मिले लेकिन इस दुनिया को अक्क महादेवी से उनका प्रेम पाना है। यह प्रेम मनुष्यता को एक नया अर्थ दे सकता है।

अक्क महादेवी अपने पुरखों को ठीक से जानती हैं। वे भारतीय दर्शन, विचार और साधना पद्धतियों से भी पूरी तरह परिचित हैं। योग और तंत्र का भी उन्हें ज्ञान है। यह साधारण सुना-सुनाया ज्ञान भर नहीं लगता क्योंकि वे उनके अंतरंग को कहीं स्वीकार करती हैं तो कहीं अस्वीकार करती हैं। यह उन्हें विधिवत जाने बिना संभव नहीं। उन्हें शास्त्रों के निखालिस किताबी ज्ञान से कोई मतलब नहीं। वे बहुत साफ़ कहती हैं

कि वेद, शास्त्र, आगम, पुराण / ये सभी धान की भूसी की तरह हैं / टूटे हुए चावल की तरह / इन्हें और कूटने यानी इन्हें बार-बार खंगालने की क्या जरूरत / बस मन का सिर काट दो / और पूर्ण शून्य तक पहुँच जाओगे।'

1. यह 'शून्य' ही सर्वोच्च सत्ता है लेकिन इसे इस तरह नहीं कहा जा सकता कि 'मैं जानता हूँ, मैं प्राप्त कर सकता हूँ' या 'वह तुम हो' या 'वह मैं हूँ।' शंकराचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्र में कहा है कि 'मैं ब्रह्म हूँ', अहम् ब्रह्मास्मि या 'वह तुम हो', तत्त्वमसि। महादेवी बिना नाम लिए वेदांत के इन महावाक्यों का खंडन करती हैं और कहती हैं कि ऐक्य की प्राप्ति के बाद यानी अपनी सत्ता के अनुभव के बाद 'मैं उसे कह नहीं सकती।' [2]. वे ज्यादा पढ़कर ज्ञान प्राप्त करने की जगह अनुभव को वरीयता देती हैं। एक अन्य वचन में वे अपना मंतव्य और स्पष्ट करती हैं।

वेद को बार-बार पढ़ना गले की फांस बन गया है
शास्त्रों को बार-बार सुनने से संशय पैदा होते हैं
आगम ज्यादा ज्ञान का दावा करते हुए
विवेकहीनता की ओर ले जाते हैं
पुराण भी वही गलती दुहराते हैं
ओह ! 'मैं' क्या हूँ और 'वह' क्या है
ब्रह्म और कुछ नहीं बल्कि पूर्ण शून्य है। [3.]

कई स्थानों पर वे 'योगी' शब्द का भी इस्तेमाल करती हैं लेकिन पारम्परिक अर्थ में नहीं। वे कहती हैं, 'बहुत ध्यान करने से वह हासिल नहीं होता/ शब्दों की बाजीगरी से भी बात बनती नहीं / योगी वही हैं जो अपने हृदय में उसका अनुभव कर लो।' [4]. उन्हें हठयोगियों की भाषा भी आती हैं लेकिन वे उसकी कायल नहीं हैं। वे कहती हैं कि वह 'नाद', 'बिंद' और 'कला' से परे है। हठयोग में चक्रभेदन की विधि बताई गयी है, जिसके जरिये मूलाधार से कुण्डलिनी को सहस्रार तक पहुँचाने की बात कही गयी है लेकिन अक्क महादेवी कहती हैं।

कोई आधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत,
विशुद्धि और आज्ञा चक्र की बात करता है तो क्या ?
कोई काल और कालातीत की बात करता है तो क्या ?
जब तक यह पता न हो कि वह 'एक' क्या है,
तब तक कोई साँस चढ़ाकर उसे हासिल नहीं कर सकता। [5].

महादेवी वैदिक धर्म के 'माया' सिद्धांत की भी जगह-जगह चर्चा करती हैं और योगियों की जीवन पद्धति को प्रश्नांकित करती हैं। वे माया से डरती नहीं, 'अगर मैं माया को त्याग दूँ तो भी वह छोड़ने वाली नहीं / जब मैंने ऐसा किया, उसने मेरा पीछा किया / माया योगी के लिए योगिन बनी / अगर मैं तुम्हारी माया से डरूं तो/ अभिशाप होगा मेरे लिए।' वे भक्ति शास्त्र से भी अनभिज्ञ नहीं हैं। उन्होंने कुछ समय योग भी किया होगा, ऐसे संकेत उनके वचनों में मिलते हैं। वे योगियों की तरह कम भोजन की बात करती हैं और कहती हैं कि 'ज्यादा खा लेने से नींद आती है, बीमारी आती है जो अज्ञान के अँधेरे की ओर ले जाती है, इससे देह, मन और हृदय में विकार पैदा होते हैं, वायु का दबाव बढ़ता है। ज्यादा मत खाओ, यह ध्यान, तपस्या और विराग में बाधा पैदा करेगा, अन्य की भावना बढ़ाएगा, लक्ष्य के प्रति सजगता कम करेगा और अंततः मृत्यु की ओर ले जायेगा। देह को नष्ट मत करो।' वे समाधि में प्रवेश करने की बात भी करती हैं। [6]. भक्ति के तीन रूपों 'सामीप्य', 'सारूप्य', और 'सायुज्य' का उल्लेख करते हुए वे अगस्त्य, कश्यप और जमदग्नि जैसे अपने पूर्वजों का स्मरण करती हैं और कहती हैं कि इसी रास्ते पर चलकर वे मृत्यु के भय को जीत सके थे। इसी अर्थ में वे सम्मानपूर्वक वाण और कालिदास का भी स्मरण करती हैं। [7]. तंत्र साहित्य की शब्दावली भी उनके वचनों में लक्षित की जा सकती है। 'वामदेव,' 'अघोर', 'तत्पुरुष' और 'ईशान' जैसे देवताओं को उन्होंने वहीं से उठाया होगा। वैसे उनके समय में शैव तांत्रिकों का भी काफी प्रभाव था। ऐसे लोगों के संपर्क में भी वे रही हो सकती हैं। वीरशैव दर्शन का धर्मशास्त्र रचने में भी उनके योगदान की बात कही जाती है लेकिन वे परम स्वाधीन संत की तरह किसी भी शास्त्रधर्मिता को कर्मकांड मानकर अस्वीकार कर देती हैं और अपने 'परम दैन्य' के साथ शिव के समक्ष हाजिर होती हैं। यहाँ तक कि स्वयं को भक्त मानने को भी एक अहमन्यता की तरह विसर्जित कर देती हैं, 'मैं भक्त नहीं हूँ क्योंकि मुझे नहीं मालूम / कि मालिक की सेवा कैसे की जाती है / मैं महेश्वर नहीं हूँ क्योंकि मुझे व्रत, कर्मकांड नहीं आता / मैं शरण नहीं हूँ क्योंकि मुझे लिंग पति हैं और शरण सती / यह बात समझ में नहीं आती। इसी वचन में वे कहती हैं कि मैं 'षडस्थल' में किसी स्थल पर नहीं हूँ।' [8]. दरअसल 'षडस्थल' वीरशैवों की भक्ति का सिद्धांत है। भक्ति के लिए छह सीढ़ियां बनाई गयी हैं और उन पर उत्तरोत्तर चढ़ने की प्रक्रियाएं बताई गयी हैं। अंतिम उपलब्धि है 'शून्य।' ऐसे में जिसने बिना इन सीढ़ियों के ही 'शून्य' को जान लिया है, वह साधना में नहीं है, न ही उसे साधना की आवश्यकता है। वे बहुत तर्कसम्मत तरीके से साधना के प्रचलित रूपों की निरर्थकता प्रमाणित करती हैं।

क्या मैं अष्ट-मार्ग की पूजा से
तुम्हें प्रसन्न कर सकती हूँ,
तुम बाह्याचारों से परे हो
क्या मैं हृदय में ध्यान से
तुम्हें प्रसन्न कर सकती हूँ
तुम मन की सीमा से परे हो
क्या मैं माला फेरकर और भजन गाकर
तुम्हें प्रसन्न कर सकती हूँ
तुम वाणी की पहुँच से परे हो
क्या मैं तुम्हें ज्ञान से प्रसन्न कर सकती हूँ
तुम किसी तर्क बुद्धि से परे हो
क्या मैं तुम्हें अपने हृदय-कमल में रख सकती हूँ
तुम मेरी समूची देह में भरे हुए हो
तुम्हें प्रसन्न करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है
तुम्हारा आशीष ही मेरा आनंद है। [9.]

असमर्थता का यह बोध ही उन्हें भक्ति और प्रेम की तरफ ले जाता है। अक्क महादेवी किसी भी शास्त्रीय व्यवस्था या सिद्धांत की घेरेबंदी से परे खड़ी नजर आती हैं। इस तरह वे किसी परंपरा, धर्मशास्त्र या किताब के बंधन में नहीं बंधती, किसी सिद्धांत या दर्शन को जैविक शक्ति की तरह नहीं अपनाती।भक्ति और प्रेम साथ-साथ चल सकते हैं। बिना प्रेम के भक्ति संभव नहीं है। भक्त प्रेमी हो सकता है और प्रेमी भक्त। कबीर की भक्ति पर विचार करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, 'भक्ति के लिए केवल एक ही बात आवश्यक है-अनन्य भाव से भगवान की शरणागति, अहैतुक प्रेम, बिना शर्त आत्मसमर्पण।' [10.] भक्त भगवान को किसी भी रूप में देख सकता है। पिता के रूप में, सखा के रूप में, गुरु के रूप में। प्रेमी के लिए भी यह छूट है लेकिन प्रेम जब साधना के रूप में हो तब भक्त को प्रियतमा का, स्त्री का रूप धारण करना पड़ता है। महादेवी प्रेम का रास्ता पकड़ती हैं, लेकिन यह भक्ति से होकर निकलता है। इसीलिये वे अपने प्रिय को प्रारंभिक चरण में 'पिता' कहकर सम्बोधित करती हैं, खुद को 'दासी', 'नौकरानी' मानकर आगे बढ़ती हैं। वे स्वयं को भगवान का प्यारा बच्चा कहती हैं। [11]. वे भीतर के भयानक जंगल को पार कर जब अपने प्रभु के पास पहुँचती हैं तो वह उन्हें गले लगाता हुआ कहता है, 'बेटी, तुम संसार को जीतती हुई यहाँ आयी हो।' वे भगवान का गुलाम बनने, दास और नौकर बनने में भी संकोच नहीं करती। जाहिर है नौकर मालिक

के सबसे पास रहता है और उसे उसकी सेवा का पूरा अवसर मिलता है। एक वचन में वे कहती हैं, 'मुझे गले लगा लीजिये / अपना चेहरा दिखा दीजिये / बाहर मत खड़ेडिये / मैं पूरी तरह समर्पित नौकर हूँ / मुझे बाहर मत भगाइये / विश्वास कर आप के पीछे आयी हूँ / जल्दी से मुझे अपने हृदय में रहने की जगह दीजिये।' [12.]

इन वचनों से ऐसे स्पष्ट संकेत मिलते हैं कि अपने शुरुआती समय में महादेवी ने भक्ति का ही रास्ता अपनाया। उसी के जरिये वे इतनी ऊंचाई पर पहुँच गयी कि शिव से प्रिय-प्रियतमा का रिश्ता बनाना सहज हो गया। गुरु दीक्षा अक्सर ज्ञान या भक्ति मार्ग में होती है। अक्क महादेवी को बचपन में ही गुरु से दीक्षा मिली थी। प्रेम का मार्ग सहज है, उसकी दीक्षा का कोई उदाहरण नहीं मिलता। इससे भी लगता है कि महादेवी के आध्यात्मिक जीवन की शुरुआत एक भक्त की तरह हुई थी। उनके यहाँ भक्ति की गहन संवेदना विद्यमान है। यह कोई मामूली चीज नहीं है। यहाँ आडम्बर से काम नहीं चलता। यहाँ लालसा और कामना के लिए कोई जगह नहीं। समर्पण से कम कुछ भी भक्ति के मार्ग में काम नहीं आता। उन्हें उन भक्तो की तलाश है, जो खुद को समर्पित करके संतुष्ट हैं। ऐसे भक्तों का वे स्वागत करने को तैयार हैं। स्वागत भी ऐसा-वैसा नहीं। कहती हैं, 'उनके लिए हरी पत्तियों से, गुब्बारों से अपना घर सजाऊँगी, ताज पहनूंगी और जब आप के भक्त मेरे घर आयेंगे, मैं अपना हृदय खोलकर उनके पवित्र चरणों को उसमें रोप दूंगी।' [13]. यानी वे सोचती हैं कि कोई सच्चा भक्त एक बार उनके यहाँ आ गया तो उसे खुद से बिछुड़ने नहीं देंगी। भक्ति मार्ग में जीत उन्हीं की है, जिन्हें समर्पण आ गया। दीनता के बिना समर्पण संभव नहीं। जब यह भाव मन में आ जाय कि अब बचाने वाला, राह दिखाने वाला कोई नहीं। बस एक ही है, भगवान ही है, तब समर्पण घटता है। यह दैन्य महादेवी के एक वचन में देखा जा सकता है, 'मेरी प्रार्थना सुनो / कृपा कर मेरी प्रार्थना सुनो / मेरी प्रार्थना स्वीकार करो / तुम मेरा रुदन क्यों नहीं सुनते / तुम्हारे सिवा मेरा कोई नहीं है / सुनो मेरी प्रार्थना।' और भक्ति के चरम पर जब उनकी प्रार्थना सुन ली जाती है, वे स्वयं को 'विश्वरूप' महसूस करती हैं।

भक्ति में भी विवेक की जरूरत होती है। 'रीजन' के बिना भटक जाने का खतरा बना रहता है। नीर-क्षीर विवेक, अकाट्य सजगता। यह अक्क महादेवी में हमेशा दिखता है।

अगर मैं कहूँ कि मेरी नजर ठीक है
और अँधेरे में दाखिल हो जाऊं तो क्या होगा
तुमसे मिली कृपा को नजरअंदाज कर
मैं कुछ और चाहूँ तो क्या होगा
संकीर्ण लोगों के साथ रहकर मैं
महानता पाने की सोचूँ तो क्या होगा? [14.]

महादेवी भक्तों के लक्षण भी बताती हैं, भक्त होने के लिए क्या जरूरी है, यह भी समझाती हैं, 'उसे जाति का अभिमान नहीं है/ क्योंकि वह किसी स्त्री की कोख से नहीं जन्मा / उसे किसी संकल्प का अभिमान नहीं है / क्योंकि उसका कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं है / उसे किसी संपत्ति का अभिमान नहीं है / क्योंकि वह वासनाओं से मुक्त है / उसे किसी विद्वत्ता का अभिमान नहीं है / क्योंकि उसने असंभव को प्राप्त कर लिया है / चूँकि उसे तुमने अपना बना लिया है / वह बिना देह के रहता है / इसलिए हे चेन्न / तुम्हारे भक्तों को कोई अभिमान नहीं है।' वीरशैव मानते हैं कि दीक्षा के साथ ही भक्त का जन्म होता है। इसी अर्थ में महादेवी भक्त के लिए कहती हैं कि वह स्त्री के गर्भ से नहीं जन्मा है। भक्त का सबसे प्रमुख लक्षण है कि वह बाहर-भीतर से एक जैसा रहता है क्योंकि उसने अज्ञान के अन्धकार को जीत लिया है। वे ज्ञान और भक्ति का फर्क भी बताती हैं लेकिन दोनों को एक-दूसरे का पूरक बताती हैं। ज्ञान अगर सूर्य है तो भक्ति उसकी रश्मियां। सूर्य के बिना रश्मियों की और रश्मियों के बिना सूर्य की कल्पना संभव नहीं है। इसी तरह भक्ति के बिना ज्ञान का और ज्ञान के बिना भक्ति का कोई मूल्य नहीं है। जब कोई सर्वोच्च सत्ता के प्रकाश को, उसके महत्त्व को, उसके वैराट्य को समझ लेता है, तभी उसके भीतर उसके पास होने, उसकी तरह होने या उससे एकमेक होने की भावना बलवती होती है, इसलिए भक्त के लिए ज्ञान की महत्ता असंदिग्ध है। भक्त के नाते ही वे आडम्बर, पाखंडप्रियता, लोभ-मोह के छद्म और किसी भी प्रकार की श्रेष्ठता के दर्प का खंडन भी करती हैं। यह अदम्य भक्ति ही महादेवी को प्रेम की यात्रा में ले जाती है और प्रेम उनकी जीवन-यात्रा का नाभिक बन जाता है।

प्रेम की जितनी गहन, सुन्दर, अप्रतिम और बहुविध अभिव्यक्तियाँ अक्क महादेवी के यहाँ हैं, शायद ही किसी काल की भक्ति कविता में हो। प्रेम 'सब कुछ' से 'कुछ नहीं' में बदल जाने का नाम है, 'संसार' से 'शून्य' तक की यात्रा है। प्रेमी मिट जाना चाहता है, खुद को मिटाकर अपने प्रियतम को अपने भीतर जिन्दा रखना चाहता है। अधिकांश भक्ति कविता में प्रेम एक 'मरण उत्सव' की तरह उपस्थित है। कबीर कहते हैं, 'जिस मरनैंथैं जग डरे, सो मेरे आनंद /कब मरिहूँ कब देखहूं पूरण परमानंद।' हजारी प्रसाद द्विवेदी इस मृत्यु कामना पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं, 'मृत्यु? मरना भी कोई चाहेगा ? पर भक्त मरना चाहता है, आत्महत्या नहीं। सांसारिक विषयी व्यक्ति आत्महत्या करते हैं। मृत्यु तो संग्राम में होती है, जौहर से होती है-जहाँ मरने वाला अपने को बलिदान कर देता है। जो अपने को बलिदान नहीं करता, वह रोग-शोक का शिकार हो जाता है। उसकी मृत्यु परवश-मृत्यु है या आत्मघात है। पर जो प्रतिक्षण अपने को उत्सर्ग कर सकता है, जो सदा सिर हथेली पर लिये है, वह जीता भी है तो मृत्यु का वरण करके। अपना आप ही तो सीमा है, बंधन है, भय है। उसको त्याग देना और बलिदान कर देना ही मृत्यु है। सो, कबीरदास इसी मृत्यु को वरण करने की सलाह देते हैं। मरके मरना तो कोई मरना नहीं हुआ, क्यों न जीते ही मरा जाए ? अपने-आप को उत्सर्ग कर देना ही जीते हुए मर जाना है, 'हौं तोहि पूछौं हे सखी, जीवत क्यों न मराई / मूँवा पीछे सत करै, जीवत क्यूँ न कराई।' 15. यह कबीर के प्रेम का आदर्श है। अगर कहा जाय कि कबीर से बहुत पहले यह अक्क महादेवी के जीवन का आदर्श था, तो कोई गलती नहीं होगी। वे अपने वचनों में बार-बार खुद को मिटा देने की बात करती हैं, सम्पूर्ण उत्सर्ग का संकल्प जताती हैं, जताती ही नहीं कर डालती हैं।

जब मेरे गुरु ने मेरी हथेली पर लिंग की तलवार रखी
मैं लड़ी और मैंने काम को जीत लिया
क्रोध सहित सारे दुश्मन मारे गए
लालसाएं भाग खड़ी हुईं
क्योंकि तलवार मेरे भीतर घुस गयी
और मैं ख़त्म हो गयी। [16.]

यह प्रेम अनहद है। महादेवी अपने प्रियतम के हाथों मरने को तैयार हैं, 'क्या चन्दन काटे और घिसे जाने के कारण अपनी सुगंध छोड़ देता है / क्या सोना काटे और तपाये जाने पर अपनी चमक त्याग देता है / क्या गन्ना काटे जाने, पेरे जाने और गुड़ बनाने के लिए गर्म किये जाने की पीड़ा के चलते अपनी मिठास छोड़ देता है / अगर तुम मेरे बीते दिनों के सारे पाप इकठ्ठा करो और मेरे मुंह पर दे मारो तो नुकसान तुम्हारा ही होगा / तुम मुझे मार भी डालो तो भी मैं यह कहना कभी नहीं छोड़ूंगी कि मैं तुम्हारे आगे प्रणत हूँ।' वे अपने प्रियतम को एक सुन्दर चित्र बिम्ब से समझाती हैं, 'जैसे एक हाथी चमकते पत्थर में अपनी छाया देखकर / उससे लड़ते हुए मारा जाता है / वैसे ही मैं भी अपनी छाया से लड़ रही हूँ / अंत भी वैसा ही होना है / हाथी जिससे लड़ता है/ वह हाथी है फिर

भी हाथी नहीं है / जब तुम मेरी हथेली पर हो तो/ यह 'मैं' और 'तुम' का भ्रम क्यों है / मैं कुछ नहीं बल्कि तुम ही हो।' वे खुद को मिटा देती हैं और देह में होते हुए भी देह में नहीं होती हैं। वहां उनका प्रियतम होता है। यहाँ फिर कबीर याद आते हैं, 'जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं / प्रेम गली अति सांकरी, जा में दो न समाहिं।' प्रेम में एक को तो मिटना ही पड़ता है। जो अक्षर है, वह कैसे मिटेगा। इसीलिये प्रेमी भक्त को ही मरने का रास्ता चुनना पड़ता है। अक्क महादेवी जब खुद को मिटाती है, जब अपने लिए जीते-जी मृत्यु चुनती हैं तो वे रहकर भी नहीं रहतीं, उनके शरीर में चेन्न मल्लिकार्जुन यानी उनका प्रियतम रहने लगता है। धीरे-धीरे वह इस देह पर कब्ज़ा जमाता है। महादेवी देह, मन और हृदय को मिटाकर प्रियतम के हृदय में प्रविष्ट हो जाती हैं, उसी में समा जाती हैं। वे खूबसूरत ढंग से इसका बयान करती हैं।

जब मेरी देह ने तुम्हारा रूप धरा
जिसकी मैं सेवा करती हूँ
जब मेरा मन तुम्हारे स्मरण से भर गया
जिसकी मैं प्रार्थना करती हूँ
जब मेरी साँसें तुम्हारी साँसों से मिल गयी
जिसकी मैं आराधना करती हूँ
जब मेरी चेतना तुम्हारी चेतना में विलीन हो गयी
मैं और किसे जान सकती हूँ
चूँकि तुमने ही तुम्हारे जरिये यह रचा है
तुम्हारे जरिये ही तुम्हें जान पायी हूँ। [17].

प्रेम में स्वप्न का बहुत महत्त्व है। यह एक फैंटेसी की तरह है। पहले प्रेम स्वप्न में घटता है और फिर जीवन में। वे एक भिखारी को सपने में देखती हैं, जो कुछ मांगने घर आया है। वे उसके पीछे भागती हैं। वह उनकी पहुँच से बाहर है। वे उसकी ओर हाथ बढ़ाती हैं और तभी उनका प्रियतम चेन्न मल्लिकार्जुन दिखाई पड़ता है। उनकी नींद टूट जाती है। उनके स्वप्न कई बार कल्पनाओं में बदल जाते हैं। वे जागते हुए भी प्रिय से मिलन की कल्पनाएँ करती हैं। इस तरह वे अपना एक अद्भुत संसार रच देती हैं। कहती हैं, 'हे, पुरुष श्रेष्ठ आओ। तुम्हारे आने से ही मेरी सांस लौटेगी। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ। आशा है तुम आओगे। आकुलता में मेरा मुँह सूख रहा है।' 18. उनकी कल्पना इससे आगे तक पहुँचती है। वे सोचती हैं कि अगर गुरु उनके घर आ गया तो कैसे उसका स्वागत करेंगी। गुरु ने ही तो प्रियतम तक पहुँचने का मार्ग दिखाया है। अत्यंत सुंदर शब्दों का प्रयोग करते हुए वे कहती हैं।

अगर मेरा गुरु आज घर आया
तो मैं आँखों से बरसे जल को अपने
देह-घट में भरकर उससे उसके पाँव धोऊंगी
उसके शरीर पर परम शांति का शीतल इत्र लगा दूंगी
हृदय-कमल से उसकी पूजा करूंगी
और शिवलोर का पावन दीप जलाकर
परम संतोष का भोजन परोसूँगी
तृप्ति का पान खिलाऊंगी
पांचब्रह्म के पांच संगीत वाद्य बजाऊंगी
उसे प्रसन्नता से देखूंगी और आनंद से नाचूंगी
उनके चरणों में पानी की तरह पिघल जाऊंगी। [19].

फिर भी समस्या यह है कि जब तक संसार है, यह सपना, यह कल्पना कैसे सच होगी। संसार को, यानी वासनाओं को, लालसाओं को तो मिटाना होगा। महादेवी के हाथ में 'शिवशरण' की तलवार है। एक ऐसी तलवार जो टूट नहीं सकती। वे संकल्प जताती हैं कि मैं वासनाओं को जिन्दा नहीं जाने दूंगी। उन्हें मारकर मैं अपने प्रियतम को खुश कर दूंगी। उनके प्रेम में गलदश्रु भावुकता, स्वेद, कम्प नहीं दिखता लेकिन एक गहरी पुकार जरूर सुनायी पड़ती है। यह समर्पण की पुकार है, एकतरफा है क्योंकि प्रेम में कोई शर्त नहीं होती। यह समर्पण की इन्तहा है, अपने प्रियतम को प्रेम से भी मुक्त कर देने जैसी बात है। उन्होंने स्वयं को पूरी तरह अपने प्रियतम पर छोड़ दिया है, वह जैसा चाहे करे। उन्हें कुछ नहीं चाहिए, वे केवल प्रेम करेंगी, 'मेरी पुकार सुन सको तो सुनो / न सुन सको तो मत सुनो / मेरी वेदना महसूस कर सको तो करो/ नहीं कर सको तो मत करो / तुम पर कोई बंधन नहीं / अगर तुम इंकार कर दो तो मैं तुम्हारा प्रेम कैसे हासिल कर पाऊंगी / जब मेरा पुकारता हृदय तुममें विलीन हो जायेगा / तो मुझे कैसे अपनाओगे। [20].

अक्क महादेवी का समर्पण उनके प्रेम को और प्रगाढ़ बना देता है। वे कण-कण में अपने प्रिय को महसूस तो करती हैं लेकिन वह सामने नहीं आता। वे मधुमक्खियों के झुंड से, आम के पेड़ों से, चन्द्रमा की किरणों से, कोयल से करुण निवेदन करती हैं, अगर संयोगवश भी वह तुम्हें दिखाई पड़ जाय तो मुझे आवाज देना, उसे मेरे बारे में बता देना। वे प्रेम के समर में एक बहादुर योद्धा की तरह आगे बढ़ती हैं। अब पीछे लौटना संभव नहीं। प्रिय उनकी बात सुने, न सुने, उन्हें प्रेम करे, न करे। वह किसी और से प्रेम करे तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। वे जानती हैं कि उन्होंने जो रास्ता चुना है, वह बहुत आसान नहीं है। बहुत कंटकाकीर्ण है। प्रियतम भी बहुत सरलता से गले लगाने वाला नहीं है। वे अपने लिए कष्ट, दुख, वेदना, पीड़ा आमंत्रित करती हैं। जितना दुख आएगा, उतना ही प्रिय के करीब पहुँचती जाऊंगी। वे अपने प्रियतम से निवेदन करती हैं कि जितना दर्द दे सकते हो दो ताकि मन पर कोई मैल, कोई दाग न रह जाय। महादेवी की प्रेम वेदना उनके भीतर अतीन्द्रीय यौनिक सवेदना जगा देती है। वे प्रसाद में ही सम्भोग का आनंद अनुभव करती हैं। 'मेरा जीवन तुम्हारा प्रसाद है। मेरी आत्मा तुम्हारा प्रसाद है। मैं प्रसाद बिछाती हूँ और वही ओढ़ती हूँ। तुम्हारा प्रसाद ही मेरे लिए सम्भोग का आनंद है।' 21. वे खूबसूरत देह बिम्ब के साथ अपने वचन में उपस्थित होती हैं और शिव को पुकारते हुए ऐसे बंधन में बंधना चाहती हैं, जिसके कोई निशान न रह जाएँ। तड़प का एक आकर्षक बिम्ब उनकी कविता में उभरता है। वे द्वंद्व और द्वैत से उपजी लाज-शर्म से मुक्त होकर अपने उन्नत स्तनों को अपने प्रियतम के सीने पर कुचल देना चाहती हैं।

हे शिवा ! कब मैं अपने
इन घट-स्तनों से तुम्हें कुचल पाऊंगी
कब मैं मन के शील और देह की शर्म से
मुक्त होकर तुमसे मिल पाऊंगी। [22].

पीड़ा बढ़ती जाती है और यही पीड़ा उन्हें उत्तप्त प्रेम के विराट अनुभव तक ले जाती है। वे कहती हैं, 'तुम्हे जान लेने के बाद नर्क में रहना मुक्ति है / तुम्हे जाने बिना मुक्ति भी नर्क के सामान है / आनंद जो तुम नहीं चाहते, दुख है / और दुख जो तुम्हें पसंद है / महत्तम आनंद है।' इसी रास्ते वे प्रेम के शिखर का स्पर्श कर लेती हैं। एक वचन में वे इसका बयान करते हुए जो बिम्ब रचती हैं, वह अतुलनीय है। वे कहती हैं, 'चेन्न मल्लिकार्जुन ने प्रेम की जो तलवार मेरी देह में घुसेड़ी है, वह भीतर घुस कर टूट गयी है। जैसे कोई बाँझ स्त्री प्रसव की वेदना नहीं समझ सकती, सौतेली माँ पुत्र-स्नेह नहीं समझ सकती / वैसे ही जिसने दर्द नहीं सहा है / वह नहीं समझ सकता कि दर्द क्या है।' [23]. दर्द का इंतेहा ही दवा हो जाना है। उन्हें भी अंततः इस दर्द की मदद से ही मिलन संभव हो पाता है। वे जीवन और जगत के सारे व्यवहार को अलविदा कहकर अपने प्रियतम के घर की ओर रवाना हो जाती हैं। द्वैत को जीत लेती हैं। मैं और वह का भेद मिट जाता है। अक्क महादेवी मर कर अपने प्रियतम के भीतर जीवित हो उठती हैं। प्रिय से मिलन ही मृत्यु

है। अपनी इस मृत्यु का वे बहुत सुंदर वर्णन करती हैं।

जीवन का अध्याय बंद हो गया
चेन्न मल्लिकार्जुन पर भरोसा कर
मैंने जीने की चाह छोड़ दी। [24.]

महादेवी के प्रेम में अद्वितीयता है, साहस है। शिव को प्रियतम बनाने और उन्हें पति के रूप में हासिल करने का संकल्प कोई मामूली संकल्प नहीं है। बड़े लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बड़े त्याग की, बड़े साहस की जरूरत होती है, अनन्यता और अखंड विश्वास की जरूरत होती है। विराट का स्वप्न, विराट की कल्पना सहज है लेकिन उस स्वप्न को हासिल कर लेना असाधारण बात है। एक रूप में है, दूसरा अरूप, अव्यक्त है, एक सीमा में है, दूसरा असीम, अनहद है, एक गुणाश्रित है, दूसरा गुणों से परे है। दोनों का प्रेम असंभव है, जिसे अक्क महादेवी ने संभव किया। इस प्रेम के लिए उन्होंने खुद को मांजा, साफ किया। भीतर के संसार को मार दिया। सारी इच्छाओं से मुक्ति पायी और इस तरह अनन्यता के महालोक में दाखिल हुई। यहीं वे ऐसे रंग में रंग जाने की बात करती हैं, जो कभी उतरता नहीं। उनका प्रेम अनासक्त प्रेम था। भले वह प्रियतम को पाने की चाह से शुरू हुआ हो, लेकिन अक्क महादेवी ने बाद में इस चाह से भी मुक्ति पा ली।

जब वह अपने प्रियतम से मिलन की कामना से भी मुक्त हो जाती हैं, शिव उनका दरवाजा खटखटाने आ जाता है। महादेवी का प्रेम भक्ति कविता में अन्यतम है क्योंकि यहाँ प्रिया प्रियतम से एक ही नहीं होती, वह प्रियतम की सत्ता में और प्रियतम उसकी सत्ता में रूपांतरित हो जाता है। जहाँ एक तरफ वह कहती हैं कि शिव से मिलकर वे मर गयीं, वहीं वे यह भी कहने से नहीं चूकतीं कि उनके मर जाने पर शिव भी आखिर कैसे जीवित रह सकता है। यह प्रेम में द्वैत का मिट जाना है लेकिन यह एकतरफा होते हुए भी एकतरफा नहीं रहता। इस तरह वे सब कुछ खोकर सब कुछ पा लेतीं हैं। अक्क महादेवी भक्ति और प्रेम का ऐसा ताना-बाना बुनती हैं, जिसके भविष्य में भी अनेक पाठ-पुनर्पाठ किये जाते रहेंगे, जो अपने कथ्य, अपनी संवेदना और अपनी अद्वितीयता के आलोक से भावी पीढ़ियों के भीतर नया उजाला पैदा करता रहेगा।

****

छायावादी काव्य जगत में श्री सुमित्रा नन्दन् पंत का स्थान

षीना.वी.के
सह आचार्या हिन्दी विभाग
सरकारी ब्राण्णन कॉलेज तलश्शेरी

सारांश ----इस लेख मैं छायावादीकवि सुमित्रा नंदन पंत के परिचय दिए हैं। उनकी छायावादी रचनाओं की विशेषताएं कतिपय उदाहरण सहित प्रस्तुत करके विश्लेषण किये हैं।

बीजवाक्य- हिंदी साहित्य के आधुनिक काल की छायावादी कविता के महत्वपूर्ण कवि हैं सुमित्रा नंदन पंत। उनकी छायावादी कविताएं हिंदी साहित्य जगत मैं लोकप्रिय हैं। इसके उद्धाटन करना लेख के उद्वेश हैं।

हिन्दी साहित्य की मुख्यत: दो विधाएँ हैं। वे है पद्य साहित्य और गध्य साहित्य। पद्य साहित्य हिन्दी साहित्य की एक समृद्ध विधा हैं। अध्ययन की सुविधा केलिए हिन्दी कविता विधा को विभिन्न युगों में बाँटा गया हैं। वे हैं भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद युग, प्रगतिवाद युग, प्रयोगवाद युग, और नयी कविता का युग आदि। हिन्दी काव्यधारा के विकास में छायावादी युग का अपना महत्व हैं। प्रकृति के विभिन्न तत्वों का परस्पर निवेदन ही छायावाद हैं। हिन्दी छायावादी काव्य के प्रमुख कविगण हैं - जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन् पंत, सूर्यकाँत त्रिपाठी निराला, और महादेवी वर्मा। हिन्दी में छायावाद संबन्धी आलोचनात्मक लेखन मुकुटधर पाण्डेय द्वारा प्रस्तुत हुआ था। छायावाद के प्रमुख कवियों में एक थे सुमित्रानन्दन पंत जिन्होंने छायावादी काव्य साहित्य को अत्यंत समृद्ध किया। श्री सुमित्रानन्दन पंत का जन्म 20 मई सन् 1900 ई. में अलमोडा जिले के कौसानी नामक गाँव में हुआ था। यह स्थान अपनी प्राकृतिक शोभा केलिए अत्यंत प्रसिद्ध हैं। प्रकृति के प्रति श्री पतंजी का अनुराग इसी नैसर्गिक एवं प्राकृतिक सौदंर्य के कारण हैं। प्रकृति उनकेलिए सबकुछ थी। पतंजी प्रकृति का चितेरा हैं। उनकी प्रमुख काव्यकृतियाँ हैं - वीणा, ग्रंथि, पल्लव, गुँजन, ज्योत्सना, युगाँत, युगवाणी, ग्राप्या, स्वर्ग किरण, स्वर्णधूलि, उत्तरा, रजत शिखर शिल्पी, सैवर्ण, अंदिमा, वाणी, कला और बूढा चाँद, लोकायतन आदि। श्री पंतजी की काव्यकृतियाँ, उनके मानसिक विकास की श्रृखलाएँ हैं। इनके अन्य काव्यसंग्रह है पललविनी, आधुनिक कवि भाग – दो, चिदंबरा, रश्मिबंध, और तारापथ। पंतजी का प्रकृतिप्रेम अत्यंत् चर्चित हैं। उनकी छायावादी रचनाओं में उनका सहज प्रकृति प्रेम देख सकते हैं।

श्री पंतजी बहुमुखी प्रतिभा के धनी है। वे एक परिवर्तन शील और प्रगतिशील कवि रहे है। उन्हें हिन्दी काव्य साहित्य के किसी वाद की सीमा में रखना कठिन कार्य ही हैं। श्री सुमित्रानन्दन पंत की प्रारंभकालीन रचनाएँ उनके छायावादी काव्य के अंतर्गत आती हैं। 1918 में उनकी प्रथम रचना वीना प्रकाशित हुई और इस रचना के द्वारा वे काव्यजगत में आए

और बाद में अनेक काव्यरचनाएँ उनके द्वारा प्रकाशित हो गई जो हिन्दी काव्यजगत में काफी मूल्यवान तथा अनुपम बन पड़ी। सुमित्रानन्दन पंत की अनेक रचनाएँ प्रकाशित हो गई लेकिन उन सबको छायावादी साहित्य के अंतर्गत नहीं रखा जा सकता है। उस दृष्टि से पंतजी की प्रारंभिक रचनाएँ जैसे वीना, ग्रंथी, पल्लव गुजंन उनके छायावादी काव्य हैं। इन ग्रन्थों को उनके सौदर्य युग की रचनाएँ भी कहा जा सकता है। क्योंकि इन रचनाओं में श्री पंतजी की सौन्दर्या त्मक दृष्टि देख सकते हैं। वैयक्तिकता वेदना, सौदर्य, प्रेम, रहस्यात्मकता आदि काव्य के भावक्षेत्र की विशेषता हो तो लाक्षणिकता , चित्रात्मकता, ध्वन्यात्मकता, प्रतीकात्मकता आदि विशेषताएँ काव्य की शैलीगत विशेषता हैं। श्री सुमित्रानन्दन पंत की 1918 से 1920 तक की कविताओं के संग्रह है वीना। इस रचना में कालिदास, सरोदिनी नायिडु, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, रामकृष्ण परमहँस, स्वामी विवेकानंद आदि के प्रभाव हैं। इस संग्रह की रचनाएँ भावप्रधान हैं। इन रचनाओं में बालसुलभ चपलता, किशोर कल्पना, ज्यादातर मिलते हैं।ग्रंथि उनके दूसरे काव्यसंग्रह हैं जो 1920 में प्रकाशित हुई थी। इसमें प्रेम के विरह पक्ष देख सकते हैं। कुछ लोगों का विचार हैं कि कवि को यथार्थ में एक असफल प्रेम घटना अनुभूत हुई हैं। उसी का प्रतिफलन ही ग्रंथि काव्य का कथा विषय हैं। लेकिन कवि ने स्वयं कहा हैं कि यह उनकी यथार्थ अनुभूति नहीं काल्पनिक भावतल की सृष्टि हैं। प्रगीतात्मकता के तत्व इसमें निहित हैं। पूरी कथावस्तु प्रकृति के सन्द्रर्भ पर विकसित होती हैं। इसकी भाषा आलंकारिक तत्व से पूर्ण और प्रौढ हैं। माना जाता हैं कि ग्रंथि का केंद्रपात्र स्वयं कवि ही हैं।

पंत के तीसरे काव्यसंग्रह हैं पल्लव, यह उत्कृष्ट रचना हैं। वीना और ग्रंथि में यदि बालसुलभ चपलता है तो पल्लव में आते ही कवि की भावना कल्पना, अभिव्यंजना की क्षमता, अनुभूति आदि चरम अत्कर्ष पर पहूँच गए। इसमें कवि प्रेम प्रकृति तथा रहस्य के कवि बनकर आते हैं। वे प्रकृति के मानवीकरण करने में कुशल हैं। वीणा में प्रकृति माता के रूप में थी जबकि पल्लव में प्रकृति कवि की जीवन सहचारी बन गई हैं। पल्लव में कवि के प्रेम की उत्कृष्ट भावना हैं।

गुंजन में कवि के अलग रूप देख सकते हैं। गुँजन कवि के चौथे काव्य संग्रह हैं। इसमें शिवम को महत्व देते हैं। उसमें सौदर्य और कल्पना के अभाव नहीं हैं। सौदर्यात्मक अभिव्यक्ति प्रचुर मात्रा में हैं। गुंजन में कवि की अन्तर्मुखी भावना मिलती हैं। कवि ने गुंजन को अपनी आत्मा की गुंजन कहा हैं। गुंजन में कवि मानव को अत्यंत महत्व देते हैं। इसमें कवि मानव के गीत गाता हैं। उन्होंने गुंजन काव्यसंग्रह में नौकाविहार,चाँदनी, भावि पत्नी आदि अनेक विषय को प्रस्तुत किया हैं। युगाँत पँत के महत्वपूर्ण काव्यसंग्रह हैं जिसमें कवि ने नवीन क्षेत्र को अपनाने की चेष्टा की है। इसमे सन् 1934-36 के बीच की रचनाएँ आती है। युगाँत में छायावादी सौंदर्य युग का अन्त और प्रगतियुग की भूमिका तैयार हुई है। यह रचना कवि के छायावाद एवं प्रगतिवाद युग के मध्यवर्ती हैं। इस रचना में चिंतन प्रधान कविताएँ और छायावादी प्रकृति को एकदम छोडकर कवि मानवजगत की मंगल आशा से प्रेरित होकर अपने मानवतावादी स्वर को बुलन्द करते हैं। युगाँत अनुभूति प्रधान रचना नहीं हैं। इसमें प्राचीनता प्रकृति संबन्धित गीत आदि भी देश सकते हैं। पंत काव्य के भावपक्ष मे अत्यंत मनोरम तथा आशा- निराशा, सुख – दःख, राग- विराग, हर्ष-विषाद आदि के सम्मिश्रण रूप मिलते हैं। पंत के मानवतावाद के सुन्दर उदाहरण उनके प्रमुख काव्य युगान्त में प्राप्त होते हैं। प्रकुति-प्रेमी कवि ने युगँत में मानव को सुन्दरतम कहा हैं। उनका कथन है कि सुमन, विहग सब सुन्दर हैं कितु मानव सुन्दरतम हैं।

सुन्दर है विहग, सुमन सुन्दर मानव तुम सबसे सुन्दरतम, निर्मित सबकी तिल सुषमा से तुम निखिल सृष्टि में चिरनिरूपम । मानव का सबसे बडा महत्व इसमे हैं कि वह मानव हैं। सौन्दर्य बोध के अन्तर्गत नारी सौदर्य प्रकृति सौदर्य, वस्तुगत सौदर्य, कलात्मक सौदर्य आदि उनकी रचनाओं में देखनेयोग्य हैं। नारी के बारे में. पंत ने कहा हैं कि संसार में नारी सर्वश्रेष्ठ हैं। यदि स्वर्ग कहीं हैं पृथ्वी पर तो वह नारी उर के भीतर। नारी में पवित्रता हैं समग्र मंगल की भावना हैं। कवि के शब्दों में नारी के चित्रण देखिए।

"तुम्हारे छूने में था प्राण,
संग में पावन गँगा स्नान,
तुम्हारी वाणी में क्लयाणी
त्रिवेणी की लहरों का गान।"

कवि की नारी सुषमामयी हैं।प्रस्तुत पंक्तियाँ देखिये।

"उषा का छा उर में आवास,
मुकुल का मुख में मृदुल विकास
चाँदनी का स्वभाव मे भास,
विचारों में बच्चों के साँस।"

कवि पंत की नारी विषयक भावना आदर्श पूर्ण हैं। श्री पंतजी की सौंदर्यात्मक अभिव्यक्ति अत्यंत अनुपम हैं । उनकी एक कविता की पंक्ति देखने योग्य हैं।

"नव नव सुमनों से चुनचुनकर
धूलि, सुरभि, मधुरस हिमकण
मेरे उर की मृदु कलिका में
भर दे कर दे विकसित मन।"

सुमित्रामन्दम पंत सौंदर्य दृष्टा और सौंदर्य स्त्रष्टा हैं। वे गहन तत्वचिंतक और मनीषी कवि हैं। वे ईश्वर पर विश्वास करनेवाले आस्तिक कवि के रूप में हमारे सामने प्रकट होतें हैं। उनका विश्वास हैं कि संसार के सृष्टि, स्थिति संहार का कारण अद्वैत ईश्वर हैं। ईश्वर सत्यम, शिवम सुन्दरम हैं। गुंजन में चाँदनी के प्रतीक के रूप में ईश्वर के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया हैं। कवि के अनुसार प्रपंच के समस्त चराचरों में ईश्वर के अस्तित्व हैं। नौकाविहार नामक रचना में पुनर्जन्म सिद्धाँत के चित्रण हैं।
पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरे

शयनं, सिद्धाँत को वे महत्व देते हैं। श्री पंतजी का जीवन दर्शन अत्यंत आदर्शयुक्त हैं। वे संसारे को स्वर्ग बनाना चाहते हैं। और मानव को ईश्वर तुल्य स्थान प्रदान करते हैं। कहा जाता हैं कि काव्य की उत्पत्ति शुद्ध अनुभूती से होती हैं। इन अनुभूतियों में एक वेदना भी हैं। वेदना को काव्य जननी कही हैं। कविवर पंत में वैयक्तिकता और विश्ववेदना का स्वर मुखरित हैं। उनहोंने कहा हैं.

वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान
उमड़कर आँखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान।
तारों का नभ तारों का नभ
सुन्दर समृद्ध आदर्श सृष्टि।

निष्कर्षतः -

कह सकते हैं कि श्री पंतजी की छायावादी कविताएँ भावपक्ष तथा कलापक्ष की दृष्टि से अनुपम हैं। उनकी रचना में वैयक्तिकता, संगीतात्मकता भावप्रणता आदि विशेषताएँ अन्तलीन हैं। हिन्दी गीतकारों मों श्री सुमित्रानन्दन पंत का महत्वपूर्ण स्थान हैं। रहस्यात्मकता, गीतात्मकता, प्रकृति, सुन्दर, अभिव्यंजनापक्ष आदि उनकी रचनाओं में बखूबी मिलते हैं।पंत की साहित्य यात्रा के विभिन्न सोपान हैं जैसे छायावाद, प्रगतिवाद, आद्यात्मवाद, अरविंद दर्शन, आदि। छायावाद के चार कवियों मे पंत के स्थान प्राउढ़ तथा उन्नत हैं।

****

सन्दर्भ ग्रन्थ

सुमित्रा नंदन पंत –राजनाथ शर्मा

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री जीवन के चित्र

डॉ.सारिका देवी
डॉ.राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय
अयोध्या उ0प्र0

स्त्री सदैव ही अपनी अस्मिता को लेकर आवाज उठाती रही है। यह बात और है कि इस शोरगुल भरे समाज में उसकी आवाज बहुत मन्द सुनाई देती है। जिसे अधिकतर समाज अनदेखा करता आया है और जिसने भी उसकी आवाज सुनी भी वह बहुत आगे नहीं बढ़ा पाया है। लेकिन प्रयास निरंतर होते रहे हैं और यह प्रयास तब तक जारी रहेगा जब तक स्त्री को उसका संपूर्ण अधिकार न मिल जाये।

प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक स्त्री के प्रति व्यवहार दोयम दर्जे का ही रहा है। आधुनिक समय में पुरुषवादी सत्ता समाज पर इस तरह हाबी है कि लोग स्त्रियों के बारे में सोचते हैं तो भी पुरुषवादी दृष्टिकोण से जैसे पुरुषों से अलग स्त्रियों का कोई स्वतंत्र अस्तित्व ही न हो। पुरुष और स्त्री का शारीरिक गठन भी कहीं न कहीं स्त्री के उपेक्षित होने का मुख्य कारण रहा है।

साहित्य में रचानकार अपनी रचनाओं के माध्यम से स्त्री अस्मिता को विभिन्न प्रकार से चित्रित करते रहे हैं। लेखक और लेखिका स्त्रियों के जीवन से सम्बन्धित विषमताओं को अपने रचनाओं के माध्यम से चित्रित करते रहते हैं। जिनमें मैत्रेयी पुष्पा का नाम अग्रगण्य है। जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से स्त्री जीवन के विभिन्न विसंगतियों को चित्रित करने का कार्य किया है।

मैत्रेयी जी की रचनाओं में मध्यवर्गीय ग्रामीण एवं शहरी महिलाओं के जीवन संघर्ष को बखूबी चित्रित किया गया है। मैत्रेयी जी ने स्त्री जीवन के उन सभी समस्याओं पर प्रकाश डाला है जिसके कारण स्त्रियों का जीवन दुरूह हो गया है। मैत्रेयी जी ने अपने निजी अनुभवों द्वारा उपन्यास लेखन क्षेत्र में वास्तविकता को स्थापित किया है। मैत्रेयी जी की उपन्यासों में वंचित, पीड़ित, दलित एवं पिछड़ी जाति की स्त्रियों के उत्थान को दिखाया गया है। उनके जीवन से जुड़े तमाम सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पहलुओं पर गंभीरतापूर्वक विचार प्रस्तुत किया गया है। साथ ही स्त्री संघर्ष की गाथा भी प्रस्तुत की गई है। मैत्रेयी जी ने स्त्रियों के अधिकारों के प्रति चेतना जागृत करने का संपूर्ण प्रयास किया है। मैत्रेयी जी अपनी रचनाओं के माध्यम से स्त्री समाज में वो क्रांति लाना चाहती है, जिसमें स्त्रियों को पुरुषो के समान अधिकार मिले। वह अपनी निर्णय के लिये स्वतंत्र हो। समाज में स्त्री, पुरुष को समान अधिकार प्राप्त हो।

‘‘किसी कार्य का अनुभव बिना कारण के ही नहीं होता है। साफ -साफ दिख रहा है कि स्त्रियों, आदिवासियों और दलितों के बारे में अब तक जो लिखा गया है वह अनुमान के आधार पर है। जबकि सच्चाई आयेगी अनुभव के आधार पर चित्रित करने से’’।

अपनी रचनाओं में स्त्री को आधार बनाकर लिखने वाली मैत्रेयी पुष्पा कहानी उपन्यास और स्त्री विमर्श के लिए विशेष रूप से जानी जाती है। इन्होंने विभिन्न विधाओं पर अपनी लेखनी की है। मैत्रेयी जी का रचना संसार में प्रमुख स्थान रहा है जिसका प्रमुख कारण उपन्यास विधा रही है। जिसमें इन्होंने ग्रामीण जीवन की यथार्थ घटना को चित्रित किया है जिसमें स्त्री चरित्र प्रमुख रहा है।‘‘मैं अपनी बेटी को पढ़ा लिखाकर बड़ा करूँगी कि मेरे, तुम्हारे बाद वह अपने दुश्मनों का मुकाबला करे।’’मैत्रेयी जी ने अपने लेखन का आरम्भ ‘‘स्मृति दंश’’ नामक उपन्यास से किया। गाँव की पृष्ठिभूमि मे रची बसी जीवन के गन्ध को

समाज में अपनी भूमिका के रूप में दर्शाने वाली मैत्रेयी जी ने अपने पहले उपन्यास स्मृति दंश में एक असहाय स्त्री के जीवन की गाथा को चित्रित किया है।विंध्य के अंचल में पली-बढ़ी 'भुवन' ससुराल में तरह-तरह की कठिनाइयों का सामना करती है और अन्त में उसे अपने प्राण गंवाने पड़ते है। स्मृति दंश में भुवन का ऐसा अन्त मैत्रेयी जी के मन को उद्वेलित करता है जिसे उन्होंने नये सिरे से ''अगनपाखी'' में प्रस्तुत किया है। ''स्मृति दंश' और 'बेतवा बहती रही' दोनों ही 'कथा' कथा की दृष्टि से बहुत मार्मिक है किसी भावुक पाठक की आंखों को अश्रुपूरित कर देने वाले! दोनों ही उपन्यासों में परम्परागत पुरुष समाज द्वारा स्त्री पर होने वाले अत्याचार का अंकन किया गया है।''

मैत्रेयी जी ने 'इदन्नमम' में विंध्य अंचल में बसे समुदाय की पृष्ठभूमि तैयार की है जिसमें ग्रामीण समाज की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक सभी समस्याएं उद्घाटित हुयी हैं। 'इदन्नमम' दलित समाज के पुनर्निर्माण का स्वप्न है जिसे मैत्रेयी जी ने मंदा के जरिये स्त्री मुक्ति को उद्घाटित किया है। इन्हीं नारी पात्रों को देखते हुए डॉ0 प्रभा खेतान लिखती है-

''मानवीय सम्बन्धों के कुछ ऐसे नैसर्गिक शाश्वत मुद्दे हैं जिन पर अब तक स्त्री खामोश रही है। हाँ डरते-डरते ही सही अब उसने बोलना शुरू किया है।''

'चाक' अर्थात् घूमता हुआ पहिया जिस पर गीली मिट्टी को मनचाहे आकार में ढ़ाला जाता है। यह उपन्यास बुंदेलखण्ड की धरती पर बसेरा करने वाली साहसी स्त्रियों की गाथा है। जो समाज में एक नयी नैतिकता को जन्म देती है। कथा की मुख्य पात्र 'सारंग' और 'श्रीधर' हैं। सारंग ही है जो चाक पर गीली मिट्टी के ढ़ेले की भाँति संवारी जाती है।

'झुलानट' यह एक छोटे से परिवार की कहानी है। एक जुझारू माँ, दो बेटे और एक उतनी ही जुझारू बहू की। बालकिशन, बालकिशन की माँ और शीलो जो बालकिशन के बड़े भाई सुमेर की पत्नी है। शीलो कहानी की एक ऐसी पात्र है जो संघर्षशील स्त्री हैं। शीलो के रूप में एक जाट युवती के परम्परागत मूल्यों को चुनौती देने, स्त्री संहिता को नकारने और विद्रोह करने का चित्रण किया गया है।

'अल्मा कबूतरी' बुंदेलखण्ड की विलुप्त जनजाति 'कबूतरा' को लेकर यह उपन्यास रचा गया है। 'अल्मा कबूतरा' समाज के एक मात्र पढ़े-लिखे व्यक्ति रामसिंह की पुत्री है। रामसिंह ने अल्मा को जन्म से ही कबूतरा बस्ती और उसकी सामाजिक बुराइयों से दूर रखा है। कहानी के अन्त में अल्मा ने अपने पिता के मृत्यु का प्रतिशोध लिया साथ ही पूरे कबूतरा समाज में कबूतरा जाति को निश्चित स्थान दिलाने का सम्पूर्ण प्रयास किया।

''मगर अल्मा अपनी बान नहीं छोड़ेगी। मरे या रहे? अल्मा माने आत्मा, बप्पा ने सोच-समझकर नाम रखा था, कहते थे आत्मा नहीं मरती।''

'अगनपाखी' यह उपन्यास समाज को एक नयी दृष्टि प्रदान करती है। इस उपन्यास में छल, छद्म, बैर-प्रीति, घात-प्रतिघात और लोक मान्यताओं का सहज प्रस्तुतीकरण हुआ है। यह उपन्यास रिश्तों की दहलीज पर की गई साजिशों का एक पुलिन्दा है। जिसकी भुगत भोगी 'भुवन' जो कभी रिश्तों की सामाजिक बुनावट से दरकिनार होती है तो कभी फरेब से।

यह हमारे समाज की वास्तविकता है कि स्त्री न मायके की हकदार रहती है न ससुराल की। वैवाहिक व्यवस्था का ढ़ाँचा स्त्रियों के अस्तित्व को कुचल रहा है। लोभ-प्रलोभन में फांसकर हर जगह उसके साथ छल हो रहा है। तभी तो भुवन कहती है-

''हाँ जाड़े में भी ठण्डे जल से नहाना बताया है, फिर भी भीतर का गुस्सा नहीं सिराता।''

विडम्बनाओं से घिरी हुई 'भुवन' राह तलाशती है।

औरत की विषमता को मैत्रेयी जी ने भुवन में कूट-कूटकर भरा है। स्त्री अपनी अस्मिता की तलाश में किस हद से नहीं गुजरती। पारम्परिक रीति-रिवाज एवं आदर्शा पर मैत्रेयी जी ने प्रश्नचिह्न लगा दिया है।

'विजन' महानगरीय जीवन में व्याप्त मध्यवर्गीय परिवारों में बसने वाली सोच और दिखावेपन को इस उपन्यास में रेखांकित किया गया है। डाक्टरी जीवन में हो रहे भेद-भाव, स्त्री की उपेक्षा एवं नैतिक मूल्यों के स्थान पर पारम्परिक रूढ़ियों को अधिक वर्चस्व सामाजिक न्याय में बांधा डाल रहे हैं। स्त्री भले ही आर्थिक रूप से समर्थ हो जाए लेकिन चलना उसे सामाजिक परम्पराओं पर ही है। इसी द्वंद्व को झेलत हुई डाक्टर नेहा को विषय का केन्द्र बनाया गया है। मैत्रेयी जी ने नेहा और आभा के जरिये स्त्री के मनोभावों को व्यक्त करने का सफल प्रयास किया है। स्त्री पुरुष के समान अधिकारों की बात की है। सदियों से चली आ रही रूढ़ि परम्परा को तोड़ना चाहती हैं। साथ ही चिकित्सा के क्षेत्र में हो रहे अनाचार को भी चित्रित किया गया है।

''पति की अनुगामनी बनना ही तो जीवन का ध्येय नहीं। सहगामिनी होती तो बात कुछ और होती। जिन्दगी को मिशन माना था आभा ने। मिशन, जो किसी काज के लिए होता है, महज व्यक्ति के लिए नहीं।''

'कही ईसुरी फाग' में मैत्रेयी पुष्पा ने ईसुरी और रजऊ की प्रेमकथा के साथ-साथ, ऋतु और माधव, तुलसीराम और माधुरी और सालिगराम कहारे और सावित्री की प्रेमकथा को वर्णित किया गया है। इस उपन्यास में रज्जो एक असाधारण मानसिकता की उपज है जिसमें स्त्री चेतना अपने उच्च भावभूमि के साथ उभरकर आयी है।

'त्रियाहट' त्रिया हट अर्थात् एक स्त्री की हठ। मैत्रेयी जी ने इस उपन्यास के माध्यम से स्त्री के जीवन से जुड़ी, स्त्री शिक्षा, पंचायत चुनाव में महिला आरक्षण, विधवा विवाह, व्यवसाय एवं स्त्री अस्मिता जैसी समस्याओं पर प्रकाश डाला है, जिसकी मुख्य पात्र है उर्वशी।

'गुनाह-बेगुनाह' उपन्यास महिला कान्स्टेबल 'इला चैधरी' के नौकरी के दौरान आयी उन महिलाओं के दास्तान जिन्हें बेगुनाह साबित करने के लिए इला चैधरी मानसिक एवं सामाजिक द्वंद्व झेलती हैं। उनकी आत्मियता भरी दृष्टि महिला गुनहगारों से एकाकार हो उठती है। इस उपन्यास में दिखाया गया है कि कानून के पद पर बैठे अधिकारी, पुलिसकर्मी, सहकर्मी सभी अपने हित कामनाओं की पूर्ति हेतु मानवीय संवेदनाओं से रिक्त हो चुके हैं। दहेज विरोधी कानून, घरेलू हिंसा, सामूहिक बलात्कारों की असलियत और औरतों द्वारा अंजाम दिये गये हत्या कांडों के कच्चे चिट्ठे खोले गये हैं।

'फरिश्ते निकले' टूटे हुये घरौदों को जोड़ने के खातिर स्त्री किस-किस राह से गुजरती है, संभलती है और नया आशियाना बनाती है। ऐसी ही चरित्र को लेकर 'बेला बहू' को 'फरिश्ते निकले' उपन्यास में चित्रित किया गया है। मैत्रेयी जी ने इस उपन्यास में तत्कालीन ग्रामीण समाज एवं राजनीतिक दलों में फैले अनाचार, अत्याचार को प्रकट किया है। फूलन कहती है-

''बेला अपने समाज को बागी औरतें ही बदल सकती हैं, भली औरतों को तो मर्द गन्ने की तरह पेरते रहते हैं और मूछों पर ताव देते हैं। भली औरते, बेचारी, अपने 'भोलेपन' को ढ़ोती हुई तड़पती रहती हैं।''

मैत्रेयी जी ने इस उपन्यास के माध्यम से स्त्री पर हो रहे अत्याचार एवं बलात्कार का कच्चा चिट्ढ़ा पेश किया है। महिलाओं के बागी रूप का कारण पुरुषवादी सत्ता हावी होना है। बेला बहू ने बीहड़ो में एक नये समाज का निर्माण किया है। जहां पुरुषों का वर्चस्व न हो शान्ति और प्रेम हो।

'नमस्ते समथर' में साहित्य संस्थाओं में चलनेवाली दांव-पेंच एवं

राजनीतिक भ्रष्टाचार का यथार्थ प्रस्तुत किया गया है। यह संस्मरण उपन्यास के रूप में मैत्रेयी जी के अपने जीवन दिल्ली के 'हिन्दी एकादमी' में कार्यरत अनुभव है। जहाँ सम्मान प्राप्त करने की होड़ लगी है। कथा की मुख्य पात्र कुन्तल है जो 'भारतीय साहित्य संस्था' की उपसंयोजिका है।

''मेरे मन में बार-बार ये विचार उठता है कि तुम्हारे साथ मुझे समथर जाना चाहिए। यह आकांक्षा जल्दी ही पूरी होगी मगर किस दिन पूरी होगी यह निश्चित नहीं है। 'समथर' यह शब्द या कस्बा भर नहीं, बहुत कुछ है समझो तो।''

भारतीय संस्कृति में महिलाओं को समाज में ऊँचा दर्जा दिया है परन्तु अनेक कारणों से भारतीय स्त्रियों की स्थिति निरन्तर कमजोर होती गई और उन्हें पुरुषों द्वारा असीमित मर्यादा और अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश कर दिया गया है। स्त्री परम्परा मूल्यों को नकारते हुए अपने व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा चाहती है। इतिहास, सभ्यता और धर्मशास्त्रों ने स्त्री को बधिया बना दिया है। उसकी सारी सृजनशीलता दमन कर दिया है।

स्त्री चेतना से तात्पर्य स्त्री की अस्मिता या विभिन्न स्तरों पर प्राप्त अनुभवों के स्वरूप से है जिसमें नारी आधुनिक समाज में अपना अधिकार प्राप्त कर सके। नारी चेतना वह विचारधारा है जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता की मांग करता है। मैत्रेयी जी ने अपने उपन्यासों में नारी चेतना को प्रमुखता से मुखर किया है। उनके उपन्यासों के अधिकतर स्त्री पात्र, ग्रामीण एवं अनपढ़ हैं लेकिन अपने अधिकारों के प्रति सजग हैं।

''स्त्री समानता का संघर्ष सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक इन तीनों ही स्तरों पर एक ही साथ चलना चाहिए।''

****

संदर्भ सूची

(1) 'वागर्थ'- सितम्बर 2017, पृष्ठ-39
(2) 'कस्तूरी कुडल बसै'- मैत्रेयी पुष्पा, पृष्ठ-29
(3) 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास'-डा0 गोपाल राय, पृष्ठ- 387
(4) आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूपों का चित्रण-मो0 अजहर ढेरी वाला, पृष्ठ-99
(5) अल्मा कबूतरी-मैत्रेयी पुष्पा, पृष्ठ-347
(6) अगन पाखी-मैत्रेयी पुष्पा, पृष्ठ-96
(7) विजन-मैत्रेयी पुष्पा, पृष्ठ-120
(8) फरिश्ते निकले-मैत्रेयी पुष्पा, पृष्ठ-87
(9) नमस्ते समथर-मैत्रेयी पुष्पा, पृष्ठ-12
(10) स्त्री वादी साहित्य विमर्श-जगदीश्वर चतुर्वेदी, पृष्ठ-204

प्रो. वशिष्ठ द्विवेदी : एक रचनात्मक व्यक्तित्व

- सीमांकन यादव
शोध-छात्र हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय 6387482349

प्रो. वशिष्ठ अनूप जहाँ कवि हृदय की उच्चता को प्राप्त करते हैं वहीं दूसरी ओर अपने पाठक वर्ग ; उसमें भी विशेषत: छात्रों के बीच तमाम साहित्यिक-वैचारिक गुत्थियों को बहुत ही सरल एवं सहज ढंग से उपस्थित करने का सार्थक प्रयास करते हैं| आप अपने गीत-ग़ज़लों के माध्यम से तो सभी का मन मोह ही लेते हैं साथ ही पाठक को घर-गाँव परिवार, मेले, रिश्तों आदि की आत्मीयता में तत्काल पहुंचा देते हैं या यूँ कहें कि मन और मस्तिष्क में पुनरावृत्ति करा देते हैं| ठीक वैसे ही अपने छात्रों के लिए इतिहास,भाषा, साहित्य,विमर्शादि पर अत्यंत उपयोगी तर्कों एवं तथ्यों के साथ सहजाभिव्यक्ति देते नज़र आते हैं; 'हिन्दी साहित्य का अभिनव इतिहास' (2012) इसी तरह का एक पुस्तकाकार प्रयास था जो विद्यार्थियों द्वारा ख़ूब पढ़ा गया| इस इतिहास-ग्रंथ की ख़ासियत यह है कि इसमें जनवादी कविता,गीत,हिन्दी ग़ज़ल आदि के स्वरूप एवं विकास पर बख़ूबी चर्चा की गयी है साथ ही स्त्री,दलित,जनजातीय विमर्श और इनके साहित्य पर भी एक बहस छेड़ी गयी है| यानि आदिकाल से लेकर आधुनिक काल से होते हुए उत्तर-आधुनिकता एवं भूमण्डलीकरण के साहित्य पर भी चर्चा को स्थान देता हुआ दिखता है यह 'हिन्दी साहित्य का अभिनव इतिहास'| ठीक इसी तरह 'समकालीन कविता के प्रतिमान', 'आधुनिक हिन्दी कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि और सृजन','कविता के जनवादी स्वर','जगदीश गुप्त का काव्य संसार','समकालीन हिन्दी ग़ज़ल','हिन्दी ग़ज़ल का स्वरूप और महत्वपूर्ण हस्ताक्षर','हिन्दी गीत का विकास और प्रमुख गीतकार','गीत का आकाश','हिन्दी भाषा,साहित्य एवं पत्रकारिता का इतिहास','व्यावहारिक एवं प्रयोजनमूलक हिन्दी तथा साहित्यशास्त्र' आदि प्रो० वशिष्ठ अनूप द्वारा रचित महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं जिनके द्वारा हिन्दी साहित्य को समग्रता में जाना एवं समझा जा सकता है| 'हिन्दी-भाषा और साहित्य का इतिहास' पुस्तक विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम को ध्यान में रखकर तैयार की गयी थी जिसका प्रकाशन सन् 2006 ई० में हुआ| यह पुस्तक किसी भी पाठ्यक्रम के विद्यार्थी को हिन्दी भाषा और साहित्य में समझ विकसित करने हेतु ज्ञानप्रद है| इस पुस्तक में हिन्दी ग़ज़ल के संदर्भ में प्रो० वशिष्ठ अनूप कहते हैं- "ग़ज़ल हिन्दी की एक अपेक्षाकृत नयी विधा है किन्तु देखते ही देखते यह हिन्दी काव्य की एक अत्यंत सशक्त एवं महत्वपूर्ण विधा का स्वरूप ग्रहण करने की स्थिति में पहुँच गयी है| विगत तीन दशकों में ग़ज़ल को जो लोकप्रियता प्राप्त हुई है,वह हिन्दी साहित्य के लिए एक सुखद एवं महत्वपूर्ण उपलब्धि है| ठीक से देखा और समझा जाए तो इस बीच ग़ज़ल लिखने वालों की संख्या बहुत बढ़ी है किन्तु हिन्दी ग़ज़ल के आलोचकों की संख्या कम है जो वर्तमान समय में लिखी-रची जा रही ग़ज़ल में समाहित गुण-दोषों,संभावित सुधारों को कहने का बीड़ा उठायें| ऐसे में प्रो० अनूप स्वयं तो एक सशक्त ग़ज़लकार हैं ही साथ ही एक सशक्त आलोचक भी हैं,जो कहते हैं-'हिन्दी ग़ज़ल को अपने आलोचक स्वयं पैदा करने होंगे|' प्रो० अनूप का एक बहुचर्चित शेर देखें- तुलसी के,जायसी के,रसखान के वारिस हैं, कविता में हम कबीर के ऐलान के वारिस हैं| एक अच्छी रचना समाज की जीवंत तस्वीर तो प्रस्तुत करती है,उसकी आलोचना भी करती है और उसे बदलने के लिए भी प्रेरित करती है| यह ज़रूरी नहीं कि परिवर्तन की यह प्रेरणा बहुत मुखर हो| रचना में विचार कभी-कभी प्रच्छन्न भी होते हैं जैसे शरीर में रक्त| साहित्य के संदर्भ में प्रो० अनूप कहते हैं- "साहित्य में मानव-मन की सहजवृत्तियों और संवेदनाओं की

अभिव्यक्ति होती है साथ ही उसमें समाज की धड़कने सुनायी पड़ती है| उसमें एक तरफ़ सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति होती है तो दूसरी तरफ़ जनाकांक्षाओं और सपनों को भी वाणी मिलती है| इसीलिए साहित्य समाज का दर्पण होने के साथ-साथ समाज का दीपक भी होता है|" ध्यातव्य है कि साहित्य में एक व्यवस्था और अनुशासन स्थापित करने के लिए तथा एकरूपता लाने के लिए व्याकरण और काव्यशास्त्र का निर्माण किया गया| आचार्यों एवं विद्वानों ने कुछ ऐसे नियम बनाये जिनसे काव्यादि में एकरूपता तो आये ही,नयी रचनाशीलता को दिशा-निर्देश भी मिले,उनका पथ-प्रदर्शन भी हो| साथ ही साहित्य के कुछ मानदण्ड भी निर्धारित किए गये जिन पर रचे जा रहे साहित्य को जांचा-परखा जा सके| काव्य का स्वरूप,हेतु,प्रयोजन तथा रस,छंद,अलंकार आदि इसी साहित्यानुशासन के अंग हैं जिन्हें काव्यांग कहा जाता है| इन तमाम विषयों पर प्रो० अनूप की मानीख़ेज़ टिप्पणियां स्मरणीय हैं| किसी भी साहित्य को समृद्ध बनाने के लिए उसकी भाषा का समृद्ध-सरस होना अत्यावश्यक है| भाषा मनुष्य की एक अमूल्य उपलब्धि है| इस संबंध में प्रो०अनूप कहते हैं-"मानव-समाज अपने विचारों का आदान-प्रदान और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से ही करता है| गतिशील मानव-समाज और सभ्यता के साथ भाषा का भी विकास और परिमार्जन होता रहता है| इसी प्रकार साहित्य-सृजन भी निरंतर चलती रहती है| विभिन्न कालों में सृजित साहित्य की क्रमबद्ध और व्यवस्थित प्रस्तुति को साहित्य का इतिहास कहते हैं|" प्रो० वशिष्ठ अनूप कहते हैं कि अध्ययन का कोई विकल्प नहीं होता है| आपके चिन्तन एवं सर्जना के केंद्र में सदैव विद्यार्थी-पाठक रहते हैं इसलिए कृतित्व में कहीं न कहीं एक कोमल हृदयी व्यक्तित्व झांकता रहता है जो जटिल से जटिल विषय को बड़ी सहजता से ग्राह्य बना देता है| प्रो० वशिष्ठ अनूप जब अपनी इतिहास-पुस्तकों में काल-विभाजन करते हुए अपनी टिप्पणी देते हैं तो जो एक महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज करते हैं वह है- आम आदमी की दशा| यह चाहे भक्तिकाल हो या रीतिकाल या आधुनिक काल| इस संदर्भ में वे कहते हैं- 'इन कवियों के काव्यों में सामान्य श्रमिक वर्ग के जीवन की विपन्नताओं और उन पर होने वाले अत्याचारों का बहुत प्रामाणिक चित्रण हुआ है| उस समय के ग़रीबों के प्रति किसी के मन में सम्मान और सहानुभूति नहीं थी- निर्धन आदर कोई न देई लाख जतन करै औहु चित न धरेई|' किसी भी काल के साहित्य की भाषिक विशेषताओं की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करना प्रो० अनूप के चिंतन की बहुत बड़ी ख़ूबी है| किसी भी शब्द की उपयुक्तता यानि उसकी अर्थ-परंपरा और ध्वन्यात्मकता की चर्चा पाठक को और भी समृद्ध बनाती है| इस विषय पर अनूप जी के दो शे'र देखें- खेलते मिट्टी में बच्चों की हँसी अच्छी लगी, गाँव की बोली,हवा की ताज़गी अच्छी लगी| सभ्यता के इस पतन में नग्नता की होड़ में, एक दुल्हन सी तेरी पोशीदगी अच्छी लगी|| प्रो० वशिष्ठ अनूप हिन्दी साहित्य में एक ऐसी जानी-मानी शख़्सियत हैं जो न केवल हिन्दी ग़ज़लकार, गीतकार और आलोचक हैं बल्कि बहुत सुलझे हुए ज़िंदादिल इंसान भी हैं जो उनके कृतित्व में बार-बार दृष्टिगोचर होता है| आज के समय में नियमित रूप से हिन्दी ग़ज़ल के नये प्रतिमानों की शिनाख़्त तथा उनके तईं तमाम नये-पुराने रचनाकारों की सर्जना में उपस्थित गुण-दोषों और संभावित सुधारों का कार्य पूरी ज़िम्मेदारी के साथ करते-निभाते हुए नज़र आते हैं| वास्तव में प्रो० वशिष्ठ अनूप एक सच्चे साहित्य-अध्येता के साथ-साथ साहित्य-साधक भी हैं|

****

संदर्भ:- :
1).अनूप, वशिष्ठ, हिन्दी साहित्य का अभिनव इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2006 ई.
2).अनूप, वशिष्ठ, गीत का आकाश, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ, 2010 ई.
3).अनूप, वशिष्ठ, हिन्दी ग़ज़ल की प्रवृत्तिया, उद्भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2006 ई.
4).अनूप, डा॰. वशिष्ठ, हिन्दी ग़ज़ल का स्वरूप और महत्वपूर्ण हस्ताक्षर, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2006 ई.
5). अनूप, वशिष्ठ, गर्म रोटी के ऊपर नमक-तेल था, अनन्य प्रकाशन, वाराणसी, 2021 ई.

समाज की रूढी-परम्पराओं, झठी शान, आडंबरों से परदा उठाती कहानी- 'परदा'

डॉ. प्रमोद पडवळ
सहयोगी प्राध्यापक,
हिंदी विभाग,चांदमल ताराचंद बोरा महाविद्यालय,
शिरूर, जिला-पुणे (महाराष्ट्र) मो. 9767916364

प्रस्तावना- यशपाल हिंदी साहित्य के प्रेमचंदोत्तर युगीन प्रमुख कथाकार है। प्रेमचंद के बाद कथा साहित्य में नए युग का आरंभ करने का श्रेय यशपाल को ही जाता है। क्रांतिकारी विचारों के धनी यशपाल समाज में सामाजिक एवं आर्थिक समानता लाने के पक्षधर थे। साहित्यिक क्षेत्र में कदम रखने से पूर्व यशपाल क्रांतिकारी आंदोलन से जुड़े रहे, जिसका उद्देश्य साम्राज्यवादी, पूंजीवादी व्यवस्था का उन्मूलन और समाजवादी व्यवस्था की प्रतिष्ठापना था। यही वजह है कि यशपाल के समग्र साहित्य में प्रगतिवादी दृष्टि ओतप्रोत दिखाई देती है। दिव्या, देशद्रोही, झूठा सच, दादा कामरेड, अमिता, मनुष्य के रूप, तेरी मेरी उसकी बात जैसे उपन्यास; पिंजरे की उड़ान, तर्क का तूफान, फूलों का कुर्ता, धर्म युद्ध, ज्ञान दान आदि जैसे कहानी संग्रहों से इस बात की प्रतीति आती है।

यशपाल की कहानियों में समाज की विभिन्न समस्याओं का बखूबी चित्रण दिखाई देता है। 'परदा' यह यशपाल की एक लोकप्रिय कहानी है जो हिंदी जगत में काफी चर्चा का विषय रही। यह एक प्रतीकात्मक कहानी है, जिसमें उन्होंने हमारे समाज की पोल खोलकर समाज का वास्तविक चेहरा सामने लाने का प्रयास किया है। हमारे समाज में कुछ ऐसे लोग होते हैं, जो गरीब, असहाय, बेबस होते हुए भी ऊपरी तौर पर झूठी शान का नकाब ओढ़ते हैं। अपनी झूठी प्रतिष्ठा को बचाने का प्रयास करते रहते हैं। वास्तविक जीवन की सच्चाई को वे स्वीकार नहीं कर पाते और अपनी झूठी शान बरकरार रखने की जी-तोड़ कोशिश करते हैं। 'परदा' कहानी मनुष्य की इसी प्रवृत्ति की पोल खोलने का प्रयास करती है।

बीज शब्द- प्रगतिशील, नकाब, बेबस, झूठी शान, बाह्याडंबर, सफेदपोश, पाखंड, यथार्थ चित्रण, कालजयी, विरासत, इज्जत, झूठी परंपरा, दाम्भिकता, प्रतीकात्मकता, परदा, बेनकाब आदि।

मुख्य अंश- "यशपाल एक ऐसे रचनाकार है जिन्होंने एक नए शोषण विहीन समाज की रचना के लिए आजीवन रचनात्मक संघर्ष किया। उन्होंने जिस जीवन को जिया, उसके विविध पहलुओं का गहराई से अध्ययन-मनन तो किया ही, उसका रचनात्मक विश्लेषण भी किया। और ऐसा करते हुए उन्होंने साहित्य और कला के सवालों पर भी अंगुली रखी। स्वभावतः अपनी ऐसी रचनाओं में वे कला के प्रतिगामी मूल्यों का तीखा विरोध करते हैं। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में मनुष्य और साहित्य के सर्वोपरि मूल्यों का ताप मौजूद है।"[1] अपने साहित्य लेखन के इसी दृष्टिकोण के कारण यशपाल का साहित्य जनवादी दृष्टि से लबालब दिखाई देता है।

यशपाल ने अपनी कहानियों के माध्यम से समाज की विभिन्न समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है। उनकी कहानियों में एक ओर आदर्श के पुट से भारतीय जीवन दर्शन का आग्रह है तो दूसरी ओर वास्तविक जीवन संघर्ष से आधुनिकता की चाहत भी नजर आती है। वे सही मायने में समाजवादी विचारधारा के कहानीकार थे। डॉ. सुरेश सिन्हा के अनुसार- "वे यही मानते थे कि जीवन की पूर्णता का यत्न ही कला का उद्देश्य है। वे कला को कला के लिए नहीं मानते।

'वे साहित्य की सामाजिक उपयोगिता के प्रति विशेष रूप से आग्रहशील है और यही उनकी कहानियों की मूल भावधारा है।"[2] इसीलिए यशपाल को प्रगतिशील और यथार्थवादी कथाकार माना जाता है। काला आदमी, आदमी का बच्चा, साग, परलोक, कर्मफल, पराया सुख, परदा जैसी उनकी कहानियां इस बात का प्रमाण हैं।परदा' यह यशपाल द्वारा लिखी कहानी हिंदी की कालजयी कहानियों में से एक है। यह एक प्रतीकात्मक कहानी है, जिसमें उन्होंने हमारे समाज के भीतर के खोखलेपन के आवरण की पोल खोल दी है। हमारे समाज के मध्यवर्ग में कुछ ऐसे लोग होते हैं, जो गरीब, शोषित, लाचार होते हुए भी ऊपरी तौर पर झूठी शान का दिखावा करते हैं। अपनी झूठी इज्जत को ढकने का वे भरकस प्रयास करते रहते हैं। वास्तविक जीवन की सच्चाई को वे स्वीकार नहीं कर पाते और अपनी झूठी शान बरकरार रखने की जी-तोड़ कोशिश करते हैं। "मध्यमवर्गीय जीवन में सबसे बड़ी समस्या आर्थिक समस्या है। व्यक्ति झूठी शान और बाह्याडंबर से समाज में अपना सिर ऊंचा रखने की कोशिश करता है और अपनी वास्तविक परिस्थिति पर परदा एक आवरण के रूप में रखता है। परदे के पीछे उनका दुख एवं दरिद्रता छिपी रहती है।"[3] लेकिन जब यह परदा हट जाता है तो वास्तविक स्थिति लोगों के सामने आ जाती है। इसलिए पाखंड एवं झूठी शान की अपेक्षा वास्तविक जीवन जीने की प्रेरणा यह कहानी देती है।

'परदा' कहानी चौधरी पीरबक्श के परिवार की है, जिनके दादा अपने समय में चुंगी के महकमे में दारोगा थे। उनका अपना पक्का मकान भी था, जिसे वे हवेली कहते थे। पर समय के साथ हालात बदलते गए। तीसरी पीढ़ी तक आते-आते चौधरी साहब के कुनबे में भी बढ़ोतरी हो गई। चौधरी साहब की दो संताने थी। उन दो संतानों को अल्लाह ने तेरह संताने बक्शी। तीसरी पीढ़ी के शादी ब्याह होने लगे। लिहाजा हवेली में जगह की कमी के कारण चौधरी पीरबक्श एक गरीब बस्ती में किराए के मकान में रहने लगते हैं। प्राइमरी तक पढ़े पीरबख्श एक तेल की मील में मुंशीगिरी करने लगते हैं क्योंकि "तालीम ज्यादा नहीं तो क्या सफेदपोश खानदान की इज्जत का पास तो था। मजदूरी और दस्तकारी उनके करने की चीजें न थी।"[4]

उस पूरी बस्ती में चौधरी पीरबक्श ही पढ़े लिखे और सफेदपोश व्यक्ति थे और सिर्फ उनके घर के दरवाजे पर ही परदा था। बस्ती में उनकी इज्जत थी और उस इज्जत का आधार था घर की ड्योढ़ी पर लटका परदा। चौधरी के परिवार में जैसे-जैसे बढ़ोतरी होती गई, घर के हालात और भी खस्ता होते गए। घर की औरतों के कपड़े जीर्ण होकर फट गए थे, पर नए कपड़े लेने की औकात उनमें नहीं थी। उनकी अठारह रुपए तनख्वाह में दिन में एक बार किसी तरह पेट भर सकने के आटे के अलावा कपड़े की गुंजाइश कहां थी? पर परदे के कारण चौधरी के घर के ये हालात सबसे छिपे थे। मानो चौधरी की इज्जत पर्दे के कारण सलामत थी। जब पर्दा जीर्ण होकर फट जाता है तो घर की एकमात्र पुश्तैनी चीज 'दरी' पर्दे के रूप में दरवाजे पर लटकाई जाती है, क्योंकि नया पर्दा खरीदने की हैसियत चौधरी की नहीं थी।

घर में जब खाने के लाले पढ़ते हैं, फाके की नौबत आ जाती है, तब चौधरी पीरबक्श पंजाबी खान बबरअली से चार रूपए उधार लेते हैं। आठ महीने में कर्ज अदा करना तय होता है, पर सात महीने वे केवल किश्त ही दे पाते हैं। आठवें महीने में ऋण की किस्त वे दे नहीं पाते। जब खान पैसे लेने के लिए आता है तब अल्लाह की कसम देकर एक महीने तक बात को टालते हैं। एक महीने बाद भी किश्त का जुगाड़ नहीं होता तब चौधरी खान को टालने का प्रयास करते हैं। चार-पांच दिन वे इसमें सफल भी हो जाते हैं, पर पांचवे दिन खान गालियाँ देता हुआ चौधरी के घर पहुँच जाता है। आसपास के लोग इकट्ठा हो जाते हैं, इससे खान को और जोश आता है और वह चौधरी को फटकारता है कि- "पैसा नहीं देना था तो लिया क्यों? तनखाह किदर में जाता? अरामी अमारा पैसा मारेगा? हम तुम्हारा खाल खींच लेगा।... पैसा नहीं है तो घर पर पर्दा लटका के शरीफजादा कैसे बनता?"[5] खान पैसे के बदले में गहने, जेवर, बर्तन कुछ भी देने की मांग करता है, पर चौधरी के पास देने लायक कुछ भी नहीं था। जब चौधरी अपनी असमर्थता बताते हैं तब खान गुस्से से दरवाजे पर लटका पर्दा खींच लेता है। परदे के खींचते ही चौधरी की पोल खुल जाती है। घर के स्त्रियों की दयनीय स्थिति देखकर भीड़ घृणा और शर्म से आंखें फेर लेती है। खान की कठोरता भी पिघल जाती है। परदा गिरने से बेसुध हुए पीरबक्श को जब होश आता है तब उन्हें पर्दा आंगन में पड़ा दिखाई देता है, पर उसे फिर से दरवाजे पर लटका देने का सामर्थ्य उनके पास नहीं था। शायद उसकी आवश्यकता ही अब नहीं रही थी। चौधरी पीरबख्श की वास्तविकता से ही एक तरीके से पर्दा उठ गया था और उनकी असलियत सबको पता चली थी।

'परदा' कहानी सच में हमारे समाज के भीतर के खोखलेपन को बेनकाब कर उसकी असली तस्वीर हमारे सामने प्रस्तुत करती है। "यशपाल जी ने समाज में सफेदपोश लोगों के बाहरी शान के नीचे छिपी हुई उनकी दीनता तथा असलियत का चित्र अंकित किया है।"[6] हमारे समाज में बहुत सारे लोग ऐसे होते हैं जो गरीब, निर्धन, बेसहारा, लाचार होते भी ऊपरी तौर पर एक झूठी शान का दिखावा करने में धन्यता मानते हैं। हालांकि अपने आप को दूसरों से बेहतर दिखाना मनुष्य का स्वभाव होता है, पर उसकी भी एक हद होती है। लेकिन जब अपनी शान ही व्यक्ति के लिए सबसे बढ़कर हो जाती है तब वह उसे बरकरार रखने के लिए किसी भी हद तक जा सकता है। उसकी भरसक कोशिश रहती है कि उसकी शान (झूठी) को आंच ना आए। चौधरी पीरबख्श ऐसे ही व्यक्ति है। उनके दादा जब दारोगा थे तब उनके परिवार की स्थिति अच्छी थी। मगर पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्थिति खराब होती गई। चौधरी पीरबख्श- जो तीसरी पीढ़ी के हैं उन्हें विरासत के तौर पर परिवार की सफेदपोशी के अलावा कुछ मिलता नहीं है। मगर यही सफेदपोशी उनके लिए किसी जागीर से कम नहीं होती हैं। मजदूरी और दस्तकारी को कम आंकनेवाले पीरबक्श जीवन यापन के लिए मुंशीगिरी पसंद करते हैं और अपनी शान को बरकरार रखने के लिए दरवाजे पर पर्दा लगाते हैं। यही पर्दा उनकी शान की निशानी थी। असलियत में यह परदा वे शान दिखाने के लिए नहीं बल्कि अपने घर की दरिद्रता, गरीबी को औरों से छुपाने हेतु लगाते हैं।

आज हमारे समाज में अनेक ऐसे लोग दिखाई देते हैं, जिनके पूर्वज, बाप-दादा अमीर थे, रईस और नामचीन थे। पर, आज न वे पुराने लोग जीवित हैं न वह पुरानी शानो-शौकत। फिर भी झूठी शान के दिखावे के लिए उनकी जद्दोजहद होती हैं। ऐसे लोगों के लिए घर-परिवार की भलाई की अपेक्षा अपने पद, जाति-बिरादरी की श्रेष्ठता मायने रखती है। आजादी के बाद जब अनेक संस्थान भारत में विलीन हो गए तब इन संस्थानों में काम करनेवाले अनेक लोगों के पास जो पद, प्रतिष्ठा, सम्मान था, सब समाप्त हुआ। मगर उनकी जागिरी, ईनामगिरी, पाटीलकी आदि ही विरासत के तौर पर आगे की पीढ़ियों की विलासिता का कारण बनी। ऐसे लोगों के लिए छोटे-मोटे काम करना अपनी प्रतिष्ठा के खिलाफ लगता था और ऐसी झूठी प्रतिष्ठा को बचाए रखने के प्रयास की पोल यह कहानी खोलती है। यशपाल प्रगतिवादी रचनाकार होने के नाते भारतीय समाज व्यवस्था में हो रहे इन स्थित्यंतरों को नजरअंदाज नहीं कर सके। बहुत बारीकी से उन्होंने देशकाल वातावरण को इस कहानी में अंकित किया है।

अपनी झूठी शान और झूठे बड़प्पन को ही सर्वोच्च माननेवाले तथा उसे बनाए रखने की कोशिश का बड़ा मार्मिक चित्रण यशपाल इसमें करते हैं। मसलन चौधरी पीरबख्श का मजदूरी या दस्तकारी को कम आंककर मुंशीगिरी करना, दरवाजे पर पर्दा लटकाना, अपनी आबरू के ख्याल से घर की औरतें, बच्चियों को घर से बाहर न निकालना आदि। पीरबख्श के मकान के दरवाजे पर लटका पर्दा ही उनकी इज्जत का रखवाला था। घर की गरीबी, दरिद्रता उसी से तो ढंकी थी। मगर जब पर्दा जीर्ण होकर टूट जाता है तब नया पर्दा लेने की चौधरी की हैसियत नहीं थी। ऐसे में पर्दे के जुगाड़ हेतु घर की पुश्तैनी चीज दरी को ही दरवाजे पर लटका दिया जाता है। अपनी वास्तविक स्थिति को स्वीकार करने की हिम्मत चौधरी पीरबक्श में नहीं थी। इस कारण झूठी शान की खातिर वे पिसते चले जाते हैं।

जब आमदनी पर खर्चा भारी पड़ने लगता है तब लाचार होकर मजबूरन पीरबक्श पंजाबी खान बबरअली से कुछ पैसे ऋण पर उधार लेते हैं, पर समय पर लौटा नहीं पाते और ऐसे में एक दिन खान चौधरी के घर आकर उसे गालियाँ देता है, उसकी इज्जत की धज्जियाँ उड़ाता है। पर चौधरी कुछ कर नहीं पाते। जाते-जाते खान चौधरी की शान-उसके पर्दे को खींच लेता है। ड्योढ़ी पर से पर्दा हटने से चौधरी बेसुध हो जाते हैं क्योंकि "वह पर्दा ही तो घर-भर की औरतों के शरीर का वस्त्र था। उनके शरीर पर बचे चीथड़े उनके एक तिहाई अंग ढकने में भी असमर्थ थे…"[7] पीरबख्श की पोल खुल जाती है। अब उसे पर्दे की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि जिस भावना से पर्दा लगाया गया था, उसकी सच्चाई सबके सामने आयी थी।

निष्कर्ष-

निष्कर्षत: झूठी शान को त्यागकर वास्तविक जीवन का स्वीकार करना असल में पर्दा कहानी का प्रमुख उद्देश्य है। जीवन भर हम लोग उस प्रतिष्ठा, शान, रईसी के दिखावे हेतु प्रयत्नरत रहते हैं, जो असल में, वास्तविकता में हमारे जीवन में होती ही नहीं। इसी परंपरा को ढोते हुए हम समस्याओं में उलझकर यथार्थ जीवन जीना ही भूल जाते हैं। अपनी वास्तविकता को स्वीकार करते हुए अगर चौधरी पीरबक्श जीवन जीते तो उन्हें लोगों के सामने ऐसे जलील होने की नौबत नहीं आती। अपनी गरीबी का स्वीकार कर, अमीरी की दाम्भिकता को अगर चौधरी छोड़ देते तो उन्हें न दरवाजे पर पर्दा लगाने की जरूरत थी, न झूठे दिखावे की, न बबरअली से उधार मांगने की। अगर अपनी गरीबी को मानकर वे चलते तो यूँ लज्जित और जलील न होते। मगर चौधरी पीरबक्श अपनी पुश्तैनी सफेदपोशी प्रवृत्ति की दाम्भिकता को छोड़ नहीं पाते और एक दिन सबके सामने जलील होकर अपनी इज्जत, शान खो देते हैं। इसलिए हमें जीवन में झूठी शान, झूठे मोह, झूठी परंपरा-संस्कारों का दिखावा करने में मेहनत और जीवन की इतिश्री करने की बजाय जीवन की वास्तविकता को स्वीकार करके जीवन का आनंद लेना चाहिए। इसी में जीवन की सार्थकता है।

****

संदर्भ-

1. प्रतिनिधि कहानियाँ- यशपाल, पृष्ठ- 6
2. हिंदी कहानी उद्भव और विकास- डॉ. सुरेश सिन्हा, पृष्ठ- 519
3. यशपाल: व्यक्तित्व एवं कृतित्व- डॉ. भूलिका त्रिवेदी पृष्ठ- 187
4. प्रतिनिधि कहानियाँ- यशपाल, पृष्ठ- 25
5. वही, पृष्ठ- 30
6. यशपाल: व्यक्तित्व एवं कृतित्व- डॉ. भूलिका त्रिवेदी पृष्ठ- 188
7. प्रतिनिधि कहानियाँ- यशपाल, पृष्ठ- 31

हिंदी भाषा से जुड़े कुछ रोचक जानकारियाँ

1. हिंदी को इसका नाम फारसी शब्द हिंद से मिला है, जिसका अर्थ है "सिंधु नदी की भूमि"।
2. 14 सितंबर 1949 को भारत सरकार ने हिंदी भाषा को राजभाषा के रूप में स्वीकार किया। इसे मनाने के लिए, हम 14 सितंबर को "हिंदी दिवस" मनाते हैं।
3. भारतीय संविधान का भाग XVII राजभाषा के बारे में बात करता है। अनुच्छेद 343 के तहत, संघ की आधिकारिक भाषा को मंजूरी दी गई है, जिसमें देवनागरी लिपि में हिंदी और अंग्रेजी शामिल है।
4. 1965 में हिंदी केंद्र सरकार की एकमात्र कामकाजी भाषा बन गई।
5. यह फिजी में एक आधिकारिक भाषा है और सूरीनाम, गयाना, मॉरीशस और त्रिनिदाद में हिंदी को एक क्षेत्रीय भाषा के रूप में स्वीकार किया जाता है
6. लल्लू लाल द्वारा 1805 में प्रकाशित प्रेम सागर हिंदी में पहली प्रकाशित पुस्तक है।
7. बिहार उर्दू की जगह हिंदी को अपनी आधिकारिक भाषा के रूप में अपनाने वाला पहला राज्य था।
8. श्रीलंका, संयुक्त अरब अमीरात, सिंगापुर, ऑस्ट्रेलिया, पाकिस्तान, न्यूज़ीलैंड और संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे अन्य देशों में हिंदी का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है।
9. मंदारिन चीनी, स्पेनिश और अंग्रेजी के बाद हिंदी को दुनिया की चौथी सबसे अधिक बोली जाने वाली पहली भाषा माना जाता है।
10. हिंदी भाषा से संबंधित प्रावधानों को केंद्रीय हिंदी निदेशालय, भारत सरकार द्वारा नियंत्रित किया जाता है।
11. लगभग 77% भारतीय हिंदी पढ़, लिख, बोल या समझ सकते हैं।
12. पहला हिंदी टाइपराइटर 1930 के दशक के दौरान लॉन्च किया गया था।
13. हिंदी प्राचीन भारतीय भाषा "संस्कृत" का प्रत्यक्ष वंशज है।
14. हिंदी की वर्णमाला तालिका को 'वर्णमाला' अर्थात 'अक्षरों की माला' कहा जाता है।
15. 1913 में, दादा साहब फाल्के द्वारा पहली हिंदी फिल्म, राजा हरिश्चंद्र रिलीज़ की गई थी।
16. हिंदी का कोई भी अक्षर उल्टे लिखे जाने पर भी भ्रम नहीं देता है या कोई दर्पण प्रतिबिम्ब नहीं दिखाता है।
17. दुनिया भर में कुल 176 विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। जिनमें से अकेले 45 विश्वविद्यालय अमेरिका से हैं।
18. हिंदी भाषा में 'a', 'an' और 'the' जैसे लेखों की कोई आवश्यकता नहीं है।
19. अगर आप हिंदी जानते हैं तो आप नेपाली भाषा को आसानी से पढ़ सकते हैं।
20. 'योग', 'कर्म', 'खाकी', 'पायजामा' और 'मंत्र' जैसे शब्द हिंदी से लिए गए हैं।

****

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 02 अंक– 05 जनवरी - मार्च - 2024 Impact factor– 3

कवि डॉ. बृजेश सिंह की ग़ज़लों में अस्मितामूलक विमर्श

प्रा.रविंद्र पुंजाराम ठाकरे
(शोध छात्र) ई-मेल – ravipthakare@gmail.com
मोबाईल नं.: 9822916518

प्रो.डॉ.अनिता पोपटराव नेरे
शोध निर्देशक एवं विभागाध्यक्ष
म.स.गा.महाविद्यालय,मालेगाँव-कैम्प, तह.मालेगांव, जि.नासिक

प्रास्ताविक :-भारतीय समाज व्यवस्था सदियों से वर्ग और वर्ण विभाजन पर आधारित है । यहाँ अमीरी-गरीबी की खाई अजीब है । भारत अमीर लोगों का गरीब और तिरस्कृत लोगों का सुसंस्कृत देश है । यहाँ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक विषमता शीर्षस्थ है । इसी कारण मुख्य प्रवाह से पीछे छुटा हुआ जो समाज है, वह अपनी अस्मिता और अस्तित्व बरकरार रखने के लिए संघर्षरत दिखाई देता है। तथाकथित व्यवस्था की प्रताड़ना को ललकारते लोग 'अस्मितामूलक' कहलाते हैं । भारत में अस्मितामूलक समाज की तादात सबसे अधिक है । यह समाज गाँव, नगरों के बाहर सड़ी-गली, बदबूदार बस्तियों में अपना जीवन बसर करने को विवश है । इनके घरों में किसी प्रकार की सुख-सुविधाएँ, आरोग्य या शिक्षा का कोई ठोस प्रबंध नहीं है । गंदीनाली, संकीर्ण गलियाँ, अशिक्षा, अंधश्रध्दा, अपमान, घृणा और अमानवीयता इनके जीवन का प्रमुख हिस्सा है । यह समाज तथाकथित व्यवस्था का शिकार है । फिर भी यह वर्ग अपनी अस्मिता को बनाये रखने के लिए संघर्ष करते नजर आते हैं। यही इनकी अस्मिता है। भारत जैसे 'विश्वगुरु' कहे जानेवाले देश में मानव की मानव के प्रति उपेक्षा और घृणा का भाव, भारतीय समाज को उन्नति की नहीं अवनति की ओर ले जानेवाला है । यह चिंताजनक है ।

विषय प्रवेश :

'ग़ज़ल' हिंदी साहित्य की सशक्त विधा है । उसमें भावभिव्यक्ति का ओज विद्यमान है । वह आम आदमी के दुःख दर्द, संघर्ष और जिंजीविशा को बयान करने में समर्थ है । दुष्यंत के बाद अन्य हिंदी ग़ज़लकारों ने प्रतिभा, अनुभूति और अभिव्यक्ति के दम पर ग़ज़ल को विविधता और विराटता से जोड़ा है । इस परंपरा का निर्वाह करने में कवि डॉ.बृजेश सिंह की ग़ज़लें सार्थक सिद्ध हुई है । कवि डॉ.बृजेश सिंह हिंदी ग़ज़ल के प्रमुख हस्ताक्षर है । उनका ग़ज़ल साहित्य भारतीय समाज व्यवस्था के दोगलेपन को बेनकाब करता है । मानव का मानव के प्रति उपेक्षा भाव कवि को निरंतर खलता है । हिंदी के वरिष्ठ आलोचक डॉ. विनय कुमार पाठक लिखते हैं, "वर्तमान हिंदी ग़ज़लकारों में एक प्रमुख नाम डॉ. बृजेश सिंह का है, जिन्होंने अल्प अंतराल में ही ग़ज़ल के क्षेत्र में अपनी बुलंदी का परचम लहरा दिया है । आपकी ग़ज़लें देश व समाज के प्राय: सभी विषयों को छुते हुए न केवल समस्याओं को सामने लाती हैं अपितु समुचित समाधान भी सुझाती हैं ।"(1)

कवि डॉ.बृजेश सिंह का ग़ज़ल साहित्य वर्तमान अस्मितामूलक विमर्श का इस्पाती दस्तावेज है । अपनी ग़ज़लों के माध्यम से कवि ने अस्मितामूलक समाज के दर्द को वाणी प्रदान की है और तथाकथित विषम व्यवस्था पर करारा व्यंग्य भी किया है । अस्मितामूलक समाज को ढ़ोते लोग अपने ही देश में अनजान हो गए हैं । तथाकथित समाज उनके प्रति तिरस्कार, हीनता और ज़हालत भरी दृष्टि से देखता हैं और भाईचारा, एकता तथा समानता की बात करता है, ऐसी दोगली एवं सफेदपोश व्यवस्था की दहशतगर्दी से कवि खीज उठते हैं,

"अपने ही वतन से बेदखल हो चले जाने कब से लोग ।
बेबस सुनते भाई-चारे की बातें वहसी मेहमानों से ।।
न जीते चैन से न जीने देते हमें चैन से 'बृजेश' ।
जाने कब पीछा छुटेगा दहशतगर्द वहशी शैतानों से ।"(2)

भारत में सामाजिक, राजकीय, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, शैक्षिक सभी दृष्टियों से स्तर भेद हैं। अस्मितामूलक समाज का जीवन यातनामय जीने का मुख्य कारण आर्थिक विपन्नता ही है । इसीलिए इन लोगों के हिस्से में अपमान और उपेक्षा आयी है। गरीबी के कारण इस वर्ग को अशिक्षा, अंधश्रध्दा, अन्याय, अपमान का शिकार होना पड़ा है । कवि भारतीय समाज में व्याप्त अमीरी-गरीबी की खाई को चित्रित करते हुए लिखते हैं, -

"गरीबी में अपने करीबी भी अपने कहाँ होते ।
पानी उतारने के लिए सभी तैयार हो गये ।
गरीब होना यकीन मानों सबसे बड़ा अपराध ।
बेगुनाह होते आरोपों के बौछार हो गये ।।
'बृजेश' गरीबों के न्याय की कौन सोचता ।
जब दौलत वाले न्याय के खरीददार हो गये ।।"(3)

अस्मितामूलक समाज के प्रति सरकार का रवैया भी दोयम है । इनके उद्धार के खातीर कई नयी-नयी योजनाओं की घोषणाएँ सरकार करती है । किन्तु सरकार इस वर्ग को मुख्य प्रवाह में लाने की बात नहीं करती । इस वर्ग तक योजनाएँ आते-आते सुख जाती है । प्रत्यक्ष लाभार्थी वंचित रहकर बाबू लोग ही इन योजनाओं से निहाल हो जाते हैं। कवि इस व्यवस्था को बेपर्दा करते हुए लिखते हैं, -

"छोटी-मोटी वसूली खातिर खूंखार हो गये ।
बड़े कर्जदारों के लिए बैंक वाले उदार हो गये ।।
हजारों लाखों के कर्ज पर कहर बरप गये मगर ।
करोड़ो दबाने वाले सम्मानित कर्जदार हो गये ।।"(4)

जल,जंगल और जमीन से जुड़े आदिवासियों की स्थिति भारतीय व्यवस्था में और भी भयावह है । उनकी जमीनों को हड़पकर उन्हें बे-घर किया जा रहा है । उनके पास तन ढ़कने के लिए भी कपड़ा नहीं है । ये लोग तथाकथित व्यवस्था का विरोध करते हैं तो उन्हें देशद्रोही करार दे दिया जाता है । उनकी जमीने हड़प कर उन्हें भूमिहीन किया जा रहा है । कवि डॉ.बृजेश सिंह आदिवासियों की अस्मिता को अभिव्यक्त करते हुए लिखते हैं, -

"वनवासियों को ठगकर बड़े मालदार हो गये ।
नक्सल पनपने के ये ही जिम्मेदार हो गये ।।
सीधे-सादे वनवासी आज भी लंगोटी में ।
नमक बदले चिरौंजी वाले साहूकार हो गये ।।
शोषण से मुक्ति दिलाने का नाम गुलाम बनाना ।
कैसे-कैसे अवाम के खिदमतगार हो गये ।।"(5)

यह विड़बना है कि, अस्मितामूलक वर्ग का शोषण करने वाले ही महिमामंडित हो रहे हैं । वे ही मान-सम्मान के अधिकारी बन बैठे हैं । वे ही धर्म रक्षक और मानवता का परचम लेकर घुम रहे हैं । भाईचारा, एकता और समानता का ठेका लेकर घुमनेवाले ही मानव-मानव में भेद कर रहे हैं । शांति के मसिहा बनकर घुमनेवालों के ही हाथ खून से रंगे हुए हैं । इन तथाकथित समाज के ठेकेदारों के कारण ही अस्मिता मूलक समाज अवर्णनीय यातनाएँ भोग रहा है। कवि का मानना है,कि अगर भरत में एकता बरकरार रखनी है? विश्व के सामने भारत का आदर्श खड़ा करना है? विश्व में भारत को महासत्ता बनाना है,? तो हमें

सबको साथ लेकर चलना होगा। विकास केवल बोलने, दिखावे के लिए नहीं बल्कि अस्मिता मूलक समाज को साथ लेकर करना होगा। क्योंकि अस्मिता मूलक जीवन भारतीय व्यवस्था की देन है।

आधुनिक काल नारी मुक्ति का काल है। नारी एक शक्ति नहीं एक व्यक्तित्व के रूप में उभरकर सामने आयी है। वह अपना अस्तित्व निर्माण कर पुरुष से कंधा मिलाकर चल रही है। अपने आत्मविश्वास और विवेक के बल पर नारी वर्तमान युग में सभी क्षेत्रों में अपना हुनर दिखा रही है। ग़ज़ल के क्षेत्र में डॉ. बृजेश सिंह अपना मानक कीर्तिमान स्थापित कर चुके हैं। उनकी ग़ज़लों में समाज, धर्म,साहित्य, संस्कृति, पर्यावरण,राष्ट्रीय चेतना,राजनीति,अहिंसा, तंत्र-विज्ञान,किसान, दलित जीवन, आदिवासी, वृद्ध, अल्पसंख्यांक, किन्नर,बालको की दयनीय स्थिति एवं नारी की महिमा आदि विविध विषयों को मौलिक रूप में रेखांकित किया गया है। नारी के बिना परिवार की दुरावस्था कवि अपनी ग़ज़लों में चित्रित करते हैं। ग़ज़ल को कवि डॉ. बृजेश सिंह ने नारी के संघर्ष, आत्मसम्मान एवं गौरव का साधन बनाया है। उनकी ग़ज़लें हुस्न और इश्क तथा प्रेमी और प्रेमिका के मधुर वार्तालाप तक सीमित न रहकर नारी की अस्मिता को उजागर करती है-

"हमसफर बिन बहुत कठिन जीवन का सफर होता है।
किसी -किसी की किस्मत जुदाई का जहर होता है।।
देखते -देखते लूट जाती है किसी की दुनिया।
आदमी पे बरपा कभी कुदरत का कहर होता है।।
राह बीच ही अनायास साथ छूट जाता हमसफर का।
'बृजेश' कभी इस कदर खफा मुकद्दर होता है।।"[6]

कवि डॉ.बृजेश सिंह की ग़ज़लों में वृद्ध विमर्श का मार्मिक अंकन हुआ है। कवि माता-पिता और वृद्ध हमारी संस्कृति के कलश हैं। माता- पिता हमारी जड़े हैं। जिस माता-पिता ने जीवन भर कठिन परिश्रम करके हमें संभाला उन्हें ही हम बेसहारा वृद्ध आश्रमों में छोड़ आना अनुचित नहीं है। मुह से अनर्थ बातें निकल आती हैं, वे बच्चों जैसी हरकतें करने लग जाते हैं। परंतु इस व्यवहार में उनका कोई कसूर नहीं होता है। कवि यांत्रिक उन्नति की अंधी दौड़ में मस्त, निष्ठुर और गैरजिम्मेदार युवा पीढ़ी को फटकारते हुए वृद्ध विमर्श पर इस प्रकार विचार व्यक्त करते हैं-

"बुजुर्ग का दिन काटना जैसे भी मन बहलाना है I
अक्सर नाती पोतों से गहरा हो जाता याराना है ।।
बालपन से बुढ़ापे की यात्रा कुछ लम्बी मगर I
बुढ़ापे से सीधे ही बचपने में जाना है II
एक तरफ जीवन का गहन अनुभव बाँटना I
दूसरी तरफ बात बेबात में चिडचिडाना है II"[7]

कवि डॉ.बृजेश सिंह को लोकतंत्र में अटूट विश्वास है। समता,एकता और सबका विकास कवि के ग़ज़लों की विशिष्टता है I भारत में विकलांगों की स्थिति दयनीय है l प्रकृति और विज्ञान के प्रकोप के कारण कई लोगों को विकलांग जीवन व्यतीत करना पड रहा हैl विकलांग अपनी अस्मिता जीवित रखकर जीवन संघर्ष को साकार कर रहे हैं-

तन विकलांग है तो क्या मन को फौलाद बनाने से I
कामयाबी कदम चूमती मायूसी मुख मोड़ लेती है ll
विकलांगता को अभिशाप मान कभी घबराना न साथी l
इरादा बुलंद तो दूर की मंजिल भी नाता जोड़ लेती है ll
तन की कमियों से घबरा मायूस न होना 'बृजेश' l
मायूसी आदमी की हिम्मत सारी निचोड़ लेती हैII"[8]

कवि डॉ. बृजेश सिंह जन चेतना के चितेरे कवि हैं। उनकी गज़लों में किसान जीवन की वास्तविकता को मार्मिक रूप में रेखांकित किया गया है। वर्तमान बाजारवादी व्यवस्था का यथार्थ किसानों की त्रासदी है ,इसका मौलिक चित्रण कवि डॉ.बृजेश सिंह ने अपनी गज़लों में किया है। वर्त्तमान समय में किसान जीवन काफी संघर्षमय और समस्याओं से घिरा है। कवि डॉ. बृजेश सिंह किसानों को आर्थिक दृष्टि से संपन्न करना चाहते हैं l इसके लिए रासायनिक खाद से बचने की सलाह देते हैं l वे किसानों को रासायनिक खाद और कीटनाशकों के दुष्परिणामों से सचेत करा कर जैविक खाद और प्राकृतिक प्रक्रिया का महत्व इस प्रकार बताते हैं-

"बहुत भटके न खुद को और भटकाना है।
खुद को प्राकृतिक खेती की ओर लौटाना है।।
रासायनिक उर्वरकों से हम चिपके हुए हैं।
उर्वरा शक्ति का न और सत्यानाश कराना है।।
रासायनिक खादों का कुप्रभाव हम देख चुके।
दिन-ब-दिन खेत का उपजाऊ पन घटाना है"।।[9]

निष्कर्ष : -

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहाँ जा सकता है कि, कवि डॉ. बृजेश सिंह का ग़ज़ल साहित्य अस्मितामूलक समाज की पीड़ा को अभिव्यक्त करने में समर्थ है। अस्मितामूलक समाज जहाँ अमानवीय यातनाएँ भोगकर जीवन यापन कर रहा है, वहीं वह आत्मसंघर्ष करता भी प्रतीत होता है। कवि ने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से अस्मितामूलक समाज की चेतना को उजागर किया है। साथ ही तथाकथित समाज के ठेकेदारों, नेताओं की दोयम मानसिकता को बेनकाब करके भारतीय समाज में मानवता, एकता, समता और शांति की स्थापना की है। कवि बृजेश सिंह की ग़ज़लें मानवता की पक्षधर हैं तथा इनमें 'वसुदैव कुटुंबकम्' की भावना विद्यमान है।

****

संदर्भ :-

1. डॉ. सिंह बृजेश, 'हालात-ए-वतन' भूमिका से
2. डॉ. सिंह बृजेश, 'हकीकत', पृ.52
3. डॉ. सिंह बृजेश, 'हालात-ए-वतन', पृ.23
4. डॉ. सिंह बृजेश, 'हालात-ए-वतन', पृ.50
5. डॉ. सिंह बृजेश, 'हालात-ए-वतन', पृ.42
6. डॉ.सिंह बृजेश, 'हकीकत' ,पृ. 29
7. संपा.सिंह संदीप, 'विकास संस्कृति' (त्रै.मा.पत्रिका अक्टू-नवं-दिसं,2010) अंक.16,वर्ष-04,पृ .48
8. डॉ. सिंह बृजेश, 'हकीकत', पृ.57
9. संपा.सिंह संदीप,विकास संस्कृति, (त्रै.मा.पत्रिका ,अक्तूबर-नवम्बर-दिसंबर,2011)अंक -20,वर्ष-5, पृ.38

राजस्थानी लोक नृत्यों में ‘ ढोल नृत्य’

डॉ. गोविन्द राम
आर्य समाज स्कूल के पास
सुमेरपुर, जिला-पाली,राजस्थान
मो –9928357047 मेल govindcug@gmail.com

भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर पश्चिम भाग में अवस्थित राजस्थान राज्य भौगोलिक दृष्टि से पूर्व में गंगा-यमुना नदियों के मैदान, दक्षिण में मालवा के पठार तथा उत्तर एवं उत्तर पूर्व में सतलज-व्यास नदियों के मैदानों से घिरा हुआ है। इस राज्य की कहानी गौरवपूर्ण परंपरा की कहानी है। एक ओर पृथ्वीराज चौहान, राणा साँगा, महाराणा प्रताप, वीर दुर्गादास, अमरसिंह राठौड़ आदि द्वारा राज्य का नाम विशेष रूप में गौरवान्वित किये जाने का बोध होता है तो दूसरी ओर राज्य की संस्कृति में समाहित भिन्न-भिन्न रंगों, रूपों एवं कलाओं के दिग्दर्शन होते हैं। राजस्थान की सांस्कृतिक विशेषता को रेखांकित करते हुए डॉ. जयसिंह नीरज लिखते हैं-‘‘देश के परिदृश्य में राजस्थानी का सांस्कृतिक वैभव बेजोड़ है। त्यागमयी ललनाओं, साहसी वीरों और गरिमामयी संस्कृति के इस प्रदेश का भौगोलिक, ऐतिहासिक और प्राकृतिक वैविध्य अनोखा है। यहाँ एक ओर दूर-दूर तक फैली अरावली की श्रृंखलाएं हैं, तो दूसरी ओर विराट मरुस्थल। एक ओर पूर्वांचल और दक्षिणांचल हरीतिमा के वैभव से युक्त हैं, तो दूसरी ओर बियावान मरु के टीलों का अखण्ड साम्राज्य। उत्तर में गंगानगर से लेकर दक्षिण में डूँगरपुर, बाँसवाड़ा तक और पूर्व में अलवर, भरतपुर से लेकर पश्चिम में जैसेलमेर तक फैला यह प्रदेश आकार में ही बड़ा नहीं है, वरन् प्राकृतिक सम्पदा, कलात्कता वैभव, रहन-सहन, वेश-भूषा, बोली-भाषा, धर्म और दर्शन आदि में भी इतना समृद्ध और सम्पन्न है कि इसकी तह तक संस्कृति-कर्मी अभी भी बहुत कम पहुँच पाये हैं।’’[1]

राजस्थानी लोक संस्कृति में समाहित लोक नृत्यों में लोक जीवन की सरसता, सरलता, सहजता के साथ ही साथ लोक गीत, लोक वाद्य, लोक शृंगार एवं कलाओं का समावेश रहता है। लोक जीवन के हृदय में व्याप्त भावों के स्वरूप को प्रकट करते हैं लोक नृत्य। राजस्थान में प्रचलित लोक नृत्य की विशेषता को अंकित करते हुए हरदान हर्ष लिखते हैं-‘‘राजस्थान के लोक-नृत्य राजस्थानी संस्कृति के अनुपम शृंगार हैं। यहाँ की प्रकृति ने राजस्थानी व्यक्ति को एक ओर शारीरिक रूप से कठोर और परिश्रमी बनाया है तो दूसरी ओर मन से उसे कोमल और संवेदनशील। आनन्द के समय में उत्सवादि अवसरों पर वह प्रसन्नता से झूमने लगता है। वह अपनी अंग-भंगिमाओं का अनायास, अनियोजित प्रदर्शन करता है। इस तरह लोग तब सामूहिक रूप से झूमने लगते हैं, वे किसी नियम से बंधे नहीं होते। बढ़ते हुए उत्साह के साथ, किसी लोक-गीत की लय के साथ, किसी लोक-वाद्य की ताल के साथ उनके अंगों की थिरकन प्रकट होती है, जिसे देशी-नृत्य या लोक-नृत्य कहा जाता है।‘‘[2] राजस्थान के लोक-नृत्य में भवाई नृत्य, घूमर-नृत्य, डंड़िया-नृत्य, तेरहताली नृत्य, डांडया नृत्य, कालबेलिया-नृत्य, ढोल नृत्य, थाली-नृत्य, गणगौर नृत्य आदि प्रमुख हैं, जिनमें स्थानीय रंग की छटा भी दृष्टव्य है । राजस्थान राज्य के जिलों में से एक जिला ‘जालोर‘ है। ये जिला राज्य के पश्चिम में मरुस्थल क्षेत्र से संबंधित है। इस जिले का ‘ढोल नृत्य‘ राज्य के लोक नृत्यों में अपनी एक अलग पहचान बनाए हुए है। ‘जालोर का ढोल नृत्य‘ मरुस्थल क्षेत्रों के अलावा अन्य क्षेत्रों में विशेष रूप से विवाह,होली आदि अवसरों पर किया जाता है। जालोर का ‘ढोल नृत्य‘ पुरुष-प्रधान नृत्य है। राज्य में जीवन यापन करने वाली सरगरा, ढोली,

भील आदि जातियों द्वारा यह नृत्य किया जाता है। जालोर और ढोल नृत्य से संबंधित एक किंवदती है जिसे व्यक्त करते हुए डॉ. कालूराम परिहार लिखते हैं-‘‘जब जालोर बसा था उन्हीं दिनों सिवाणा गाँव के खींवसिंह राठौड का सरगरा जाति की युवती से प्रेम हो गया और वह सिवाणा छोड़कर जालोर आ गया। यहाँ आकर खींवसिंह ढोल बजाने लग गया और जालोर का ढोल नृत्य प्रसिद्ध हो गया।‘‘[3]

‘ढोल नृत्य‘ से संबंधित ‘ढोल‘ एक अवनद्ध लोक वाद्य है। अवनद्ध अर्थात चमड़े आदि से ढका हुआ। अवनद्ध से संबंधित लोक वाद्यों में चंग, डफ, ढोलक, ढोल, नगाड़ा, नौबत आदि हैं। ‘ढोल‘ वाद्य को चढ़ाने और उतारने के लिए डोरी में लोहे या पीतल के छल्ले लगे रहते हैं। ढोल का नर भाग डंडे से तथा मादा भाग हाथ से बजाया जाता है। लोक नृत्यों की माधुर्य वृद्धि के साथ ही वातावरण निर्माण एवं भावाभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाने में इन वाद्यों की भूमिका किसी भी स्तर से कम नहीं। राज्य में ‘ढोल‘ वाद्य को बजाने संबंधी विशेषता व मांगलिक कार्यों में इसके महत्त्व को अभिव्यक्त करते हुए हरदान हर्ष लिखते हैं-‘‘यह एक मांगलिक वाद्य है। विवाह के प्रारम्भ में ढ़ोल के ऊपर भी स्वास्तिक का चिन्ह बनाते हैं। इसका पूजन होता है और इसके रोली चढ़ाते हैं....राजस्थान में यह बारह प्रकार से बजाया जाता है-एहड़े का ढ़ोल, गेर का ढ़ोल, नाचने का ढ़ोल, झोटी ताल (देवरे के देवी-देवताओं के सामने बजाई जाती है), बारू ढ़ोल (लूट के समय बजाया जाता है), घोड़ चढ़ी का ढ़ोल (दूल्हा घोड़े पर चढ़कर जाता है

उस समय), बरात चढ़ी का ढ़ोल, आरती का ढ़ोल, वार त्योहार का ढ़ोल, सगरी को न्योतो (जीमणे का निमंत्रण) आदि। इसको बजाने के लिए दो आदमियों की आवश्यकता पड़ती है। राजस्थान के कई लोक-नृत्यों में यह बजाया जाता है, जैसे-जालोर का ढोल नृत्य, भीलों का गेर नृत्य और शेखावाटी का कच्छी घोड़ी नृत्य।''[4] इन नृत्यों में बजने वाले ढोल की ध्वनियां भिन्न प्रकार की होतीं हैं जैसे कि 'ढाक्-ढिना, ढाक्-ढिना, ढाक्-ढिना.......', धिना-धिना, धिक-धिका......', 'धाक धिना, तिरकट-तिना........', आदि।

'ढोलनृत्य' में ढोल का आकार सामान्य ढोल से काफी बड़ा होता है। ढोल नृत्य का मुख्य कलाकार अपने शरीर पर तीन ढोल बाँधकर उन्हें बजाता है। शरीर में बँधे तीन ढोलों में से प्रथम ढोल वह अपने सिर पर रखता है, द्वितीय ढोल सामने की तरफ रखता है और तृतीय ढोल पीछे की तरफ रखता है। इन तीनों ढोलों को इस तरह से शरीर में बाँधा जाता है कि नृत्य नर्तक अपनी कलाएँ या नृत्य को प्रस्तुत करते हुए किसी तरह की परेशानी अनुभव न करे और ढोल भी अपने स्थान से खुले नहीं। मुख्य कलाकार के साथ अन्य सहयोगी कलाकार भी होते हैं जो कि नृत्य के साथ साथ वादन में भी उपयुक्त भूमिका निभाते हैं।

'ढोल नृत्य' में मुख्य कलाकार ढोल को पहले 'थाकना शैली' में बजाना शुरु करता है। थाकना शैली से तात्पर्य है एक तरह से वादन से पहले की भूमिका के लिए बजाये जाने वाली लय व ताल। ज्यों ही थाकना समाप्त हो जाता है तब अन्य नर्तक कोई मुंह में तलवार लेकर, कोई हाथों में डण्डे लेकर, काई भुजाओं में रूमाल लटकाकर लयबद्ध अंग संचालन करके नृत्य करने लगते हैं। नृत्य के दौरान अनेक जोशीली भाव-भंगिमाओं को ढोल नृत्य के कलाकार प्रदर्शित करते हैं। थाकना शैली के अलावा भी अन्य अलग-अलग शैलियों में ढोल का वादन होता है। ढोल वादन के साथ नृत्य दृश्य एक तरफ जोश से भरपूर होता है तो दूसरी तरफ गति से। ढोल नृत्य में नाचते हुए, वादन करते हुए कलाकार जोश में आकर एक दूसरे के ढोल पर भी डंका मारते हैं। ढोल नृत्य से संबंधित नर्तक उछलते-कूदते हुए आपस में तारतम्य बनाए रखते है। इस नृत्य में नर्तक ताल और लय की एक शृंखला बनाते हैं। 'ढोल नृत्य' में एक तरफ राजस्थानी लोक संस्कृति के दिग्दर्शन होते हैं तो दूसरी तरफ लोक कला की मार्मिकता एवं रसात्मकता की अनुभूति होती है।

****

संदर्भ ग्रंथ :-

1.राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा-सं. डॉ. जयसिंह नीरज व डॉ. बी.एल.शर्मा, पृ.-5, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, संस्करण- 2003,
2.राजस्थानी भाषा साहित्य और संस्कृति-हरदान हर्ष, पृ.-208 आशीर्वाद पबिल्केशन, जयपुर, संस्करण 2004
3.राजस्थान के लोकनृत्य और लोकनाट्य-डॉ.कालूराम परिहार, पृ.-26, रायल पबिल्केशन जोधपुर, प्रथम संस्करण-2009
4.राजस्थानी भाषा साहित्य और संस्कृति-हरदान हर्ष, पृ.-218 आशीर्वाद पबिल्केशन, जयपुर, संस्करण 2004

पंत जी के काव्य में सामाजिक चेतना

डॉ. कृष्ण बिहारी रॉय
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी
शा. कन्या महाविद्यालय सीधी, जिला-सीधी (म.प्र.)

सारांश - स्वस्थ्य समाज से ही स्वस्थ्य राष्ट्र का निर्माण सम्भव है। हमारे देष में सामाजिक चेतना लाने के लिए पुरातन से ही प्रयास किये जा रहे थे। हिन्दी साहित्य में सामाजिक चेतना लाने का महान् कार्य भक्तिकालीन साहित्य में विषेश रूप से देखा जा सकता है। जब हमारे देष में जाति-पाँति, ऊँच-नीच, छुआछूत, धर्मांधता, रूढ़िवाद, अन्ध विशवास चरम पर था तब भक्ति कालीन कवियों ने विषेशतः संत कबीरदास जी ने इन सामाजिक बुराइयों को समाप्त कर समरसतावादी समाज स्थापित करने का सन्देष दिया था, किन्तु रूढ़िवादी संस्कृति में जकड़े हुए लोग दुर्भाग्यवश आज भी जाति, वर्ग तथा धर्म की दूषित मानसिकता से मुक्त नहीं हो सके। यही कारण था कि युग-युग से अभि शापित, शोषित जन गण के अन्दर चेतना लाने का महान् कार्य सुमित्रानन्दन पंत जी ने किया। अन्ध रूढ़ियों तथा मृत आदर्शों को काटकर युग मानव के संघर्षों को नव-चेतन में डूबने का सन्देश दिया।

मुख्य शब्द- सामाजिक, चेतना, रूढ़िवाद, जाति-पाँति, विज्ञान, राष्ट्र, साम्प्रदायिक, समरसता, शोषित, शोषक।

छायावाद के आधार स्तंभों में प्रमुख स्थान रखने वाले कवि सुमित्रान्दन नन्दन 'पंत' जी अपने काव्य लेखन के शुरूआत से समष्टि को दृष्टिगत रखते हुए लेखनी चलाई थी। आपकी स्वतंत्रता के पश्चात् की कविताओं में जीवन के यथार्थ का चित्रण स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। जन-मन को जीवन का अमर संगीत सुनाने वाले कवि सुमित्रानन्दन जी की अग्रांकित पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि वह आम जनता के जीवन की वास्तविकता की अभिव्यक्ति दी है। उन्हांने लिखा है कि-

''मै गाता हूँ /मैं प्राणों का
स्वर्णिम पावक बरसाता हूँ / मै जन-मन को
ज्वाला का पथ बतलाता हूँ/ जन धरणी पर
जीवन का स्वर्ण बसाता हूँ।''[1]

कहना न होगा कि कवि पंत जी अपनी कविता में आम-जनता के अन्तरमन को छूने वाली अभिव्यक्ति दी हैं। वह कभी भी किसी भी तरह की चेतना को अस्वीकार नही किया है। उत्तरा की भूमिका में स्वीकारते हुए लिखा है कि- ''मैनें परिस्थितियों की चेतना के सत्य को कभी अस्वीकार नहीं किया है।''[2] उन्होंने कलाकार को 'सेना नायक या सैन्य वाहक' नहीं 'युग सन्देश वाहक' माना है। जीवन के संघर्शो की प्रतिध्वनियाँ हर जगह सुनाई पड़ती है। कवि सुमित्रानन्दन जी ने जीवन-संघर्श से कभी मुख नहीं मोड़ा। उन्होंने जीवन के संघर्श को व्यक्त करते हुए लिखा है कि-

''मै गाता हूँ/ मैं प्राणों का
स्वर्णिम पावक बरसाता हूँ।/ मै जन-मन को
ज्वाला का पथ बतलाता हूँ/ जन धरणी पर
जीवन का स्वर्ण बसाता हूँ।''[1]

कहना न होगा कि कवि पंत जी अपनी कविता में आम-जनता के अन्तरमन को छूने वाली अभिव्यक्ति दी हैं। वह कभी भी किसी भी तरह की चेतना को अस्वीकार नही किया है। उत्तरा की भूमिका में स्वीकारते हुए लिखा है कि- ''मैनें परिस्थितियों की चेतना के सत्य को कभी अस्वीकार नहीं किया है।''[2] उन्होंने कलाकार को 'सेना नायक या सैन्य वाहक' नहीं 'युग सन्देश वाहक' माना है। जीवन के संघर्षो की

प्रतिध्वनियाँ हर जगह सुनाई पड़ती है। कवि सुमित्रानन्दन जी ने जीवन-संघर्श से कभी मुख नहीं मोड़ा। उन्होंने जीवन के संघर्शों को व्यक्त करते हुए लिखा है कि-

‘‘ मै विराट जीवन का प्रतिनिधि हूँ।
मै तन के मर्मर से, युग के जन्म से /चिरपरिचित हूँ।’’

सुमित्रानन्दन पंत जी ने व्यक्ति अथवा समाज में किसी एक को विषेश महत्व नहीं दिया है, अर्थात् यह कहा जा सकता है कि उन्होंने व्यक्ति और समाज दोनों में सामंजस्य स्थापित किये हैं।

पंत जी ने अपनी स्वतंन्त्य परवर्ती कविताओं में युग चेतना को आवाज देने का सफल प्रयास किया है। उन्होंने स्वयं को किसी एक विषेश विचाराधारा अथवा ‘वाद’ की संकीर्ण सीमाओं में नहीं बाँधा है। कहना न होगा कि पंत जी किसी एक विचारधारा में अपने-आप को स्थापित नहीं किया है। मार्क्सवाद की उपयोगिता को उन्होंने एक व्यापक समतल सिद्धांत की भांति अंगीकार किया है। यद्यपि सांस्कृतिक दृश्टि से उसके खूनी क्रांति और वर्ग-युद्ध के पक्ष को उन्होंने मार्क्स के युग की सीमाएँ मानी है। विभिन्न सिद्धान्तों का सम्मान करते हुए उसकी वास्तविकता को अंगीकार करना श्रेयस्कर है। कवि जीवन सन्दर्भों में ही अपनी एक विषेश प्रकार की दृश्टि निर्मित कर रहा था। इस प्रक्रिया में निष्चित रूप से मार्क्सवादी विचारधारा की एक विषेश स्थिति है। यद्यपि वह मार्क्सवाद को अपनी दृश्टि से प्रभावित करना चाहता था। षायद यही कारण था कि वह वादों के संकीर्ण दायरे से आजाद होकर विष्व-वेदना को आवाज देने का सफल प्रयास किया है। उन्होंने समाज में सामंजस्य स्थापित करने का अनोखा प्रयास किया है। अर्थात् यह कहा जा सकता है कि उन्होंने समाज से अलग होने का बोध अपनी कविताओं में नहीं व्यक्त किया है।

कहना न होगा कि वर्तमान परिस्थितियाँ अत्यंत विचारणीय हैं, आज अभाव की षक्तियाँ संसार में कदम-कदम पर काँटें बोती हैं, चारों दिषाओं में ईश्या, द्वेश और घृणा का भाव व्याप्त है। स्पर्धा से दुनिया भर के लोग परितापित हैं, किसी के हृदय में प्रेम नही, हर्श, उल्लास और आँषा नहीं वर्तमान समय ऐसा कि मनुश्य के अन्दर प्रतिहिंसा, भय, संषय आदि व्याप्त है। मनुश्य के अन्दर की इन दुश्प्रवृत्तियों को दृश्टिगत रखते हुए पंत जी ने लिखा है कि-

‘‘ जीर्ण नीति अब रक्त सूचती जन का,
सदाचार षोशक मन के निर्धन का,
स्वार्थी पषु पहने मुख नव मानवपन का।’’

कहना न होगा कि आज का मानव स्वार्थी, लोभी हो गया है। गरीबी, बेरोजगारी से नव युवक त्रस्त और कुण्ठित हो रहा है। स्वार्थी मानव मनुश्य के रूप में पषुवत घूम रहा है। पंत जी अत्यंत मानवीय विचार रखते थे जिसे उनकी रचनाओं विषेशतः ‘युगान्तर’, ‘उत्तरा’, ‘रजतषिखर’, ‘कला और बूढ़ा चाँद’, ‘चिदम्बरा’ आदि में देखा जा सकता है। कहना न होगा कि सुमित्रानन्दन पंत जी साम्प्रदायिकता का घोर विरोध करते थे। उनकी मान्यता थी कि मनुश्य ईष्वर द्वारा बनायी गई जाति है फिर उसे अनेक जातियों में विभाजित करना ईष्वर का अपमान है। उनके विचार में जाति-पाँति की भाँवना मन की रज का जड़त्व है जो व्यक्ति के मरने से ही जाती है। ये जाति-पाँति का भेद ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार से षलभ अपने प्राण दीपक की ज्वाला में पड़कर समाप्त कर देता है। पन्त जी ने लिखा है कि हे मनुश्य यदि जाति, वर्ग, धर्म के लिए लहू बहाना नहीं छोड़ सकते-

‘‘तो अच्छा हो अगर छोड़ दें
हम हिन्दू मुस्लिम और ईसाई कहलाना।
मानव होकर रहें धरा पर/जाति वर्ण धर्मों से ऊपर
व्यापक मनुश्यत्व में बँधकर।’’

कहना न होगा कि पंत जी ने जाति को व्यर्थ माना है। उनकी नजर में समस्त मानव एक हैं। पंत जी जाति, वर्ग और धर्म के साथ रूढ़िवाद का भी विरोध किए हैं। उन्होंने हमेषा ही उन सभी दृश्टिकोणों, नीतियों तथा आदर्षों का घोर विरोध किया है जो पिछले समय की संकीर्ण परिस्थितियों के प्रतीक हैं, जिसमें मानव विभिन्न जातियों, वर्गो तथा सम्प्रदायों में विकीर्ण हो गया है। आज का मानव वैाानिक युग में भी
जिस पर पंत जी ने लिखा है कि-

‘‘ओ विज्ञान,/ देह भले ही वाययान में उड़े,
मन अभी / ठेले, बैलगाड़ी पर ही
धक्के खाता है।/री! रूढ़िप्रिय जड़ से
तेरी पषुओं की सी/ सशंक, त्रस्त चितवन देख
दया आती है।’’

कहना न होगा कि मनुष्य को विज्ञान उन्नत बनाया, किन्तु अत्यंत दुःख की बात है कि वह अब भी रूढ़ियों से जकड़ा हुआ है। यही कारण था कि जीर्ण से संघर्श करने के लिए पंत जी ने आह्वान किया। अन्धविष्वास, रूढियों तथा मृत आदर्शों को काटकर युग मानव के संघर्शों को नई चेतना में डुबाना चाहिए। इस हेतु पुरातन के जड़ पाष को नश्ट करना अनिवार्य है। रूढ़िवाद, बाह्याडम्बर, के स्थान पर अन्तरमन की पवित्रता कवि की दृश्टि से आज की आवष्यकता है। उन्होने लिखा है कि-

‘‘ मन से होते मनुज कलंकित,
रज की देह सदा से दूशित,
प्रेम पतित पावन है,
तुमको रहने दूगाँ मैं न कलंकित।’’

कहना न होगा कि पंत जी एक ओर जहाँ रूढ़िवाद, साम्प्रदायिकता का विरोध कर रहे थे तो वहीं दूसरी ओर षोशित जन के प्रति सहानुभूति व्यक्त किये हैं। उन्होंने नग्न, क्षुधातुर, जीवन्मृत भू के असंख्य षोशित जन के प्रति गहरा दुःख व्यक्त किये हैं। वह लिखते हैं कि-

‘‘दीनों दुःखियों के मनस्ताप से मथित,
मैं प्रलय बाढ़ बन युग के, पुलिन डुबाती।’’

कहना न होगा कि संवेदना सदैव से उन सभी अभिषापित, षोशित जन के साथ रहा है। उन्होंने षोशकों के प्रति आक्रोष व्यक्त किये हैं। षोशित के प्रति सहानुभूति तथा षोशक के प्रति आक्रोष व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है-

‘‘वर्तमान का भीशण उत्पीडन है इनको
निर्ममता से कुचल रहा। यदि एक बार तुम
आँखें खोलकर देख लोगे जो सचमुच
करूणा से विलगित उर हो, मर्यादित हो तुम
सहम उठोगे, हे फूलों के जग के वासी।’’

कहना न होगा कि पंत जी एक ओर जहाँ षोशित, पीड़ित, नग्न, क्षुधातुर जन के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त किये हैं तो वहीं दूसरी ओर साम्प्रदायिकता, पूँजीवाद, रूढ़िवाद का घोर विरोध किया है तथा सम्पूर्ण रूप से सामाजिक चेतना लाने का पूर्ण प्रयास किया है।

निष्कर्ष एवं सुझाव- निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि कवि सुमित्रानन्दन पंत जी एक साहित्यकार होने के साथ-साथ समाज सुधारक भी थे। इसमें कोई अतिषंयोक्ति नहीं कि उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से सामाजिक चेतना लाने का पुनीत कार्य किया है। उनकी मान्यता थी कि जो लोग समाज में साम्प्रदायिकता, रूढ़िवाद, अन्ध-विष्वास, बाह्याडम्बर फैलाते हैं वह मनुश्य के रूप में पषुवत हैं। वह समाज और राश्ट्र के विनाषक हैं। जब तक समाज में सड़ी - गली प्रथाएँ प्रचलन में रहेंगी तब तक हमारे समाज और राश्ट्र का उत्थान नहीं हो सकता है। जाति-पाँति, वर्ग और धर्म के नाम पर समाज को बाँटना देष व समाज के विकास में बाधक है। उन्होंने राश्ट्रीय ही नहीं वरन् अन्तरराश्ट्रीय स्तर पर भी समाज में चेतना लाने का आह्वान किया था। उन्होंने विष्व को यह सन्देष दिया कि मनुश्य को लहू, वर्ण जाति, धर्म और संकुचित राश्ट्रीयता के संकीर्ण दायरे से ऊपर उठकर सत्य, प्रेम, दया, करूणा एवं मनुश्यत्व की उपासना करनी चाहिए। यदि मेरे सुझाव की बात की जाय तो मैं पंत के पुनीत विचारों से अत्यंत प्रभावित हूँ तथा जिन उद्देष्यों को लेकर कवि ने अपनी अभिव्यक्ति दी वह आज भी खतरें मे है, अर्थात् मैं कहना चाहता हूँ कि वर्तमान में यह देखना होगा कि कहीं संकुचित राश्ट्रवाद या जातिवाद, क्षेत्रवाद, धर्मवाद हमारे समाज को दिग्भ्रमित तो नहीं कर रहा? यदि ऐसा है तो उसे समाप्त कर स्वच्छ एवं स्वस्थ्य समाज व राश्ट्र बनाने में आज के नव युवकों को भी अपना महत्वपूर्ण योगदान देना चाहिए।

****

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1.सुमित्रानन्दन पंत- उत्तरा , पृ0 75
2.सुमित्रानन्दन पंत- रजत शिखर , पृ0 51
3.सुमित्रानन्दन पंत- उत्तरा , पृ0 115
4.सुमित्रानन्दन पंत- स्वर्ण धूलि, पृ0 115
5.सुमित्रानन्दन पंत- कला और बूढ़ा चाँद, पृ0 76
6.सुमित्रानन्दन पंत- युगान्तर, पृ0 158

A Study on the techniques of development of Empathy among the students of Vidya: The living school of Dhemaji, Assam

Sehnaz Begum
Assistant Professor
Dept. of Education, S.P.P. College, Namti

Protim Gogoi
Former Student
Dept. of Education, S.P.P. College, Namti

Abstract:-Empathy is the capacity by which we can recognize or feel to some extent and share the feelings of others (Chutiya and Hazarika, 2021). Empathy is helpful for the students in creating a positive classroom environment by encouraging kind and helpful behavior and developing communication skills to be successful in global Society. (Suttie, 2016; GCU blogs, 2023) Empathy is essential for human life to make life the most worth living and happy. Besides this, it helps in living a morally enriched life which ultimately help in building peaceful life. The main objective of the study is to study how empathy is developed among the students of Vidya: The living school of Dhemaji District of Assam. Vidya: The living school is a dynamic and extra ordinary school which is famous for its unique teaching-learning method, curriculum and learning environment. Positive Psychology is practiced in this school. So, different qualities of a positive and happy life are tried developed among the students to make their life the most worth living. There are 31teachers 422 students in the school. This school is situated in the Dhemaji District of Assam. Students are the future citizens. They must be trained in the classroom to be good human beings, good social members and good citizens. For this purpose empathy should also be developed among them besides other qualities. Through education all round development of the students must be done. But all round development of the students will be incomplete without empathy developed among them. So, training in empathy or developing empathy is important from the school level education. To create awareness about empathy and its importance as well as ways for development of empathy among the students of Vidya: The living School, Dhemaji , Assam. So, the study is significant. Descriptive method of study has been used for the study. Both primary and secondary sources of data have been used for study. Primary data have been collected with the help of two questionnaires, one for the teachers and the other for the students. Secondary data have been collected with the help of books, online sources, journals and dissertation. The major findings of the study was that empathy is that empathy developed among the students by using different methods and techniques like- development of demonstration of empathy and role model played by teachers, development of communication skills of the students, solving of problems of others by the students, helping others and maintaining diary, participation in drama, practicing active listening etc. and providing opportunity and training to the students to practice empathy scholastic and non scholastic activities as well as in all the activities of day to day life including the residential life in the hostel of the school too. This will help to make 'empathy' a habit and more spontaneous and natural response and a part of their behavior and their personality as a whole. As an outcome of all such methods and techniques adopted in the school, the students really developed empathy and practiced empathy.

Key words: Positive Psychology, Empathy, Vidya: The living School

Introduction: -Positive Psychology now-a-days has been gaining more popularity in the field of education due to its importance. The practice of positive psychology in the educational institutions is now a new area for research purpose. Positive Psychology is a scientific study of everything that makes life worth living. Positive psychology studies all the positive aspects of human life and all positive traits of human beings. Empathy is one of the important positive traits of human beings. According to Oxford dictionary, Empathy means the power of identifying oneself mentally with a person or object of contemplation. Empathy is the capacity by which we can recognize or feel to some extent and share the feelings of others (Chutiya and Hazarika, 2021). Empathy is helpful for the students in creating a positive classroom environment by encouraging kind and helpful behavior and developing communication skills to be successful in global Society. (Suttie, 2016; GCU blogs ,2023)

Empathy is essential for human life to make life the most worth living and happy. Besides this, it helps in living a morally enriched life which ultimately help in building peaceful life. To create a moral peaceful and happy society empathy is essential. To build a beautiful world living with peace, harmony, co-operation, understanding, unity, love, morality and happiness. Since, students of today are the future citizens, it is important to inculcate and improve empathy among the students right from the school level. It not only helps to develop good character but also good citizenship quality among the students. According to GCU blogs (2023) Empathy can be developed among the students by different ways:

Practicing

active listening by the teachers and students, by playing role model by the teachers, demonstrating empathy by empathetic communication, creating situations and providing opportunity to students to practice empathy and tell what others are feeling or guessing others emotions, telling story and later asking the students to describe the emotions and actions of characters of the story, asking to the students to help each other to solve problem, teaching perspective, deferring judgment, developing community Projects .

Objective of the study:

The objectives of the study are mentioned below:

1.To study how empathy is developed among the students of Vidya: The living school of Dhemaji District of Assam.

2.To study whether empathy is practiced in the school.

Significance of the study: -Students are the future citizens. They must be trained in the classroom to be good human beings, good social members and good citizens. For this purpose empathy should also be developed among them besides other qualities.

Through education all round development of the students must be done. But all round development of the students will be incomplete without empathy developed among them. So, training in empathy or developing empathy is important from the school level education.

It is important to live a peaceful and happy with a morally enriched life which is full of human values, cooperation, understanding, harmony, love, truthfulness, non-violence, tolerance etc.

Empathy is also helpful for students. Empathy encourages kind, helpful behavior and creates a safe school culture as well as fosters positive student relationships (Suttie, 2016). According to GCU blogs (2023) Empathy can help in developing skills to communicate. This ability to emphasize and communicate can strengthen the global community as well as help students to be successful in global society. Empathy is an essential leadership quality that enables students to be strong leaders.

To create awareness about empathy and its importance as well as ways for development of empathy among the students of Vidya: The living School, Dhemaji, Assam.

Area of the study:-Vidya: The living school is a dynamic and extra ordinary school which is famous for its unique teaching-learning method, curriculum and learning environment. Positive Psychology is practiced in this school. So, different qualities of a positive and happy life are tried developed among the students to make their life the most worth living. There are 31 teachers and 422 students in the school. This school is situated in the Dhemaji

District of Assam. The school was established under the leadership of Dr. Pranjal Buragohain, Associate Professor of Dibrugarh University, Dibrugarh, Assam. Pankaj Sonari is the Head Master of this School.

Methodology of the study: -Descriptive method of study have been used for the study. Both primary and secondary sources of data have been collected with the help of two unstructured interview schedules teachers and students and two questionnaires were used: one questionnaire for the teachers and the other for the students. Secondary data have been collected with the help of books, online sources, journals and Project report. The total population of the study included 31 teachers and 422 students. The sample of the study included 10% teachers i.e. 4 and 10% students i.e. 42 of the school. Purposive sampling technique has been used for the study.

Analysis and Interpretation:

Findings of the study: -The major findings of the study are mentioned below:

1.The philosophy and mission and vision of the school indirectly involve the development empathy among the students. So, emphasis on training in empathy is provided in the school to develop empathy among the students.

2.The school teaches all the skills and traits (including empathy) that are necessary for happiness and for living a worthy life. In this way empathy is tried to develop among the students.

3.The curriculum provides opportunity for practice of empathy. In this way empathy is tried to develop among the students.

4.The teachers are empathetic to the students while dealing with their behavioral problems. Teaching is done with empathy. In this way the teachers practice empathy and empathy is tried to develop among the students.

5.It was found that all the students are required to develop empathy compulsorily.
6.For development of empathy, communication skills were developed among the students so that they can communicate with others to understand their emotions.
7.To develop empathy as a part of their everyday's duty all the students were required to solve other's problems through discussion.
8.To develop empathy the students were also provided opportunity for participating actively in drama.
9.To develop empathy development of demonstration of empathy and role model played by teachers and practicing active listening by the teachers and students are also done in the school.
10.To develop empathy it was made compulsory for each student to help atleast one person
11.Empathy is also developed among the students by proving opportunity to the students to practice empathy in scholastic and non scholastic activities of the school .
12.Empathy is also developed among the students by providing opportunity and training to the students to practice empathy in all the activities of day to day life including the residential life in the hostel of the school too. This will help to make 'empathy' a habit and more spontaneous and natural response and a part of their behavior and their personality as a whole.
13.It was also revealed in the study that as an outcome of all the efforts (methods and techniques) adopted in the school, the students really develop empathy and practice empathy. The students expressed that they feel happy after practicing and expressing empathy for others.

Conclusion: -In conclusion, it can be mentioned that empathy is essential for the students as well as for every human being to make life happy and maintain united peaceful global society. Empathy is developed among the students of Vidya: The living school of Dhemaji district of Assam. For this purpose, methods and techniques like- development of demonstration of empathy and role model played by teachers, development of communication skills of the students, solving of problems of others by the students, helping others and maintaining diary, participation in drama, practicing active listening etc. have been used. Empathy is also developed among the students by providing opportunity and training to the students to practice empathy in all the activities of day to day life including the residential life in the hostel of the school too. This will help to make 'empathy' a habit and more spontaneous and natural response and a part of their behavior and their personality as a whole. As an outcome of all such methods and techniques adopted in the school, the students really developed empathy and practiced empathy. The students of the school feel happy after practicing and expressing empathy for others. It may be suggested that empathy should be developed among the students of every school to create a positive classroom environment as well as to help them to be successful in global society.

****

References:-

1.Chutiya, D.R. and Hazarika, M. (2021). *Manasik Swasthya Bisarjya Bisaisamuh*. Mahaveer Publications.
2.6 Steps To Cultivate Greater Empathy in Teaching (2023). https://www.gcu.edu/blog/teaching-school-administration/6-steps-cultivate-greater-empathy-teaching
3.Suttie, J. (2016).*Seven Ways to Foster Empathy in Kids.* https://greatergood.berkeley.edu/article/item/seven_ways_to_foster_empathy_in_kids
4.Gogoi, P. (2023).*A Study on Practice of Empathy with special reference to Vidya: The living school, Dhemaji,Assam.* [Unpublished dissertation,SPP College].

Globalization as A key Factor of Global Warming and Environmental Crisis

Barun Das
(Research Scholar in RKDF University
HOD of English in SGIS-VDN. MA, B.Ed.)

Where globalization means, as it so often does, that the rich and powerful now have new means to further enrich and empower themselves at the cost of the power and weaker, we have a responsibility to protest in the name of universal freedom." - - By Nelson Madela.

Abstract: Globalization refers to how the world has become more connected economically, politically, socially and culturally over time. Through globalization Trade, ideas, people, technology, disease, services were shared across the world. The standard of living changed; countries became interdependent. Global environmental issues such as environmental degradation, climate change, and global warming have posed a threat to the global economy. The primary source of these problems is greenhouse gas emissions. These emissions are the result of human activity. The objective of the study was to investigate the symmetric and asymmetric relationship between globalization and greenhouse gas emissions. According to the results of impulse response functions, economic globalization has a significantly more relationship with greenhouse gas emissions than social and political globalization. A policy should be developed that allows only the positive effects of globalization while prohibiting the negative effects of globalization.

Keywords: Environmental degradation, Globalization, Greenhouse gas emissions, Environmental Education.

Introduction: Today's environmental problems mostly arise from human activities. Pollution and the depletion of natural resources, dwindling plant and animal biodiversity, the loss of wilderness, the degradation of ecosystems, and climate change are all the environmental concerns caused by humans (Cochrane, 2007).With the help of technology and science human has transformed and destroyed nature for centuries. However as a result of this destruction, serious environmental problems threaten the future of his own future. At this point technology is helpless to save the earth. The deterioration of the environment produced by technology is a technological problem for which technology has found, is finding, and will continue to find solutions. Hundreds of millions of dollars have been devoted to improve the quality of the environment and that much more will be spent in the future. Despite these intense efforts expended in 'saving the environment', it is questionable whether current scientific and technological approaches can be sufficiently effective in solving numerous environmental crises. Globaliza"tion, which is partly synonymous with rising international trade, has fostered the rapid production, trade and consumption of material goods in unprecedented quantities. This has weighted the ecological footprint of human activities around the world. While it's still difficult to assess the impact of globalization on the environment, it's quite obvious in some areas. Today globalization's negative environmental effects are more apparent.

THE EFFECTS OF GLOBALIZATION ON THE ENVIRONMENT

1. Increased Transport of Goods-

One of the primary results of globalization is that it opens businesses up to new markets in which they can sell goods and source labor, raw materials, and components. Both of these realities mean finished products travel farther now than ever before—potentially halfway around the globe. In the past, products were more likely to be produced, sold, and consumed more locally. This increased transport of goods can impact the environment in several ways, including:

Increased emissions: The farther a product travels, the more fuel is consumed, and a greater level of greenhouse gas emissions is produced. According to a report by the International Transport Forum, CO_2 emissions from transport will increase 16 percent by 2050. These emissions contribute to pollution, climate change, and ocean acidification around the world and have been shown to significantly impact biodiversity.

Habitat destruction: Transportation—especially when land-based—requires infrastructure like roads and bridges. The development of such infrastructure can lead to issues including habitat loss and pollution. The more ships that travel by sea, the greater the chances for major oil spills or leaks that damage the delicate marine environment.

Invasive species: Every shipping container and vessel presents an opportunity for a living organism—from plants to animals to fungus—to hitch a ride to a new location where it can become invasive and grow without checks and balances that might be present in its natural environment.

2. **Economic Specialization-**One oft-overlooked side effect of globalization is that it allows nations and geographical regions to focus on their economic strengths,

content in knowing they can turn to trading partners for goods they don't produce themselves. This economic specialization often boosts productivity and efficiency.

Unfortunately, overspecialization can threaten forest health and lead to serious environmental issues, often in the form of habitat loss, deforestation, or natural resource overuse. A few examples include:

Illegal deforestation in Brazil due to an increase in the country's cattle ranching operations, which requires significant land for grazing

Overfishing in coastal areas that include Southeast Asia, which has significantly contributed to reduced fish populations and oceanic pollution

Overdependence on cash crops, such as coffee, cacao, and various fruits, which has contributed to habitat loss, especially in tropical climates

It's worth considering that globalization has allowed some nations to specialize in producing various energy commodities, such as oil, natural gas, and timber. Nations that depend on energy sales to fund a large portion of their national budgets, along with those that note "energy security" as a priority, are more likely to take intervening actions in the market in the form of subsidies or laws that make transitioning to renewable energy more difficult.

The main by-product of these energy sources comes in the form of greenhouse gas emissions, which significantly contribute to global warming and climate change.

3. **Decreased Biodiversity-**Increased greenhouse gas emissions, ocean acidification, deforestation (and other forms of habitat loss or destruction), climate change, and the introduction of invasive species all work to reduce biodiversity around the globe.

According to the World Wildlife Fund's recent Living Planet Report, the population sizes of all organisms—including mammals, birds, fish, amphibians, and reptiles—have decreased 68 percent since 1970. Latin America and Africa—two rapidly developing regions important to global trade—have seen disproportionate levels of biodiversity loss, especially among environmentally sensitive fish, reptiles, and amphibians.

While this decrease in biodiversity has many causes, it's widely believed that the issues listed above have contributed in part.

4. **Increased Awareness**

While many of globalization's environmental effects have been negative, its increase has heightened environmental awareness worldwide.

Greater connectivity and higher rates of international travel have made it easier than ever for individuals to see the effects of deforestation, habitat loss, and climate change on the environment. This, in turn, has contributed to new laws, regulations, and processes that limit negative effects.

5. **THE ROLE OF MNCs.-**

Globalization has allowed societies to enjoy many benefits, including increased global cooperation, reduced risk of global conflict, and lower commodity prices. Unfortunately, it also leads to serious negative effects on the environment.

Because globalization cannot be ended or reversed, the situation is likely to worsen unless nations, governing bodies and other bodies are forced to enact laws and regulations limiting the negative effects.

Businesses and industries operating globally are encouraged to take any voluntary action to reduce the likelihood of negative outcomes. Doing so not only gives the organization more control over its initiatives, but can also be a powerful marketing and communication tool.

Investing in renewable energy and packaging, adopting responsible land-use management and shifting the production of goods closer to the end customer are all potential options that businesses can and should consider. The challenge is to balance the desire to accept corporate social responsibility with the need to make a profit and run a successful business.

It has made so many changes in our lives that it is impossible to reverse them. The solution lies in developing effective mechanisms that can test the extent to which it can affect the environment. Researchers believe that the answer lies in the problem itself, which means that globalization itself can support the creation of better infrastructure that is economically feasible and environmentally friendly. Globalization is about competition, and if some privately owned companies can take the lead in becoming environmentally friendly, it will encourage others to follow suit.

In most cases it has been reported that developed countries use developing countries and underdeveloped countries to their advantage. For example, in these countries, the MNC's get cheap labour and availability of resources in abundance to increase their profits which lead to affect the developed countries because they have skilled labour and are available to them at the high price. So they look for labour available at low cost and make them skilled in the field.

We become interdependent through globalization so if the economic growth of one country affects the other then at the same time globalization has a huge impact

on the environment both positively and negatively. But globalization has helped to increase the environmental damage we are facing. Today, some national, international policies have been formulated to mitigate the effects of globalization on the environment.

6. Increased greenhouse gas emission

Climate change is a major environmental problem that has connectivity through greenhouse gas emissions – excessive maintenance of solar energy in the atmosphere due to the accumulation of certain gases, especially CO2. The main source of CO2 emissions is industrial production, transportation and deforestation but it is also considered as a source of development in the 20th century and especially in recent times.

7.Globalization encourages Deforestation

Logging and burning of trees reduces the amount of CO2 converted to oxygen by plants. Converting rainforests / oxygen houses into farmland or concrete forests for the production of goods, and meeting the market demand in one way or another, almost twice the size of Paris per day for agricultural purposes, especially in developing countries. In Brazil, for example, a few years ago most of its farming was export-oriented. Brazil's soybean exports to China increased from 15,000 to 6 million tons.

One of the reasons for the increase in the number of natural disasters like hurricanes, hurricanes, floods and earthquakes is also global warming; the melting of glaciers increases the sea level. Coastal areas are at high risk. Rising temperatures could soon lead to the extinction of living species, such as penguins, snow leopards, dolphins, whales, and polar bears, which are declared endangered. It feels bad to know that this cute animal will only have to pay for its life due to human activities and it will leave an incredible mark on the world ecosystem.

Data in a short table.

Country	Variables	Mean	Max	Min	STD	Skewness	Kurtosis	J-B
China	CO_2	2.620	4.979	0.948	1.338	0.435	1.635	5.347 *
	Globalization	3.698	4.163	3.061	0.385	−0.182	1.478	4.995 *
The United States	CO_2	0.539	0.909	0.276	0.186	0.478	2.149	3.345
	Globalization	4.261	4.410	4.075	0.112	−0.306	1.628	4.605 *
India	CO_2	1.038	1.203	0.861	0.087	−0.077	2.264	1.154
	Globalization	3.718	4.130	3.382	0.288	0.323	1.391	6.136 **

Effect of Globalisation; Economic, Social, Political.

The process of globalization benefits economic growth by advancing economic, social, and political development within a country; however, globalization is also increasing CO_2 emissions, resulting in climatic change and environmental degradation . Consequently, the nexus between globalization and the environment is generating increasing levels of concern. Understanding this long-term relationship is essential for decision-makers striving to achieve sustainable development. To pursue such development, environmental, social, and economic factors must be considered .

Directly and indirectly, the process of globalization positively or negatively impacts the environment in three distinct ways: the income effect, the technique effect, and the composition effect . In the income effect, globalization results in CO_2 emissions as a consequence of increasingly open trade and foreign investment . In the technique effect, globalization assists countries in manufacturing eco-friendly products through the inflow of energy-efficient technologies, thereby reducing CO_2 emissions . However, the development of information and communication technology (ICT) does not reduce the consumption of energy during operations ; therefore, the greater the development of ICT, the higher the consumption of energy, which can result in more CO_2 emissions being ejected into the atmosphere. In the composition effect, globalization induces various forms of production depending on the comparative advantages for countries . Consequently, strict regulations to protect the environment in developed countries encourages enterprises to move their production activities and operations to developing countries where environmental regulations are weaker . This leads to the pollution haven effect, whereby polluting industries move from developed to developing countries . The composition effect also influences economic activity and CO_2 emissions, depending on the degree of pollution from agricultural, industrial, and services sectors within in a country. Economic activities generate fewer CO_2 emissions as a result of shifting from energy-extensive sectors to technology-intensive sectors . The fact that globalization is linked to different components of activities means that previous studies investigating the nexus of globalization and the environment have employed disparate approaches, leading to mixed results and diverse inferences.

Within globalization, the economic, social, and political aspects of activities, including the trade of goods and services, the arrival and departure of international tourists , ground processing and handling of aircraft , and internet usage can alter the environment. For example,

the United States introduced protectionist policies which impeded globalization during tariff wars in 2018. In the same year, China implemented environmental policies as ecological civilization is enshrined in its constitution. In 2020, tourism activities were reduced due to the emergence of the COVID-19 pandemic. Recently, the State Council in China released a report revealing its official aim to build an additional 160 airports, anticipating that 400 airports would be operational before the year 2035 . In India, environmental protection has become a challenge a new Draft Environmental Impact Assessment notification was released by officials which revealed that public consultation in several projects was lacking . Regional conflicts can be linked to economic and political circumstances at either a regional or global level. Since 2014, a conflict between Ukraine and Russia has been taking place; the Russian invasion of Ukraine in 2022 has altered the economic and political circumstances of the European region and the wider world. Specifically, the conflict has impacted political decisions, such as military deployment and action by the North Atlantic Treaty Organization, the United States, and China . In addition, it has caused chaos in the global supply chain. Disruption to supply from upstream suppliers is also affecting the production of goods because the region supplies natural gas, metals, and raw materials for the metal and technology industries worldwide . The above discussion reveals three aspects of globalization impacting the environment, highlighting the importance of decisions or events in a specific country.

*Represent significance level in 10%.

**Represent the levels of significance in 5%.

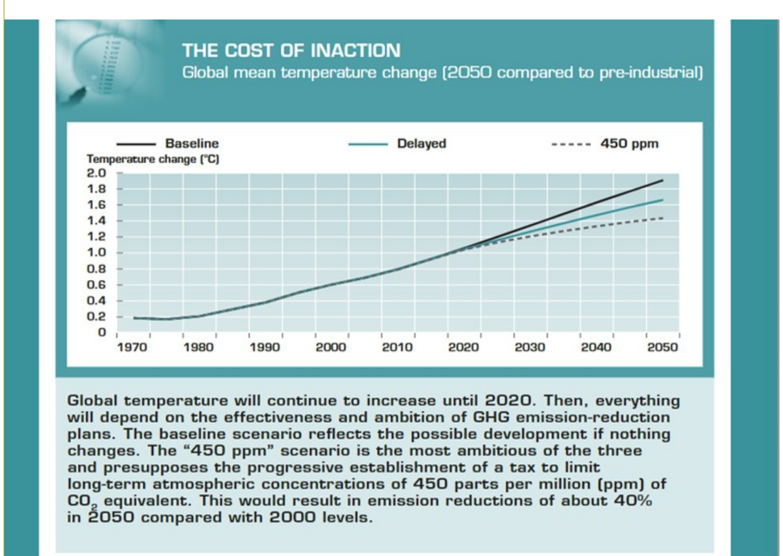

Source: OECD (2008), *Environmental Outlook to 2030*, OECD Publishing, Paris.
StatLink http://dx.doi.org/10.1787/888932780228

WAY-OUT from GLOBAL WARMING.

Alternative Energy Sources. The hazards caused by global warming are tremendous. Excessive use of fossil fuels such as coal, natural gas and oil play a part in it too. The usage of fossil fuels should be discontinued immediately. The most significant solution to put an end to this disaster is the use of alternative energy sources. They include wind, solar, bio mass, geothermal and hydro. The most noteworthy point in using these sources is their clean nature. They do not produce any sort of pollution or toxic gases that can lead to global warming. They are environmentally friendly and pose no threat to ecological balance. However, their high installation and setup costs may drive energy companies away from them at first but in the long run they are surely beneficial for everyone. Most importantly, fossil fuels will deplete one day and sooner or later, we have to turn to renewable energy sources for energy production. Thus, the eventual solution to end global warming is to use alternative energy sources.

2. Environmental Education and Its Role in Solving Environmental Problems.-In the 1960s, awareness of the negative impacts of mankind on the natural environment rose, and environmental policies and programmes worldwide were developed. People became more aware of their own impact on the environment in their everyday life and, in parallel, their influence on the way their local community is run. The idea emerged that a citizen could influence public decisions that impact ones quality of life (at least in democratic countries). That is when the need for environmental education emerged, covering two aspects: inform people of environmental systems and educate them so that they adopt a more responsible attitude towards the environment. The idea was not to dictate how to behave but to help people make informed choices.

Environmental Education (EE) is a process aimed at developing a world population that is aware of and concerned about the total environment and its associated problems, and which has the knowledge, attitudes, motivation, commitment, and skills to work individually and collectively toward solutions of current problems and the prevention of new ones (Matarasso and Dung, 2002: 4). In 1977, the goals of environmental education were agreed in the Tbilisi Declaration at the Intergovernmental Conference on Environmental Education held at Tbilisi. They were amended at UNESCO meetings in the Asia-Pacific region in order to capture the notion of sustainability.

The three goals of environmental education agreed upon are (Institute for Global Environment Strategies, 2004):

· To foster clear awareness of, and concern about, economic, social, political and economic interdependence at local, regional, national and international/global levels;

· To provide every person with opportunities to acquire the knowledge, values, attitudes, commitment and skills needed to protect and improve the environment;

· To develop and reinforce new patterns of environmentally sensitive behaviour among individuals, groups and society as a whole for a sustainable environment.

Saving rainforests is the key to saving our planet.

We are dedicated to putting conservation technologies into the hands of committed partners on-the-ground to help combat:

Deforestation which accounts for 17% of all global carbon emissions. [1]

The greatest species extinction crises since the time of the dinosaurs. [2]

Historic droughts that affect upwards of 20 million people in major cities in South America such as Sao Paulo (directly related to the destruction of the Amazon rainforest). [3]

The destruction of Indigenous Reserves which comprise 20% of the Brazilian Amazon rainforest, now increasingly targeted by illegal loggers and poachers because they are still intact.

Economic losses of GDP $2-5 trillion per year attributed to downgrading rainforest to pasture and less productive land use.

Conclusion-This chapter explores research into the relationship between globalisation and the environment, looking at patterns and rates of growth in international trade and foreign direct investment. It provides a summary of knowledge of globalisation's indirect effects, focusing largely on current estimates of the size of the scale, composition and technique effects of globalisation. The chapter concludes with a brief discussion of the various direct effects of globalisation, notably transport-related emissions and biological invasions, and attempts to put these into the broader context of overall effects. The chapter concludes that, although recent evidence concerning trade and local pollution is encouraging, the evidence concerning carbon and other greenhouse gas emissions is less so. One explanation for the pessimistic assessments of trade's impact on greenhouse gas emissions is their global nature. Not only are the costs of CO2 emissions shared with citizens abroad (who have no political voice outside their own country), but many greenhouse emissions are associated with fossil fuel use, for which few economically viable substitutes have emerged to date. The income and technique effects that are largely responsible for reductions in local air pollutants do not seem to have the same force when the pollutant in question burdens the global population.

****

REFERENCES;

1. https://www.ncbi.nlm.nih.gov
2. https://pledgeasmile.com
3. European Union. (2010). Making our cities attractive and sustainable. Luxembourg: Publications Office of the European Union European Union. (2011).
4. Environmental education-contribution to a sustainable future. [Online] Available: http://www.surf-nature.eu/uploads/media/thematic_booklet_ enviromental_education.pdf (January 14, 2016)
5. Institute for Global Environment Strategies. (2004). Goals of environmental education. [Online] Available: http://pub.iges.or.jp/contents/eLearning/ ee/introduction _goals.htm (January 02, 2016)
6. Sasana, H., & Putri, A. E., The Increase of Energy Consumption and Carbon Dioxide (CO2) Emission in Indonesia, Icenis 2017, 01008, 5., (2018).
7. Sasana, H., & Ghozali, I., The Impact of Fossil and Renewable Energy Consumption on the Economic Growth in Brazil, Russia, India, China and South Africa. International Journal of Energy Economics and Policy
8. https://www.oecd-ilibrary.org/environment
9. https://rfcx.org/our_work
10. Masson, V., Impacts of Global Changes in Cities. Reference Module in Earth Systems and Environmental Sciences (1st ed.). Elsevier Inc., (2017).

संजीव की कहानियों में नारी शोषण के प्रति प्रतिशोध

पी. एम. आर.जयंती
प्राध्यापक हिंदी
SKR&SKR GOVT COLLEGE
FOR WOMEN(A) KADAPA

बीज शब्द : संवेदना, शोषण, आक्रोश, समाज

आधुनिक हिंदी कहानी के क्षेत्र में संजीव को एक सशक्त प्रतिभा संपन्न कहानीकार के रूप में पहचाना जाता है संजीव का जन्म स्थान उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर जिला का गांव में हुआ है। संजीव का जन्म एक गरीब किसान परिवार में हुआ संजीव क्रांतिकारी भगत सिंह के विचारों और मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित है भारतीय संस्कृति से संजीव को विशेष लगाव है साहित्य सृजन का प्रारंभ संजीव अपने स्कूली जीवन में ही किया ।पहले इन्होंने पत्रिका निर्माण किया लेकिन पद में मन ना लगने के कारण गद्य की ओर आकृष्ट हुए। संजीव पर मुंशी प्रेमचंद का सर्वप्रथम प्रभाव पड़ा इस संबंध में संजीव कहते हैं कि "मैं प्रेमचंद होना नहीं चाहता मैं प्रेमचंद को छूना चाहता हूं" एक बार संजीव प्रेमचंद के साहित्य और विचरण की ओर काफी आकर्षित हुए।

संजीव बहुत संवेदनशील व्यक्ति है उनकी यह संवेदनशीलता उनके प्रत्येक रचना में छलकती है ।उनकी रचनाओं में मजदूर,असहाय दलित, आदिवासियों के प्रति प्रेम और आस्था अन्याय, अत्याचार करने वाले उच्च वर्ग के प्रति घृणा, द्वेष और आक्रोश दिखाई देता है संजीव अपने साहित्य द्वारा दलित, मजदूर, असहाय नारियों को उच्च वर्ग के अन्यायों के प्रति विरोध में आवाज उठाने की जोर देते हैं और इनकी विवशता को वाणी देने में सदैव तत्पर रहे हैं, इन्हें किसी पर अन्याय, अत्याचार व शोषण होता हुआ देखा नहीं जाता।

साहित्य की विधाओं में कहानी को अनन्य महत्व प्राप्त हुआ है। कहानी जीवन समाज की छोटी सी घटना को प्रस्तुत करके मनोरंजन करने का महत्वपूर्ण कार्य करती है ।स्त्री पात्र जितनी स्वाभिमानी, साहसी और सहनशील होती है, उतनी ही उसे परिवार और समाज से अन्याय-अत्याचार का सामना करना पडता है। नारी कभी-कभी परिवार और समाज में असुरक्षित महसूस होती है। प्रमुख स्त्री पात्रों में दुलारीबाई (घर चलो दुलारीबाई), सोमा (गुफा का आदमी), जसी बहू (जसीबहु), जोहराबाई (संतुलन), छबीली (ऊष्मा), सूरसती (घनुष टंकार), शिखा (पुन्नीमाटी), आयशा (मानपत्र) पल्लवी दी (कन्फेशन), नसीबन बी (सागर-सीमांत), कल्याणी (कठपुतली), तिरबेनी (तिरबेनी का तड़बन्ना) आदि संजीव की कहानियों की प्रमुख स्त्री पात्र हैं।

संजीव की कहानियों में नारियों के विविध रूपों का चित्रण मिलता है।संजीव की 'घर चलो दुलारी भाई' कहानी की प्रमुख पात्र एक विधवा नारी है । संजीव ने इस कहानी के माध्यम से दुलारी बाई की वेदना, शोषण और घुटन भरा जीवन तथा आज की दोष युक्त न्याय व्यवस्था के प्रति आक्रोश प्रकट किया है। कहानी का प्रारंभ कचहरी के बरामदे से शुरू होता है वह अपनी अतीत को याद करके रोती हुई बैठी है दुलारी बाई अपने मायके से और ससुराल की जायदाद की अकेली वारिश है उसकी ससुराल वाले पहले उसकी पति और बाद में उसके छोटे बेटे को मार डालते हैं तो वह अदालत में न्याय मांगने जाती है। रिश्वत देकर उसे मरी हुई साबित करते हैं ।ससुराल वालों से बचने के लिए वह घर से भाग कर प्राइमरी स्कूल मास्टर मुस्ताक़ अहमद के पास आश्रय के लिए जाती है ।सभी लोग उसे चरित्रहीन मानते हैं। इस डर से वह मुस्ताक़ का घर छोड़ देती है।वह गांव की अलग हिस्से में छुपकर अपने परिवार वालों के विरुद्ध मुक़दमा दायर करती है, लेकिन घर वाले आपस में जायदाद बांट लेते हैं ।वह मुस्ताक अहमद को अदालत में जज के रूप में देखती है और फिर से दोषी साबित की जाती है ।अदालत के बाहर ससुराल वाले अपने आप को विजय घोषित करते हैं।

प्रस्तुत कहानी से यह स्पष्ट होता है कि पैसे लोगों के बीच रिश्तों को खत्म कर देती हैं। पैसों की लिप्सा व्यक्ति को अपने ही परिवार के व्यक्ति को पहचानने से साफ इनकार कर देते हैं इससे दुलारी भाई बहुत ही शारीरिक मानसिक उत्पीड़न से गुजरती है।

पिशाच कहानी में लेखक ने निम्न वर्ग के लोगों पर अन्याय, अत्याचार करने वाले तथा स्त्रियों पर लैंगिक शोषण करने वाले घमंडी स्वार्थी लोगों का चित्रण किया है।

वापसी कहानी में लेखक ने देश की रक्षा करने वाले फौजियों के घृणित व्यवहार पर व्यंग्य किया है । साथी एक सच्चे पराक्रमी फौजी के चरित्र को चित्रित किया है। वापसी कहानी का प्रमुख पात्र टोनी एक ईमानदार और कर्मनिष्ठ फौजी है । टोनी को अकेले जलाशय की रक्षा करने की एमरजेंसी ड्युटी सौंपा जाता है ।एक रात टोनी को एक असहाय नारी दिखाई देती है । उसको टोनी ने कमांडिंग ऑफिसर को सौंप कर फिर से ड्यूटी पर चला जाता है । बाद में उसे औरत के साथ सभी फौजी बलात्कार करते हैं ।यह सुनकर टोनी को अपने आप पर और अन्य फौजियों पर घृणा और गुस्सा आता है।

दूसरी बार जब अफसर और फौजी लुटे हुए गहनों को बांटते समय दूर पर खड़ी हुई अकेली औरत को देखकर उस पर टूट पड़ते हैं ।इस दृश्य को देखकर टोनी आवेश में सभी फौजियों को अपनी बंदूक से मार देता है और उसे नारी की रक्षा करता है । उसे अपनी मां की याद आती है और वह भी इसी प्रकार अपनी आबरू खो गई होगी, इसी कारण बार-बार पिता के बारे में पूछने से भी मौन धारण करती है। टोनी को अपनी मां से बहुत प्यार और उसकी बेबसी पर पछतावा आता है। प्रसिद्ध कहानी में संजीव ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि देश के फौजियों को देश तथा देशवासियों की सेवा और रक्षा करने की जिम्मेदारी दी जाती है। परंतु जब वे औरतों की रक्षा न करके उन पर लैंगिक शोषण करते हैं तो देश की रक्षा क्या खाक करेंगे?

बाढ़ कहानी में संजीव ने प्रमुख पात्र त्रिवेणी की लैंगिक विकृति से पीड़ित मानसिक कथा को स्पष्ट किया है इस कहानी में आपसी रिश्ते नाते छठ पर टिके हुए हैं । वर्तमान सामाजिक, पारिवारिक और आर्थिक समस्या का चित्रण इसमें मिलता है।

संजीव ने कई कहानियाँ नारी चेतना को आधार बनाकर लिखी हैं। इनकी नारियाँ नारी विमर्श और नारी आंदोलनों से दूर होते हुए भी अपनी अस्मिता के प्रति सजग हैं। लेखक स्त्री-पुरुष समानता के पक्षधर हैं। बावजूद इसके नौकरीपेशा, आत्मनिर्भर तथा आधुनिका नारी इनकी कहानियों में नकारात्मक चरित्र के रूप में प्रस्तुत की गई हैं तथा लेखक की निंदा एवं आलोचना की पात्र हैं। स्त्री वर्ग के प्रबल पक्षधर माने जाने वाले संजीव नारी मुक्ति आंदोलनों से विशेष रूप से खफा हैं। 'कठपुतली' कहानी की कल्याणी दी सेठ की रखैल है जिसे उसके गरीब माँ-बाप चंद पैसों की खातिर सेठ को बेच चुके हैं। कल्याणी दी

कुछ समय पश्चात् जब अपने परिवार वालों से मिलने जाती है तो उसे लगता है कि घर के सारे लोग मर चुके हैं, "जानते हो राजू, बाबा और माँ ने मुझे अलग थाली में खाना दिया। छोटा भाई बबलू जो मुझसे हमेशा लड़ता-झगड़ता रहता था, पास तक नहीं फटका इस बार।...उन्होंने मुझे बाहर तक निकलने नहीं दिया और अँधेरे में मुझे सेठ के आदमी के हवाले कर दिया... अच्छा हुआ, एक वहम था, टूट गया।"1 संजीव ने यहाँ रीतते, बुझते सम्बन्धों तथा उससे उत्पन्न तीव्र पीड़ा का अहसास कराया है।

मानवीय रिश्तों की पड़ताल करने वाली कहानी 'माँ' में माँ के जीवन के अनछुए एवं मार्मिक पक्षों का उद्घाटन किया गया है। माँ जो आजीवन अपनी संतान को देती है, बदले में उससे कुछ आशा नहीं करती। लेकिन वही संतान उसको कितना समझ पाती है, उसके दुख-दर्द को कितना बाँट पाती है, यही सब बताने का प्रयास लेखक ने इस मार्मिक कहानी में किया है। बच्चों से पहेलियाँ बूझने वाली माँ स्वयं एक पहेली बन जाती है, उसके खुद के बच्चे उसे समझ और पहचान नहीं पाते हैं, "तमाम अफवाहों के बावजूद माँ से सुमेर के अवैध सम्बन्धों पर संदेह की गुंजाइश हमारे मनों में अभी भी बनी हुई थी।"[2] यह वही माँ थी जो बचपन के दिनों में बच्चों को सबसे प्यारी और सुंदर लगती थी।
'फैसला' कहानी की दोनों प्रमुख स्त्री पात्र मुसन्नी और मेहरुन्निसा अपने-अपने शौहर से प्रेम करती है किन्तु शौहर द्वारा तलाक दे देने का भय उन्हें सताता है। मुसन्नी के केस के कारण जज मेहरुन्निसा अपने आपको हर तरफ से असुरक्षित महसूस करती है। "सुनो अगर हमने तलाक के खिलाफ कोई फैसला दिया तो क्या वाकई तुम हमें तलाक दे दोगे?"[3] पढ़े -लिखे हैदर साहब अपनी पत्नी को मोरल सपोर्ट दे पाने में असमर्थ है। संजीव की कहानी 'अनम्या' एक ऐसी साधारण लड़की की कहानी है, जिसका विवाह दहेज के कारण नहीं हो पा रहा है। उसे देखने के लिए आये आगंतुकों से वह स्पष्ट रूप से कहती है, "किसी मुगालते में न रहे दहेज देने की औकात ही होती तो माँ... बिना इलाज के यू न गुजर जाती। रिटायर्ड क्लर्क हैं। पेंशन का ज्यादातर पैसा..... खैर वह सब बताने की चीज नहीं है।"[4]निशां जानती है कि आने वाले लोग पत्र द्वारा सूचित करने का झूठा आश्वासन देकर चले जायेंगे। वर्तमान समय में निशा जैसी दहेज देने में असमर्थ परिवारों की लडकियों का शादियाँ होना आसान नहीं है। हमारे समाज में बिना दहेज शादी करने वाले लड़कों की संख्या लगभग नगण्य है।

घर चलो दुलारी भाई और दुनिया की सबसे हसीन औरत आदि कहानियों के मुख्य विषय नई समस्या ही है संजीव जी इन कहानियों के माध्यम से औरतों को अन्याय अत्याचार तथा शोषण के खिलाफ आवाज उठाने लड़ने तथा अपने साहसी वृत्ति दिखाकर अपने व्यक्तित्व को बनाए रखने की प्रेरणा दी है। संजीव की कहानियां पाठकों को मनोरंजन ही नहीं करती बल्कि उन्हें सोचने के लिए बंद करती हैं। यही इन कहानियों की श्रेष्ठता की निशानी है । संजीव की कहानियां यथार्थ जीवन का चित्रण ही नहीं करती अपितु दिशा निर्देश का काम भी करती है।

****

संदर्भ :

1.संजीव, कठपुतली, आप यहां है पृ- 37
2.संजीव मां, ख़ोज पृ – 160
3.संजीव, फैसला, ब्लैक होल- पृष्ठ -85
4.संजीव, अनम्या, गली के मोड पर सुना सा कोई दरवाजा पृष्ठ-57

The Panchatantra text in Ancient India: A Study

Saurabh Shubham
(Research Scholar, University of Hyderabad)

Abstract: The panchatantra stories are quite popular in the world and are studied by the people of all age groups to have a practical view of life. They give a good moral lesson and teach the right behavior at the right time. We need to analyse and study it in a detailed manner to get a complete insight.

Keywords: Panchatantra, Ancient, Moral and ethics behaviour.

Panchatantra- its structure and composition

The Panchatantra text in ancient India is a legendary work in Sanskrit literature.

It needs to be studied from various perspective and ideologies and is still relevant in the present day world. The Rise and growth of political social economic and cultural consciousness all over the world and specially in India has made in the Panchatantra text very relevant and is still taught in the school textbooks and up to the university level also. The Panchatantra text is a very practical way of moral and ethics and to behave in a real world. Panchatantra text contains of 5 chapters which are further divided into several stories and each and every story has a different moral which is of high practical nature and needs to be analysed.

The main reason for popularity of Panchatantra is the practical and to the point lessons of moral and ethics.
The Panchatantra is divided into five books, or five sections as in the popular.
The five books are-
Book 1: Mitra-bheda.
Book 2: Mitra-samprāpti.
Book 3: Kākolūkīyam.
Book 4: Labdhapraṇāśam.
Book 5: Aparīkṣitakārakaṃ
In the initial treatise, a jackal named Damanaka, unemployed in a lion-ruled kingdom, teams up with his moralizing companion Karataka. Together, they plot to disrupt alliances and friendships of the lion king. This first book consists of over thirty fables, including stories like "The Loss of Friends," "The Jackal and the War-Drum," and "The Weaver Who Loved a Princess," depicting various conspiracies and reasons leading to the dissolution of close friendships.The second treatise stands out in structure from the rest of the books, as it doesn't primarily incorporate fables. Instead, it comprises the

adventures of four characters – a crow, a mouse, a turtle, and a deer – each with distinct habits and skills. Unlike the first book, the focus here is on highlighting the significance of friendships, teamwork, and alliances. The overarching theme conveys that "weak animals with different skills, collaborating, can achieve more than they can individually." Through their cooperation, mutual support, and cleverness, the ten fables illustrate how these creatures outsmart external threats and thrive.

In the third treatise, the focus is on war and peace, using animal characters to convey a moral about the strategic value of a battle of wits in overcoming a much stronger opponent's army. The underlying thesis is that intellect prevails over force. The animal choices serve as a metaphor for the conflict between good and evil, light and darkness, with crows representing the forces of light and wisdom. The fables in this book extend beyond war-related themes, exploring how characters with diverse needs and motives can foster peaceful relationships. For instance, in "The Old Man the Young Wife," an elderly man's gratitude towards a thief is sparked when the thief inadvertently leads the man's young, initially disapproving wife to embrace him for protection during a break-in. The third book consists of eighteen fables in Ryder's translation, including tales such as "Crows and Owls," "How the Birds Picked a King," and "The Butter-blinded Brahmin.

Book four of the Panchatantra is a straightforward compilation of ancient fables filled with moral lessons. These fables convey messages like "a bird in hand is worth two in the bush" and caution against succumbing to peer pressure and deceptive words masked in reassurance. Unlike the first three books, which provide positive examples of ethical behaviour, the fourth book takes a different approach by presenting negative examples with consequences. It focuses on actions "to avoid" and situations "to watch out for." The thirteen fables in Ryder's translation include stories like "Loss of Gains," "The Monkey and the Crocodile," and "The Dog Who Went Abroad."

Book five of the Panchatantra, akin to the fourth book, is a simple compilation of moral-filled fables. These narratives present negative examples with consequences, encouraging readers to reflect, avoid hasty actions, and exercise caution. The lessons include advice such as "get facts, be patient, don't act in haste then regret later" and "don't build castles in the air." Notably, unlike the first four books where characters are predominantly anthropomorphized animals, almost all characters in the fifth book are humans. According to Olivelle, this shift may aim to transition readers from the fantasy world of talking animals to the realities of the human world.

The fifth book features twelve fables in Ryder's translation, such as "Ill-considered Action," "The Loyal Mongoose," and "The Fiend Who Washed His Feet." One poignant story involves a woman mistakenly thinking her mongoose friend harmed her child, only to discover later that the mongoose had actually saved the child from a snake, leading her to regret her hasty action.

Conclusion -So, the moral imparted by the Panchatantra text is vast and immense and it has in the practical part of our lives for everyone from small child to an aged person. This is the reason for the popularity of the Panchatantra around the world and its translation into several languages.

The Rise and growth of Panchatantra as a text in many other Asian countries has its proof of popularity and acceptance among the common people. This has also let to regional variations in various versions of Panchatantra and the regional variations have to be studied together to get the complete essence of the story and a complete picture of it.

The Panchatantra text can also be compared which other fables and stories around other parts of the world like the eloquent peasant in ancient Egypt and the Gilgamesh Epic in ancient Mesopotamia but in the over all since we find that the Panchatantra has a better coverage of everyday life from a common man to the royalty and it imparts much more deeper moral lessons and practical wisdom to everyone from a scholar to a layman.

****

Bibliography

1. Panchatantra, Visnu Sarma, Chandra Rajan, Penguin, 2006.
2. 101 Panchatantra Stories ,Om Books International 2012.
3. Panchatantra, Vishnu Sharma, Rohini Chowdary, Penguin , 2017.
4. The Panchatantra, Arthur Ryder, Chicago University, 1925.
5. Panchatantra of Crows and Owls, Maple Press,2016.
6. 365 Panchatantra Stories, Om Books International, 2019
7. Panchatantra, Pandit Vishnu Sharma, GL Chandiramani, Rupa &Co., 2011.

'एक औरत एक जिन्दगी' कहानी की विधवा का जीवन- संघर्ष

डॉ. पुष्पा गोविंदराव गायकवाड
वै. धुंडा महाराज देगलूरकर,
महाविद्यालय, देगलूर

भारतीय विधवा का संघर्षमय जीवन आज भी हमारे रोंगटे खडे कर देता है। विधवा के लिए रीति नियम परम्पराएँ बहुत ही कठौर थे। वह सुबह श्याम पूजापाठ में मन लगाये। वह रंगीन साडी न पहने उसे गंजा बनाया जाता था। ता की कोई उसके और न देखे उसे विद्रुप बनाया जाता था। उसे विवाह करने की स्वीकृति नही थी। पर पुरुष के लिए ऐसी कोई परम्परा नही थी। सारी परम्पराएँ स्त्री के लिए ही बनाई हुई थी। ऐसी भयावह परम्पराएँ तोडने का कार्य साहित्यकार करता है।

एक औरत एक जिंदगी इस कहानी के रचनाकार रामदास मिश्र है। वे हिन्दी के प्रतिष्ठित साहित्यकार है। ये जितने समर्थ कवि है उतने ही समर्थ उपन्यासकार और कहानीकार भी है। रामदरश मिश्र की लंबी साहित्य यात्रा समय के कई मोडो से गुजरी है और नित्य नूतनता की छवि को प्राप्त होती है।

लेखक अपने समय और समाज की वास्तविकताओं तथा चेतना से लगातार जुडे रहे है।

एक औरत एक जिंदगी इस कहानी में लेखक रामदरश मिश्र ने एक विधवा स्त्री की संघर्ष भरी गाथा को प्रस्तुत किया है। इस कहानी की कथा नायिका भवानी ब्राम्हण विधवा बहु है। भारतीय समाज में विधवा स्त्री को कई यातनाओ से गुजरना पडता है इसका यथार्थ चित्रण इस कहानी में लेखकने किया है।

एक औरत एक जिंदगी इस कहानी को देखकर छायावादी कवि सुर्यकांत त्रिपाठी निराला की विधवा कविता स्मरण हो आती है।

"इस इष्ट देव के मंदिर की पूजासी
वह दीप शिखा सी शान्त भाव में लीन
वह क्रूर काल तांडव की स्मृति रेखासी
वह टूटे तरु की छूटी लता सी दीन
यह दलित भारत की विधवा है।"

विधवा भवानी अपने जीवन तपस्या में लिन है चारो और से उसका छल हो रहा है। लेखक ने कहा है भवानी कटे रुख की तरह गिरी थी और उसके चारो और फैला हुआ सून सान उसे निगल रहा था। बहु भवानी को ससूर गालिया देता था मारता था वह घर की खराब हालत देख रही थी बडबडाते कोदई के निकम्मेपन को।

लेखक अपने गाँव पाँच साल में एकही बार जाते थे। उनके बचपन का साथी नरेश अब इस दुनिया में नही है। नरेश की पत्नी विधवा भवानी अपने निकम्मे ससूर और दो छोटे बच्चो का सहारा बनती है। जवान विधवा अपनी मेहनत की कमाई पर जी रही वह किसी के आगे झकती नही है। गाँववालो को यह बात हजम नही होती।

एक दिन ससूर बाढ में बह गया और उसी बाढ में नरेशद्वारा बनवाए आधे मकान की दीवारे टूट-टूटकर डहने लगी बच्चा और बच्चो की लिए खडी भवानी चारो ओर गुजरती सिमाहीन बाढ उपर खुले आकाश से टुटता हुआ मेघ दिशाओं की ओर ताकती भवानी दीवारे टूट कर गिर रही थी। भवानी बच्चो को लिए सब देख रही थी घूँघट उठाए हुये। भवानी बहादर स्त्री है वह पति और ससूर के मरने पर घर में रोते हुये नही बैठती खेत में कुआर की इस चिलचिलाती धूप मर्दो को मात करती हुई फावडा चला रही थी। उसके काम को देखकर लेखकने कहा है "भवानी कुदाली चलाती रही और हँस हँस कर बाते करती रही। वह जमीन की परते तोड रही है ..... ब्राम्हण अभिज्यात्य की जमी हुई सतेह तोड रही है नेय बीज उगाने के लिए।"विधवा ब्राम्हण भवानी घर के दरिद्रता का त्याग कर खेत की लक्ष्मी बनगई थी पुरुष को भी मात दे रही थी। भारतीय संस्कृति में मनुष्य के जन्मसे लेकर मृत्यू तक पूजा पाठ के संस्कार परम्पराएँ है। मृतक की आत्मा को शांति मिले इस हेतू माघ की आमावस्या के समय गाँव की बडी बूढियों ने भवानी से कहा।" भवानी बहू चलो तिरबेनी नहा आएँ पति और ससूर का फूला भी छोडती आना।" भवानी ने अपने खेत को ही तीरथ कहा था उसी के शब्दो में- " नही काकीजी मेरे लिए तो ये खेत ही तीरथ-बरत है इन्हे छोडकर कहाँ जाऊं और मैने फूला तो सेंवती नदी में ही छोड दिया है यही अपनी माँ है।"

भवानी में हिम्मत गजब की है वह रीति परम्पराओ को तोड रही है। ऐसी गलत परम्पराओं को मानती नही।

विधवा के जीवन में तो सिर्फ काम करना ही उसका तीरथ वृत होता है।खेती ही उसका एक मात्र जीवन जीने का सहारा है। नदी उसकी माता है। धरती मां को छोडकर अन्य तीरथ वृत करने की से जरुरत नही लगती। उसके पति को मरे हुये छ: माह भी पूरे नही हुये थे। ससूर की तेरही होते ही यह घर से निकल पडी थी। गाँव की बूढियों ने समझाया उसी का कथन उदधृत है।

" बहू अभ तुम्हे शोभा नही देता इस तरह घूम-घूमकर काम करना। अभी नरेश को मरे कितने महीने हुए है और और कोदई को मरे कितने दिन हुए है। अरे कुछ पूजा-पाठ में मन लगाओं उनकी आत्मा को शांति मिलेगी।" भवानी ने बडा रुखा सा उतर दिया था। उसी का कथन दृष्टयव्य है-"हाँ ठीक कहती हो काकीजी। मैं पूजा-पाठ में मन लगाऊं और गाँववाले मेरी खेती बारी में मन लगावे और एक दिन पूजा से जागकर पाँऊ कि मेरे सारे खेत पट्टीदारों के नाम हो गए है और मैं अपने दोंनो बच्चो को लिए भिखारिन सी रास्ते पर खडी रहूँ उससे उसकी आत्मा को शांती मिलेगी ना।" गाँव की बुढी औरतो ने कहा अरे कौन समझावे इस बहुरिया को इसकी मति तो उलटी हो गई है। भवानी ने अपना घूँघट क्या उलट दिया मानो सारे गाँव का घूँघट उलटगया।

विधवा भवानी सुबह से शाम तक फिरकी की तरह नाचती रहती घर का काम दुआर बोहरना गाय को सानी पानी करना गोबर सिर पर उठा-उठाकार खेत में फेंकना समय बचाकर चर्खा कातना चर्खा ही तो उसकी जीविका का आधार बन गाया था। मानो सारे गाँव को चुनौती दे दी हो।"भवानी फागुन में फाग गीत गाते हुये अपनी खेत का काम करती थी। यह देखकर गाँव की बुढिया कहती- "हाय दइया इस बहुरिया को क्या हो गया है बिलकूल अपर बेल हो गई है मरद को मरे साल भी पूरा नही हुआ और यह घूम-घूमकर फागुआ गा रही है।"

गाँव का सुकुमार विधवा भवानी की दयनीय अवस्था को लेखक के सामने प्रस्तुत करता है- भवानी के हिस्से दो बीघे जमीन वो भी कई टुकडों में बटी हुई थी। ऐसी जमीन मे बीज बोना आवश्यक था। बाढ हट गई थी। खेत बोने का समय आ गया था। भवानी के पास कहाँ न बैल थे न हलवाह न बीज किसी के पास कहाँ इतनी अवकात कि कवार कार्तिक में किसी की सहायता करे। एक दिन गाँव का धनपति भवानी का खेत जोत कर बो दिया था। धनपति असहाय भवानी की

सहायता करके उस पर अपना अधिकार जमाना चाहता था। धनपति एक दिन आधी रात को भवानी के यहाँ जोर जबरदस्ती करता है। असहाय विधवा धनपतिया को काटती है और अपने को दारिद्री धनपति के बाहुपाश से मुक्त करती है। भवानी धनपतिया की करतूतो को कैसे गाववालो को बताती गाँव के लोग तो यही कहते भवानी का पति नही है इसके ही नियत में खोट है। असहाय भवानी इस घटना का कडूवा घूँट खामोशी से पि लेती है।

मुझे यहाँ वेदव्यास महाभारत आदि पर्व में विधवा के लिए कहा गया संदर्भ बताना आवश्यक लगता है।

उत्सृमामिष भूमौ प्रार्थयन्ति व्यथा खगा: पार्थ यन्ति जन: सर्वे पति हीना तथा स्त्रियम।" अर्थात : जैसे पक्षी पृथ्वीपर डाले हुए मास के टुकडे को लेने के लिए झपडते है, उसी प्रकार सब लोग विधवा स्त्री को वंश करना चाहते है। विधवा भवानी के मेहनत से फसल उच्छी आई थी उसे घर पर लाना बाकी था। धनपतिया फसल का हिस्सा माँगने आ जाता है। आधा हिस्सा देने से भवानी ने इन्कार किया। दूसरे ही दिन धनपतिने भवानी की फसल को आग लगा दी थी। गाँववाले भवानी का साथ नही देते। न्याय माँगने के लिए बेचारी कहा कहां दौडी थी। पंचायत की न्यायमूर्ती के पास गई पर कीसीने उसे न्याय नही दिया। सभी ने कहा धनपति के लोगो ने आग लगाते हुये किसी ने नही देखा। गाँववाले भी उसका साथ नही देते।

बरस पर बरस बीत गए उसे ऐसे ही जूझते अभावो से कुरुपताओं से अंधकारों से उपवास पर उपवास किए बाधाओं पर बाधाएँ पी लेकिन किसी के सामने झुकी नही। अपार जीवट पाया है इस औरत ने अपने कोले के अमरुदों जमिनों नीबुओं को ले जाकर बाजार में बेचने लगी तो लोग झल्लाए " गाँव की नाक कट रही है ब्राम्हण की औरत का कुंजडिन की तरह बाजार में बैठना बडा ही खराब है।"इस पर भवानीने बडा ही करारा जवाब दिया - और बूढी हाँडी में मूँह डालते घूमना खलिहान फूँक देना बैल चुरा लेना, अच्छा काम है? ब्राम्हण का काम है।

वह दूसरे ही दिन कलवाले खेत में अपने अपने लडके के साथ हेंगा खीच रही थी और लडकी हेंगे पर चढी हुई थी इस दृश्य को देखकर लेखकने कहा है- " मैने कल्पना नही की थी कि स्वतंत्र भारत में एक औरत बैल की तरह हल हेंगा खीच सकती है।"

रामदरश मिश्र ने भारतीय विधवा की दयनिय पीडा उसका संघर्ष जीवन जीने की समस्याओं को स्पष्ट किया है। शहर में पढी लिखी विधवा का जीवन इतनी यातनाओ से नही गुजरता होगा। किन्तु गाँव की विधवा आज भी एक औरत एक जिंदगी की भवानी की तरह बीहड मार्ग से अपना जीवन व्यथीत करती है।

निष्कर्ष :-"एक और एक जिंदगी" की विधवा भवानी के लिए कवि निराला की कविता स्मरण होती है। " दीप शिखा की लौ के समान शांत भाव में लीन क्रूर काल के तांडव नृत्य की स्मृतिरेखा टूटे हुये तरु की लता के समान दीन व निस्साय होतीं है। वह षडत्रऋतुओं के श्रृंगार से अछूती रहती है। और दुनिया की नजरो से बचाकर चुपचाप रुदन करती रहती है। समाज में कोई उसेके रुदन से प्रभावित नही होता केवल धौर्यवान आकाश स्थिर समीर और सरिता की लहरे ही उसका विलाप सुनती है। लेखक ने भारतीय विधवा की संघर्ष गाथा को चित्रित किया हैं।

****

संदर्भ ग्रंथ :-

१) कामकाजी महिलाओं की कहानियाँ - ज्ञान राजेंद्र, प्रकाशक प्रभात चावडी बाजार दिल्ली
२) रामदरश मिश्र की १० प्रतिनिधी कहानीया- कमल प्रकाशन दिल्ली
३) भारतीय साहित्यकोश - महादेव शास्त्री
४) विधवा - सुर्यकांत त्रिपाठी निराला
५) एक औरत एक जिंदगी - रामदरश मिश्र पृ ४६,४७,५२,५४
६) साहित्य कुंज अंतरजाल

Social stigma and questions of mental health of transgender individuals in India

Dr.Disent Kumar Sahu
Assistant Professor
Pt. Ravishankar Shukla university, Raipur (C.G.)

Dr. Ravindra Kumar
Independent Research-er
ravindrashreevp@gmail.com

Abstract -In India, transgender individuals have always been on the margins. However, the public and scholarly discourse has been impacted by the growing worry about their identity and mental health issues. The transgender community faces a variety of physical health and mental problems in addition to the long-standing discrimination and stigma attached to them. Historically, among all the LGTBIQ+ populations in India, the most stigma, prejudice, and marginalisation have been experienced by persons with diverse sexual orientations and gender identities. Individuals who identify as transgender, intersex, or queer face significant health consequences due to being denied access to healthcare, fundamental rights, bodily autonomy, and self-dignity.

Furthermore, transgender people's poor mental health and social marginalisation are caused by both internal and external pressures, a lack of health infrastructure, and other factors. The aim of this article is to describe how the absence of healthcare and societal stigma affect transgender people inside. This review study aims to highlight the issues surrounding the external and internal stigma and mental health status of transgender individuals in India.

Keywords: Transgender, Social Stigma, Internal Stigma, Mental Health

Introduction-Gender-varied men and transgender people with a variety of South Asian identities, such as hijras and kothis, who are severely stigmatised in Indian society, can be found in India. Although probably an underestimate, 488,000 of India's 1.25 billion citizens were believed to be transgender in 2011 (Thompson et al., 2019). Given that transgender people in India are known to be a heterogeneous group. Many indigenous gender-diverse identities, such as thirunangai, shiv-shakthi, or mangalmukhi in South India, and hijras or kinnars in North India, are associated with transfeminine individuals. Transfeminine individuals who identify as Hijras form a visible subculture with a sophisticated hierarchical social structure that includes Chelas, or disciples, and senior Hijras known as Gurus. The primary sources of income for Hijras are sex work, mangti (begging from people or merchants), and doli-badhai

(offering blessings or singing, dancing, and drumming in ceremonies)—all of which require face-to-face contact (Chakrapani et al., 2022).

The transgender community experiences many mental and physical health issues in addition to long-standing stigma and discrimination. Some signs of a transgender personality can be seen in childhood, and they tend to manifest before puberty (Pemde et al., 2023). In order to provide a definition of mental health, the World Health Organization (WHO) outlines mental health as a condition of mental well-being that permits individuals to manage life's stressors, develop their potential for study and work effectively, and give back to their communities. It is a vital aspect of health and well-being that supports our capacity as individuals and as a society to make choices, form bonds with one another, and influence the world we live in. A fundamental human right is mental health.

Furthermore, it is essential for socioeconomic, communal, and personal growth (WHO, 2022). Regretfully, transgender people in India frequently have serious mental health difficulties. Some of these difficulties include social stigma, discrimination, and limited access to quality healthcare services (Connolly et al., 2016; McCann & Sharek, 2016). These difficulties may have a significant adverse effect on transgender people's mental health, increasing their risk of depression and anxiety. Furthermore, these mental health problems may be exacerbated by the intersectionality of being transgender and membership in other oppressed groups, such as low-income neighbourhoods or ethnic minorities.

Social Stigma, Discrimination, and Marginalisation

Among all the LGTBIQ+ populations in India, those with a diversity of sexual orientations and gender individualities have historically faced the most significant amount of stigma, discrimination, and marginalisation. People who recognise as transgender, intersex, or queer are denied access to healthcare, fundamental rights, physical autonomy, and self-dignity, which has a substantial detrimental impact on their health (Bhattacharya & Ghosh, 2020). Gender-diverse identities have been present in India for thousands of years. Hinduism does not prohibit them, but hijra and kothi identities are stigmatised and marginalised as a result of the overall intolerance shown by Indian society toward persons who do not conform to heteronormative identities.

People who identify as gender non-conforming have generally been found to be more vulnerable to mental health problems as a result of ongoing exposure to violence, prejudice, stigma, and psychological anguish. According to reports, sexual minority communities in India lack social support, which could worsen the negative impacts of violence, discrimination, and stigma on mental health (Thompson et al., 2019).According to Meyer's Minority Stress Theory (1995), people who belong to marginalised minority groups experience ongoing psychological stress because of the widespread stigma, discrimination, and prejudice in their social settings. There is proof that stress exposure is linked to encounters with prejudice; however, specific subgroups—like ethnic minorities—may be disproportionately impacted, and societal norms frequently shape coping mechanisms. Members of marginalised minority groups can obtain group-level coping resources, such as social spaces with affirmative values and standards and the validation and reappraisal of stressful experiences and feelings, by identifying with and engaging in their communities (Mayer et al., 2008).

According to the concept, there is a direct and indirect relationship between four forms of external stresses (discrimination, rejection, victimisation, and gender non-affirmation) and poorer mental health outcomes (internalised or self-stigma, expected stigma, and concealment). It is hypothesised that resilience factors specific to minorities, such as pride and community connectedness, moderate the effects of internal and external stressors. According to Chakrapani et al. (2021), resilience is a multifaceted notion with sources found at the individual, interpersonal, and community levels. Since we observed in our society in day-to-day life, if we see through the external stressors to identify the root causes for mental stress in transgender individuals are explained below;

Discrimination: Transgender people regularly experience bias in the workplace, in the house, in the healthcare system, and in the educational system. Discrimination can manifest itself in a variety of ways, including being passed over for jobs, being harassed or violently attacked in public places, or receiving rejection from peers and family. The ability of transgender people to fully engage in society is restricted by systematic prejudice, which prolongs social isolation and breeds feelings of alienation and low self-esteem (Bradford et al., 2013; Granberg et al., 2020).

Rejection: Many transgender people frequently encounter rejection from friends, family, and neighbours. Particularly when it comes to family rejection, there can be severe emotional and psychological fallout, including depressive, lonely, and abandoned sentiments. In addition to causing social isolation and a lack of support systems, rejection from close ones can also make it difficult for transgender people to deal with any difficulties they

may encounter (Rood et al., 2016; Pariseau et al., 2019).

Victimisation: People who identify as transgender are more likely to become victims of abuse, including verbal, physical, and sexual abuse. Hate crimes against transgender persons are startlingly widespread and are frequently motivated by stigma and discrimination. In addition to causing physical pain, victimisation creates trauma and dread, which can result in anxiety, PTSD, and other mental health issues. The fear of being victimised can also lead to avoidance and hypervigilance behaviours, which make it harder for transgender people to go about their daily lives (Goldblum et al., 2012; Zeluf et al., 2018).

Gender non-affirmation: When people's gender identities are not accepted or acknowledged by others, it is known as gender non-affirmation and can cause feelings of invalidation and distress. Gender non-affirmation can occur in a variety of contexts for transgender people, such as the medical field, the classroom, and legal paperwork. For instance, receiving care that is not gender-affirming or being misgendered by medical professionals might worsen dysphoria symptoms and jeopardise mental health. Comparably, encountering legal obstacles when attempting to change one's name or gender marker can exacerbate feelings of marginalisation and invisibility (Fontanari et al., 2020).

Transgender people must negotiate a challenging terrain of cultural attitudes and expectations. They frequently have to deal with various forms of stigma that have a significant negative influence on their lives. These include internalised or self-stigma, anticipated stigma, or the expectation of rejection or prejudice, and concealing behaviour. Every one of these elements works in concert to weave a web of difficulties that affect mental health, self -worth, and general well-being. Understanding the interplay of these forms of stigma is crucial for developing effective interventions and support systems for transgender individuals, which are explained below;

Internalised self-stigma: When transgender people internalise harmful cultural assumptions and stereotypes about their identities, it can lead to internalised or self-stigma. This procedure may result in emotions such as guilt, self-loathing, and a belief that one is inherently defective. Studies have indicated a robust correlation between internalised stigma and unfavourable mental health consequences, such as anxiety and depression. Overcoming internalised stigma is a significant obstacle to self-acceptance and authenticity for many transgender people (Austin & Goodman, 2017; Reyes et al., 2016).

Anticipated stigma: The expectation or dread of facing violence, rejection, or prejudice because of one's transgender status is known as anticipated stigma. Transgender people may experience persistent anxiety, avoidance behaviours, and hypervigilance due to their ongoing anticipation of stigma in a variety of social circumstances. Research has indicated that elevated levels of expected stigma are linked to heightened psychological suffering and diminished life quality. The widespread fear of prejudice can significantly negatively influence day-to-day activities and reduce chances for social and professional success (Rendina et al., 2020).

Concealment: To prevent stigma and discrimination, transgender identity concealment refers to hiding or repressing one's identity. Many transgender people use concealment techniques, like posing as the sex they were assigned at birth or not revealing their gender identity at all. Although hiding may offer a brief respite from stigma, it frequently harms one's well-being and mental health. Studies have demonstrated a correlation between concealment and heightened sensations of anxiety, despair, and a sense of inauthenticity (Rood et al., 2017; Carvalho et al., 2022).

Interplay and impact: For transgender people, the combination of internalised or self-stigma, anticipated stigma, and concealment produces a complicated environment. Anxiety and distress may increase as a result of internalised stigma, which may serve to reinforce expectations of discrimination. People may hide their genuine identities out of fear of stigmatisation, which exacerbates feelings of loneliness and humiliation. The cycle of stigmatisation can have a significant impact on one's quality of life generally, mental health, and self-esteem (Thaker et al., 2018).

For transgender people, internalised or self-stigma, expected stigma, and concealment pose severe obstacles to their well-being. All-encompassing plans that question social norms, encourage acceptance and offer strong support are needed to overcome these obstacles. Given the connection between these stigmas, interventions need to focus on changing society's perceptions and enabling transgender people to live true to who they are. By tackling the fundamental causes of stigma and promoting a welcoming society, we can create a welcoming atmosphere where transgender people can thrive without worrying about prejudice. The study conducted by Jaqueline et al. (2020) investigates how various levels of stigma, discrimination, violence, and social isolation impact transgender women's quality of life in India. Transgender women report experiencing deep-rooted discrimination and social exclusion; these issues should be addressed through gender- and culture-sensitive strategies. There is also an immediate need for

more social assistance initiatives, improved access to jobs and education, and employment prospects. Prioritising the provision of evidence-based mental health interventions is imperative in addressing the elevated rate of suicidality among transgender women.

Lacking Health Care System -Although there has been some progress in creating a supportive legal and policy framework in India for individuals who identify as lesbian, gay, bisexual, transgender, and queer (LGBTQI+), there are still significant gaps in the available data regarding the health of this population (Chakrapani et al., 2023).

The health sector offers a wide range of services that are uncomfortable and unpleasant, from routine checkups and mental health information to sophisticated hormone therapy and sex-reassignment operations (SRS) for LGBTIQ+ patients. The numerous factors that lead to poor health outcomes in these communities include unequal access to healthcare, perceived and actual instances of discrimination by hospital staff (Lombardi, 2001), a shortage of doctors qualified to treat LGBTIQ+ patients, and a dearth of information about their particular health concerns (Bhattacharya & Ghosh, 2020). Many transgender people in India frequently lack access to or cannot afford gender-affirming therapies, including hormone therapy and surgery. Long waiting lists and administrative roadblocks can make it difficult to receive care, even in cases when these therapies are available, which exacerbates gender dysphoria and mental health problems (Shaikh et al., 2016; Pandya & Redcay, 2021).

Before COVID-19, transgender women had obstacles while trying to obtain HIV/STI testing, treatment, and gender-affirming care in public hospitals.12–14 This problem has been made worse by the COVID-19 lockout. HIV prevention initiatives, which are mostly carried out by community-based organisations (CBOs) and non-governmental organisations (NGOs) with backing from India's National AIDS Control Organization (NACO), rely almost entirely on in-person outreach. Lockdown procedures have also resulted in the closure or interruption of HIV testing, clinical, and counselling services for HIV, as well as sexual health, in NGO/CBO clinics. A mental health impact is also possible due to the elevated risk of COVID-19, difficulties maintaining a livelihood, uncertainty, and anxiety surrounding the pandemic due to pre-existing social exclusion and prejudice (Raghuram et al., 2023).

While more and more community organisations and independent healthcare providers who are accepting of transgender patients are providing mental health counselling online, their reach is still very small. Hijras and numerous other transfeminine subgroups have limited Internet access, are not tech-savvy, and are disproportionately illiterate (Chakrapani et al., 2022).

Media accounts also show that young trans people who unintentionally or voluntarily disclosed their gender identity under lockdown faced abuse and harassment from family members, as well as limited access to peer support, safer housing options, and legal assistance.

Way Forward-Transgender people experience a hostile environment as a result of discrimination, rejection, victimisation, and gender non-affirmation combined, which feeds the cycle of marginalisation and oppression. It will need coordinated action to confront societal norms, pass anti-discrimination legislation, offer healthcare that is sensitive to cultural differences, and advance transgender identity education and awareness to address these systemic problems. Improving transgender people's lives and making sure they have equal opportunities to thrive requires a more accepting and supportive culture. A comprehensive strategy that acknowledges the connections between internalised or self-stigma, anticipated stigma, and concealment is necessary to address the complex nature of stigma in the lives of transgender people. In addition to addressing underlying cultural attitudes, interventions aimed at eliminating stigma must offer transgender people the support and tools they need to live genuine lives free from discrimination. We can establish a more welcoming and encouraging atmosphere that will enable transgender people to flourish by addressing stigma at its source and encouraging acceptance and affirmation. Their health may be enhanced by recent legal changes, including the repeal of Section 377 of the Indian Penal Code, which forbade same-sex relationships, and the modifications made to the Transgender Persons (Protection of Rights) Bill.

****

References-

1. Austin, A., & Goodman, R. (2017). The impact of social connectedness and internalised transphobic stigma on self-esteem among transgender and gender non-conforming adults. Journal of homosexuality, 64(6), 825-841.
2. Bhattacharya, S., & Ghosh, D. (2020). Studying physical and mental health status among Hijra, Kothi and Transgender community in Kolkata, India. Social Science & Medicine (1982), 265, 113412. https://doi.org/10.1016/j.socscimed.2020.113412
3. Bradford, J., Reisner, S. L., Honnold, J. A., & Xavier, J. (2013). Experiences of transgender-related discrimination and implications for health: results from the Virginia Transgender Health Initiative Study. American journal of public health, 103(10), 1820-1829.
4. Chakrapani, V., Newman, P. A., Sebastian, A., Rawat, S., Shunmugam, M., & Sellamuthu, P. (2022). The Impact of COVID-19 on Economic Well-being and Health Outcomes Among Transgender Women in India. Transgender Health, 7(5), 381–384. https://doi.org/10.1089/trgh.2020.0131
5. Chakrapani, V., Newman, P. A., Shunmugam, M., Rawat, S., Mohan, B. R., Baruah, D., & Tepjan, S. (2023). A scoping review of lesbian,

gay, bisexual, transgender, queer, and intersex (LGBTQI+) people's health in India. PLOS Global Public Health, 3(4), e0001362. https://doi.org/10.1371/journal.pgph.0001362

6..Chakrapani, V., Scheim, A. I., Newman, P. A., Shunmugam, M., Rawat, S., Baruah, D., Bhatter, A., Nelson, R., Jaya, A., & Kaur, M. (2022). Affirming and negotiating gender in family and social spaces: Stigma, mental health and resilience among transmasculine people in India. Culture, Health & Sexuality, 24(7), 951–967. https://doi.org/10.1080/13691058.2021.1901991

7.Connolly, M. D., Zervos, M. J., Barone II, C. J., Johnson, C. C., & Joseph, C. L. (2016). The mental health of transgender youth: Advances in understanding. Journal of Adolescent Health, 59(5), 489-495.

8.Carvalho, S. A., Carvalho, F., Fonseca, L., Santos, G., & Castilho, P. (2022). Beyond the centrality of shame: How self-concealment and fear of receiving compassion from others impact psychological suffering in transgender adults. Journal of homosexuality, 1-19.

9.Fontanari, A. M. V., Vilanova, F., Schneider, M. A., Chinazzo, I., Soll, B. M., Schwarz, K., ... & Brandelli Costa, A. (2020). Gender affirmation is associated with transgender and gender nonbinary youth mental health improvement. LGBT health, 7(5), 237-247.

10.Granberg, M., Andersson, P. A., & Ahmed, A. (2020). Hiring discrimination against transgender people: Evidence from a field experiment. Labour Economics, 65, 101860.

11.Goldblum, P., Testa, R. J., Pflum, S., Hendricks, M. L., Bradford, J., & Bongar, B. (2012). The relationship between gender-based victimisation and suicide attempts in transgender people. Professional Psychology: Research and Practice, 43(5), 468.

12.Gomes de Jesus, J., Belden, C. M., Huynh, H. V., Malta, M., LeGrand, S., Kaza, V. G. K., & Whetten, K. (2020). Mental health and challenges of transgender women: A qualitative study in Brazil and India. International Journal of Transgender Health, 21(4), 418–430. https://doi.org/10.1080/26895269.2020.1761923

13.McCann, E., & Sharek, D. (2016). Mental health needs of people who identify as transgender: A review of the literature. Archives of psychiatric nursing, 30(2), 280-285.

14.Meyer, I. H. (1995). Minority stress and mental health in gay men. Journal of health and social behavior, 38-56.

15.Meyer, I. H., Schwartz, S., & Frost, D. M. (2008). Social patterning of stress and coping: does disadvantaged social statuses confer more stress and fewer coping resources?. Social science & medicine, 67(3), 368-379.

16.Pandya, A. K., & Redcay, A. (2021). Access to health services: Barriers faced by the transgender population in India. Journal of Gay & Lesbian Mental Health, 25(2), 132-154.

17.Pariseau, E. M., Chevalier, L., Long, K. A., Clapham, R., Edwards-Leeper, L., & Tishelman, A. C. (2019). The relationship between family acceptance-rejection and transgender youth psychosocial functioning. Clinical Practice in Pediatric Psychology, 7(3), 267.

18.Pemde, H. K., Bansal, U., Bhattacharya, P., Sharma, R. N., Kumar, S., Bhatia, P., Niranjan, S., Dhonde, S., & Garg, J. C. (2023). Adolescent Health Academy Statement on the Care of Transgender Children, Adolescents, and Youth. Indian Pediatrics, 60(10), 843–854.

19.Raghuram, H., Parakh, S., Chidambaranathan, S., Tugnawat, D., Pillai, V., Singh, S., Singh, S., Shaikh, A., & Bhan, A. (2023). Impact of the COVID-19 pandemic on the mental health of transgender persons in India: Findings from an exploratory qualitative study. Frontiers in Global Women's Health, 4, 1126946. https://doi.org/10.3389/fgwh.2023.1126946

20.Rood, B. A., Maroney, M. R., Puckett, J. A., Berman, A. K., Reisner, S. L., & Pantalone, D. W. (2017). Identity concealment in transgender adults: A qualitative assessment of minority stress and gender affirmation. American Journal of Orthopsychiatry, 87(6), 704.

21.Rood, B. A., Reisner, S. L., Surace, F. I., Puckett, J. A., Maroney, M. R., & Pantalone, D. W. (2016). Expecting rejection: Understanding the minority stress experiences of transgender and gender-nonconforming individuals. Transgender health, 1(1), 151-164.

22.Rendina, H. J., Cain, D. N., López-Matos, J., Ray, M., Gurung, S., & Parsons, J. T. (2020). Measuring experiences of minority stress for transgender women: Adaptation and evaluation of internalised and anticipated transgender stigma scales. Transgender health, 5(1), 42-49.

23.Reyes, M. E. S., Alcantara, A. R. E., Reyes, A. C. C., Yulo, P. A. L., & Santos, C. I. P. (2016). Exploring the link between internalised stigma and self-concept clarity among Filipino transgenders. North American Journal of Psychology, 18(2).

24.Shaikh, S., Mburu, G., Arumugam, V., Mattipalli, N., Aher, A., Mehta, S., & Robertson, J. (2016). Empowering communities and strengthening systems to improve transgender health: outcomes from the Pehchan programme in India. Journal of the International AIDS Society, 19, 20809.

25.Thaker, J., Dutta, M., Nair, V., & Rao, V. P. (2018). The interplay between stigma, collective efficacy, and advocacy communication among men who have sex with men and transgender females. Journal of health communication, 23(7), 614-623.

26.WHO. (2022). Mental health. World Health Organization. Retrieved on March 31, 2024, from https://www.who.int/news-room/fact-sheets/detail/mental-health-strengthening-our-response#:~:text=Mental%20health%20is%20a%20state,and%20contribute%20to%20their%20community.

27.Zeluf, G., Dhejne, C., Orre, C., Mannheimer, L. N., Deogan, C., Höijer, J., ... & Thorson, A. E. (2018). Targeted victimisation and suicidality among trans people: A web-based survey. LGBT health, 5(3), 180-190.

****

भक्ति जागरण में निर्गुण काव्य के प्रवर्तक-संत नामदेव

डॉ. राजकुमार उपाध्याय 'मणि'
@ एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
पंजाब केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बठिंडा (पंजाब)

भारत में भक्ति का प्रमुख अवदान मराठी संतों द्वारा विशेष उल्लेखनीय है। जहां संतों ने सगुण-निर्गुण की भक्ति धारा प्रवाहित की थी। महाराष्ट्र की भक्ति का सूत्रपात आचार्य पुण्डरीक से मनाना चाहिए क्योंकि महाराष्ट्र की भक्ति का केंद्र पंढरपुर को स्थापित करने वाले आचार्य पुण्डरीक हैं, जिन्होंने अपने माता-पिता की सेवा में लीन रहते हुए भगवान श्री हरि का दर्शन किया था और उन्हें श्रीकृष्ण के बाल रूप में ईंट पर विराजमान रहने के लिए कहा था। इसलिए ईंट पर विराजे हुए रूप के कारण इन्हें विठ्ठलनाथ की संज्ञा मिली थी। यही संत पुण्डरीक ने पंढरपुर में पांडुरंग की मूर्ति की स्थापना की थी, जिस बाल रूपी श्रीकृष्ण के सिर पर शिवलिंग प्रतिष्ठित है। यही पांडुरंग आगे चलकर विठ्ठल आराध्य माने गए।

कालान्तर में, महाराष्ट्र के इस पंढरपुर में कार्तिक एवं आषाढ़ की एकादशी के दिन विशाल महोत्सव होने लगा। तदुपरांत प्रदेश के भक्तों द्वारा असंख्य तीर्थ-यात्रा आरंभ हो गई। इन तीर्थ-यात्रियों को वारकरी की संज्ञा मिली। अतएव पंढरपुर के यात्री भक्तों को वारकरी संप्रदाय का भक्त कहा गया। इसके यात्री 'विठ्ठल विठ्ठल विठ्ठलनाथ। पुंडर पुंडर पुंडरनाथ' का संकीर्तन करते हुए शताब्दियों से वारकरी (यात्रा) करते हैं। यह पंढरपुर महाराष्ट्र का तीर्थ क्षेत्र उत्तर का काशी, मथुरा और अयोध्या की भांति भक्ति का प्रधान केंद्र है। जहां से वैष्णव भक्ति की सरिता महाराष्ट्र से प्रवाहित होकर देश के अन्य क्षेत्रों में भक्ति-संगम और सामाजिक समरसता का संदेश दिया है।

महाराष्ट्र की भक्ति में महानुभाव संप्रदाय का विशेष योगदान है क्योंकि बारहवीं शती में गुजरात के राजा त्रिबल्ल्भ देव के प्रधानमंत्री के पुत्र हरपाल देव को गृहस्थ-जीवन से वैराग्य हो जाने पर वे ऋद्धिपुर-विदर्भ, महाराष्ट्र चले आए। यहाँ कृष्णोपासक गुरु गोविन्द प्रभु से दीक्षा लेकर चक्रधर संत हो गये। इन्होंने बहुदेवोपासना में से कृष्ण को परमेश्वर मानकर अहिंसा, निःसंग, निवृत्ति, भक्ति को अपने पंथ का आचार-धर्म घोषित किया। कालान्तर में, इस पंथ में श्रीकृष्ण, दत्तात्रेय, चक्रपाणि, गोविन्द प्रभु, चक्रधर स्वामी को पंच-कृष्ण के रूप में मान्यता मिली और यही आराध्य माने गए। इस प्रकार से महाराष्ट्र की भक्ति में महानुभाव पंथ का प्रदेय सिद्ध हुआ।

मराठी संत परम्परा में महाराष्ट्र के ब्राह्मण-वर्गीय समाज की अपेक्षा मध्यवर्गीय समाज के अनेक संतों के साथ-साथ स्त्री-संतों की विशिष्ट भूमिका रही है। इस संत परम्परा में वारकरी संप्रदाय का प्रवर्तक ज्ञानेश्वर को माना गया है। डॉ. बलदेव वंशी ने इनके बारे में लिखा है- "संत ज्ञानेश्वर, जो ज्ञानदेव के नाम से भी विख्यात हैं, वारकरी संप्रदाय के प्रवर्तक थे। वारकरी का अर्थ होता है- यात्रा करनेवाला। वारी (यात्रा) करी (करनेवाला)। ज्ञानेश्वर सदा ही यात्रारत रहे। धार्मिक-यात्रा, विशेष रूप से वारकरी पंढरपुर में जाकर वर्ष में दो बार अपने इष्ट विठ्ठल की मूर्ति के दर्शन करते थे; किंतु ज्ञानेश्वर नाथ-मत में दीक्षित थे और आदिनाथ को अपना गुरु मानते थे।"[1]

भारत की समृद्ध संत परम्परा में महाराष्ट्र के प्रमुख पांच संतों को पंच-महापुरुष, पंच-भक्तगण या संत-पंचायतन भी कहा गया है। दर्जी-छीपा समाज से आने वाले संत नामदेव, भक्ति के ज्ञान-सागर की समुज्ज्वल-कीर्ति संत ज्ञानेश्वर, आध्यात्मिक भक्ति के शिखर-पुंज संत

एकनाथ, बिठोवा के विट्ठल की भक्ति के मूर्त-रूप तुकाराम और राष्ट्र-भक्ति में क्षात्र-जागरण के पुरस्कर्ता समर्थगुरु रामदास की संत-पंचायतन मराठी-भक्ति की अविरल-धारा कई शताब्दियों से प्रवहमान रही है। श्रीमती (डॉ.) रमेश सेठ ने 'महारष्ट्र की वैष्णव-भक्ति परम्परा और तुकाराम' में मराठी-भक्ति की धारा का छः सोपान बताया है-

(क) नाथ संप्रदाय (1100-1300 ई.)
(ख) महानुभाव संप्रदाय (1200-1375 ई.)
(ग) वारकरी संप्रदाय (1270-1790 ई.)
(घ) समर्थ संप्रदाय (1608-1750 ई.)
(ङ) पंडित काव्यधारा (1608-1800 ई.)
(च) आनंद संप्रदाय (1600-1730 ई.)[2]

महाराष्ट्र की इस भक्ति धारा को नामदेव, ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम, रामदास, निवृत्तिनाथ, सोपानदेव, सावता माली, विसोवा खेचर, नरहरि सुनार, बंका, भानुदास, राका महार, गोरा कुम्हार के साथ-साथ महदाइसा, मुक्ताबाई, जनाबाई, सोयराबाई, निर्मलाबाई, भागूबाई, बेणाबाई, कान्होपात्रा, प्रेमाबाई, बहिणाबाई, सखूबाई, बेइयाबाई, आऊबाई, लिम्बाई, लड़ाई आदि स्त्री-संतों की अपनी-अपनी पहचान एवं भक्ति का अप्रतिम अवदान है, जिन्होंने महाराष्ट्र में भक्ति जागरण के साथ -साथ सामाजिक क्रांति को भी जन्म दिया है।

मराठी वैष्णव भक्ति का केंद्र पंढरपुर होने से बिठोवा मंदिर के आराध्य देव पांडुरंग-विट्ठलनाथ की भक्ति की प्रधानता है, जिसमें 'रामकृष्ण हरि-पुंडर' के नाम स्मरण की महत्ता मानी गई है। यहां के भक्तों का मूल मंत्र 'ॐ वासुदेवाय नमः' होता है। वारकरी संप्रदाय की भक्ति का आधार ग्रंथ- 'ज्ञानेश्वरी (भगवद्गीता का मराठी भावार्थ), एकनाथी-भागवत (श्रीमद्भागवत पुराण का भावार्थ) और 'तुकाराम अभंगगाथा' का प्राधान्य है। इसे वारकरी संप्रदाय का प्रमाण-त्रयी भी कहा गया है। जैसे दर्शनशास्त्र एवं वैष्णव-भक्ति के प्राधान्य ग्रंथ प्रस्थान-त्रयी का 'ब्रह्मसूत्र' (वेदांत) श्रीमद्भागवत गीता और उपनिषदीय ग्रंथ हैं। वैसे ही मराठी भक्ति साहित्य में इन ग्रंथों की विशेष महत्ता है।

महाराष्ट्र की सम्यक भक्ति का विकास नामदेव से दिखाई देने लगता है, जिनका प्रदेय भक्ति की ज्ञानेश्वरी शाखा से मिलती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने संत नामदेव की भक्ति की साधना का प्रदेय इस रूप में रेखांकित किया है- "महाराष्ट्र के भक्तों में नामदेव का नाम सवसे पहले आता है। मराठी मापा के अभंगों के अतिरिक्त इनकी हिंदी रचनाएँ भी प्रचुर परिमाण में मिलती हैं। इन हिंदी रचनाओं में एक विशेष बात यह पायी जाती है कि कुछ तो सगुणोपासना से संबंध रखती हैं और कुछ निर्गुणोपासना से। ....नामदेव की रचनाओं में यह बात साफ दिखाई पड़ती है कि सगुण भक्ति पदों की भाषा तो ब्रज या परंपरागत काव्य भाषा है, पर 'निर्गुण बानी' की भाषा नाथपंथियों द्वारा गृहीत खड़ी बोली या सधुक्कड़ी भाषा। नामदेव की रचना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'निर्गुणपंथ' के लिए मार्ग निकालनेवाले नाथपंथ के योगी और भक्त नामदेव थे।"[3] अतः महाराष्ट्र की भक्ति का विकास नामदेव से ही समझना चाहिए। किन्तु, जन्म की दृष्टि से संत नामदेव से बीस वर्ष और संत ज्ञानदेव से पच्चीस वर्ष संत सावता माली ज्येष्ठ थे। इसी प्रकार नामदेव और ज्ञानेश्वर से ज्येष्ठ संत गोरा कुम्हार भी थे। संत नामदेव के बाद महारष्ट्र की श्रेष्ठ कवयित्री संत जनाबाई का नाम लिया जाता है। इनके बाद संत ज्ञानेश्वर का समय माना गया है।

किन्तु, भारतीय संत परम्परा में **14**वीं शताब्दी के संत नामदेव महाराष्ट्र के पंच-संत देवों में से एक हैं- नामदेव, ज्ञानदेव, एकनाथ, रामदास और तुकाराम। महाराष्ट्र में ही नामदेव नामक कुल छः संत पाये जाते हैं। उत्तर भारत में भागवत धर्म के प्रचारक एवं मराठी-हिन्दी के कवि संत नामदेव जिला परभनी-महाराष्ट्र के रहने वाले थे। जिनका काल खण्ड सन् **1270** से **1350** ई**0** माना जाता है। इनके पिता दामा सेठ (दया शेठ) माता गोणाई थी। सम्पूर्ण परिवार वैष्णव भक्त था। उनके घर में भगवान विट्ठलनाथ का विग्रह रहता था। पिता के स्वर्गवास हो जाने पर दूध पिलाने की जिम्मेदारी नामदेव को मिल गयी और अपनी भक्ति से विग्रहमूर्ति को नामदेव के हाथों दूध पीना पड़ गया। तब से नामदेव और भगवान विट्ठल में प्रगाढ़ता बढ़ गई। नामदेव की प्रसिद्धी सुनकर संत ज्ञानेश्वर पंढरपुर आये। ज्ञानेश्वर के आग्रह पर नामदेव इनके साथ तीर्थाटन पर निकल पड़े। भारतवर्ष का भ्रमण करने के उपरान्त नामदेव ने पंढरपुर लौटने पर विसोवा खेचर को अपना गुरू बनाया और पाण्डुरंग भावना की भक्ति में रम गये।

नामदेव ने भारत के पश्चिम महाराष्ट्र में जन्म लेकर अपनी कर्मभूमि उत्तर भारत को बनाया, क्योंकि उस समय उत्तर (पश्चिमोत्तर) भारत विदेशी मुस्लिम आक्रमणों और उनके अत्याचारों से पीड़ित था। ऐसे समय में शक्ति और भक्ति का नवोन्मेष पंजाब की धरती पर संत नामदेव के द्वारा किया गया। संत नामदेव एक क्रान्तिकारी महापुरुष थे, जिन्होंने तलवार और कुरान के सामने निरीह हिन्दुओं के लिए भक्ति के ढाल का प्रयोग किया। वे महाराष्ट्र के पंजाब में आकर अनेक क्षेत्रों में पीड़ित जनता को संत्रास से मुक्ति दिलाने के लिए भगवन्नाम का सहारा बने। **11**वीं शताब्दी में उत्तर भारत से पश्चिमोत्तर भारत तक आततायियों को अपनी संत-सेना, नागा साधुओं व नाथों के द्वारा भगाया गया था। ऐसे पूज्य संत गोरखनाथ के पथ का अनुसरण संत नामदेव ने किया।

महाराष्ट्रीय संत साहित्य के विद्वान-समीक्षकों ने संत नामदेव पर अपनी अनेक सम्मतियाँ प्रस्तुत की है। संत नामदेव की महत्ता को स्थापित करने वाले डॉ. विनयमोहन शर्मा की पुस्तक 'हिन्दी को मराठी संतों की देन' के बारे में प्रभाकर सदाशिव पण्डित ने लिखा है- "पंढरपुर स्थित महाराष्ट्र के परम आराध्य पाण्डुरंग अर्थात् श्री विट्ठल की महिमा को पंजाब में पहुँचाने वाले संत नामदेव की सरस हिन्दी रचनाओं के आधार पर आचार्य विनयमोहन शर्मा ने उत्तर भारत की संत परम्परा को प्रभावित करने वाले प्रथम संत के रूप में नामदेव जी को उद्घोषित करते हुए हिन्दी साहित्य में एक नये दृष्टिकोण का सूत्रपात किया।"[4]

संत नामदेव में भक्ति का विकास नाथ सम्प्रदाय से माना जाता है क्योंकि ज्ञानेश्वर की प्रेरणा से ही नामदेव पंजाब गये थे। संत ज्ञानेश्वर के पूर्व स्वामी मुकुन्दराज (**1128-96**) नाथ सम्प्रदाय के अनुयायी माने गये हैं, जिन्होंने 'विवेक सिन्धु' एवं 'परमामृत' नामक ग्रन्थों की रचना की है। इसलिए हम मान सकते हैं कि कबीर से पूर्व पश्चिमी भारत-महाराष्ट्र में संत नामदेव के द्वारा जिस निर्गुण भक्ति का प्रवर्तन माना जाता है, उसका सूत्रपात अद्वैतमूलक भक्ति प्रधान भागवत धर्म का प्रयास करने ताले स्वामी मुकुन्दराज और उनके शिष्यों के अतिरिक्त संत ज्ञानेश्वर की प्रेरणा से हुई। नाथ सम्प्रदाय का महाराष्ट्र में अधिक प्रभाव दिखाई देता है। जहाँ आदिनाथ-मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ-गहिनीनाथ- निवृत्तिनाथ-ज्ञाननाथ (ज्ञानेश्वर) एवं विसोवा खेचर के साथ-साथ मुकुन्दराज और उनके गुरु रघुनाथ, आदिगुरु हरिनाथ तक इसकी परम्परा दिखाई देती है।

भक्तिकाल की पीठिका के रूप में देखा जाय तो नाथ सम्प्रदाय की परम्परा लगभग पूरे भारत में विकसित दिखाई देती है। उत्तर भारत से चलकर नाथ सम्प्रदाय पश्चिम और दक्षिण तक विस्तारित हुआ। पूरब में असम अरुणाचल-प्रदेश तक फैला हुआ है। मान्यता स्वरूप उत्तर में कश्मीरी शैव दर्शन के विकसित रूप में नाथ सम्प्रदाय का

विस्तार हुआ है। गुरु के प्रति भक्ति-भावना एवं गुरु मार्ग नाथ-सम्प्रदाय की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है, जिसने निर्गुणी साधना की भक्ति को जन्म दिया। इसका प्रारम्भिक विकास संत नामदेव से पूर्व महाराष्ट्र में होता है। जिसे तेरहवीं शताब्दी में महानुभाव सम्प्रदाय के रूप में जाना गया। इस महानुभाव सम्प्रदाय को परममार्ग, भटमार्ग, महात्मा एवं जयकृष्णी भी कहा जाता है। संत नामदेव ने इसी जयकृष्णी भक्ति का प्रचार महाराष्ट्र से लेकर पंजाब और पश्चिमोत्तर काबुल तक पहुँचाया था। इसी भक्ति परम्परा में दक्षिण की आलवार भक्तिन अण्डाल की भाँति पश्चिम महाराष्ट्र की भक्तिन महदम्बा या महदायिसा थी, जिन्हें संत चक्रधर की शिष्या व मराठी काव्य की प्रथम कवयित्री भी माना जाता है। इसी प्ररम्परा में कृष्णमुनि नामक महानुभाव का उल्लेख मिलता है, जिन्होंने काबुल तक जयकृष्णी पंथ को विकसित करने में अमूल्य योगदान दिया है। इन्होंने अनेक रचनाओं की सर्जना की थी और विदेशी आक्रमणों से संत सर्जना को सुरक्षित बनाये रखने के लिए सकललिपि, सुन्दरीलिपि का आविष्कार किया था।

संत नामदेव एवं संत ज्ञानेश्वर के विषय में प्रभाकर सदाशिव पण्डित ने लिखा है, ''दोनों के मधुर मिलन से वारकरी सम्प्रदाय को परिपूर्णता प्राप्त हुई। यदि ज्ञानेश्वर का सत्संग प्राप्त न हुआ होता तो नामदेव की भक्ति पंढरपुर स्थित श्रीविट्ठल मूर्ति तक ही मर्यादित रह जाती और नामदेव का लाभ ज्ञानेश्वर को न मिलता तो उनका दर्शन केवल ग्रन्थों में ग्रथित रह जाता।''[5] इस प्रकार दोनों के प्रयास से वारकरी सम्प्रदाय विकसित हुआ। संत नामदेव की महत्ता को स्थापित करते हुए डॉ. मोहन सिंह ने 'भक्त शिरोमणि नामदेव की नई जीवनी-नई पदावली' में लिखा है कि महाराष्ट्र में यदि नामदेव न होते तो वहाँ तुकाराम न होते, न उत्तर प्रदेश में कबीर, न राजपूताने में दादू और न पंजाब में गरीबदास होते। किसी भी मध्ययुगीन रहस्यवादी पद में इतनी निर्भयता और मधुरता नहीं पायी जाती है, जितनी पेशे से दर्जी का काम करने वाले में पायी जाती है। वे प्रथम महापुरुष थे, जिन्होंने यह सिद्ध किया कि गुरु ही ईश्वर है और भक्त तथा भगवान एक ही है।'[6]

संत नामदेव का परिवार छीपा जाति का था, जिनका मुख्यकर्म सिलाई या दर्जी का काम था। इसीलिए नामदेव अपने को हीन एवं नीच जाति का मानते थे। माता-पिता अपने दर्जी के कार्य में लगाना चाहते थे, किन्तु नामदेव परम भागवत धर्म के साधक बन गये, जिनका जीवन राष्ट्रकार्य में समर्पित हो गया। वे सदैव उपने अभंग (भजन) को गाते हुए करताल एवं एकतारा बजा-बजा करके अपने गुरु संत बिसोवा के आदेश- **'दुनिया को भगवत् नाम से भर दो'** को सिद्ध करने में लगे थे। महाराष्ट्र संत नामदेव की जन्मभूमि थी, किन्तु पंजाब में अंतिम बीस वर्ष तक कर्मभूमि बना रहा, जहाँ उन्होंने 1350 ई. में अन्तिम साँस ली। पंजाब के उस घुमाण स्थान पर गुरुद्वारा बनवाया गया है। इनके पंजाबी क्षेत्र के अनुयाइयों को 'नामदेविया' नाम से सम्बोधित किया जाता है।

इनके जीवन में अनन्त अलौकिक कार्य हुए हैं, जो इतना किसी के लिए चमत्कारिक कार्य सम्भव नहीं है। हरिद्वार से रामेश्वर जाते समय मृतक गधे के मुँह में गंगाजल डालते गधे का उठना, श्री विट्ठलनाथ के विग्रह को दूध पिलाना, मृतक गाय को जिलाना, मंदिर का द्वार घूम जाना, कुत्ते की रोटी में घी लगाना आदि उनके जीवन की अनेक चमत्कारिक घटनाएँ हैं, जिसका उल्लेख क्रमशः नाभादास एवं गुरुदास ने अपने पदों में किया है-

बालदशा विट्ठल पानी जाके पय पीनी।
मृतक गऊ जिवाई परचौ असुरन को दीयो।।
x x x
कम्भ किते पिउ चल्लिआ नामदेव नो आख सिधाया।
ठाकुर दी सेवा करो दूध पीआवण कहि समझाया।।

कतिपय आलोचक यह विचार गढ़ते हैं कि ब्राह्मणवाद, कर्मकाण्ड, वाह्याडम्बर से ऊबकर नामदेव जी महाराष्ट्र छोड़कर पंजाब की ओर चले गये जो कि यह सत्य नहीं है। प्रभाकर सदाशिव 'पण्डित' ने इसका उल्लेख किया है,- ''अतः यह स्पष्ट है कि एकान्त साधना की अपेक्षा विशिष्ट हेतु सामने रखकर नामदेव जी मुस्लिम बादशाहों के नित्य आक्रमणों से अस्थिर पंजाब में न केवल पहुँचे, बल्कि वर्षों तक अथक भक्ति का प्रसार करते रहे और अपनी विशुद्ध निर्गुणोन्मुखी भक्तिधारा से गुरु नानकदेव के लिए अनुकूल भूमि तैयार की, जिससे विदेशी आक्रमणों को पचाने की शक्ति स्थानीय भूमिपुत्रों को प्राप्त हुई।''[7]

उत्तर भारत के गुरु गोरखनाथ, स्वामी रामानन्द की भाँति पश्चिम के नामदेव एवं उत्तर के गुरु नानक देव ने भारतीय हिन्दू समाज के लिए अनुपम त्याग किया, जिन्होंने मुस्लिम आततायिओं के प्रति मुखर विरोध का स्वर अपनाया तथा कड़ी चुनौती देते हुए भारतीय समाज में समरसता एवं समन्वयात्मकता की स्थापना की थी। संत नामदेव का पंजाब में गुरुनानक की भाँति अधिक सम्मान है। पंजाब में उनकी शिष्य परम्परा एवं सम्प्रदाय की विभिन्न शाखाएँ विद्यमान हैं, जिनके प्रमुख शिष्यों में बहोरदास, विष्णुस्वामी, जालो, लध्धा और केसो कलाधारी हैं। पंजाब के गुरुदासपुर जिले के घुमान ग्राम में देहरा साहब के नाम से 'गुरुद्वारा बाबा नामदेव जी' की स्थापना बहोरदास जी द्वारा की गई थी। इन शिष्यों की परम्परा में जनाबाई नामक मराठी दासी का नामोल्लेख मिलता है। नामदेव की अंतिम साँस पंढरपुर में छूटी थी, ऐसी भी मान्यता है, जिनके शोक में पूरा परिवार समाधि ले ली थी। बहू गर्भवती थी और इसने नामदेव के पुत्र गोंदा महाराज को जन्म दी थी। आषाढ़ शुक्ल एकादशी उनके प्रयाण की तिथि होने से आज भी कांकरी संतों का पंढरपुर में मेला लगता है।

संत नामदेव जी को महाराष्ट्र में भक्ति का अवतार माना जाता है। कबीर ने अपनी भक्ति नामदेव से अर्जित की थी। ज्ञानपंथ का भक्ति में द्वार खोलने वाले नामदेव थे। इसलिए कबीर नामदेव की श्रेष्ठता को स्वीकारते हुए, उन्हें गुरु-प्रसादी से सम्बोधित किया है-

रे मन पंछिया न परिसि पिंजरें, संसार माया जाल रे।
इक दिन में तीन फेरा, तो ही सदा सदा झपै काल रे।।
x x x
भनत नामदेव सुन्नु हो तिलोचन, घटि दया धम पालि रे।
पाहुना दिन च्यारि केरा, सुकृत राम संभारि रे।।

वे सामाजिक जातिवाद, ब्राह्मणवाद एवं परम्परावाद का विरोध भी करते दिखाई देते हैं-

पांडे मोहि पढ़ावहु हरी, विद्या अपनी राखउ धरी।
x x x
हम तुम पांडे कैसा बाद, रामनाम पढ़िहै प्रह्लाद।।

संत नामदेव जी सामाजिक-भेदभाव की नब्ज को पहचानते थे। इसलिए वे इसको समाप्त कर सामाजिक सद्भाव लाना चाहते थे। उनके एक पद में यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने जातिगत भेद-भाव के प्रभाव को समाप्त करने में अमिट योगदान किया-

का करो जाती का करौ पाती, राजाराम सेऊं दिनराती।
x x x
सुरति की सुई प्रेम का धागा, नामा का मन हरि सूँ लागा।।

मराठी भाषा में संत नामदेव के अनेक अभंग व पद प्राप्त होते हैं। उनकी श्रेष्ठता का परिचायक 'श्रीगुरुग्रन्थ साहब' में संगृहीत उनकी **63** रचनाएँ भी हैं। उन्होंने ब्रजमिश्रित भाषा में अनेक पदों की रचना की है, जो भारतीय साहित्य के लिए अक्षयनिधि है। इनकी भक्ति एवं योग साधना मध्यकालीन साहित्य एवं दर्शन में मणिकांचन संयोग बनाता है। महाराष्ट्र की धरती के संत -प्रभाकर का आलोक सम्पूर्ण धरती पर प्रकाशमान है। नामदेव के द्वारा मराठी साहित्य में **2373** अभंगों में से **103** पद हिन्दी भाषा में रचित हैं। कुछ विद्वान **230** पद एवं **13** साखियाँ हिन्दी में भी रचित मानते हैं।

****

सन्दर्भ सूची-

1.डॉ. बलदेव बंशी-भारत के महान संत पृ. 38
2.श्रीमती डॉ रमेश सेठ-महाराष्ट्र की वैष्णव-भक्ति परम्परा और तुकाराम, पृ. 21
3. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 65-67
4.डॉ. विनयमोहन शर्मा - हिन्दी को मराठी संतों की देन, पृ. 13
5. वही, पृ. 17
6. डॉ. मोहन सिंह- भक्त शिरोमणि नामदेव की नई जीवनी-नई पदावली-पृ. 24
7. डॉ. विनयमोहन शर्मा - हिन्दी को मराठी संतों की देन, पृ. 21

हिंदी की नवगीत परंपरा का वैशिष्ट्य

प्रो. चंद्रकांत सिंह
प्रोफेसर (हिंदी विभाग)
हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय,धर्मशाला
धौलाधार परिसर-एक, धर्मशाला,जिला-काँगड़ा
हि.प्र.- 176215 दूरभाष न.- 9805792455 एवं 8219939068

शोध-सार- हिंदी गीत-परम्परा का व्यवस्थित इतिहास रहा है, इसे सुदृढ़ आधार देने का कार्य हिंदी के प्रख्यात कवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला को जाता है | उन्होंने हिंदी के गीति-काव्य को व्यवस्थित रूप प्रदान किया | कालान्तर में उनके द्वारा प्रवर्तित इस काव्य-धारा में स्वतंत्रता के बाद महत्वपूर्ण बदलाव घटित हुए | इस काव्य-धारा ने लय, तुक एवं गेयता को बचाए रखने के साथ आम आदमी की पीड़ा एवं यंत्रणा को खुलकर अभिव्यक्ति देनी चाही | हिंदी की नवगीत परम्परा ने सामाजिक-राजनीतिक चिंता-दशा को भी गीत की शक्ल में ढालने का प्रयास किया | प्रस्तुत आलेख में हिंदी की इस नव-गीत परम्परा को समग्रता में देखने का प्रयास किया गया है | यही नहीं मानव-मन की बुनियादी छवियों को इस गीत-परंपरा ने आकुल रूप से उभारा है जिसे इस आलेख में देखने का प्रयास हुआ है |

बीज शब्द- प्रकृति, गाँव-शहर, लोक-संस्कृति, राग-रँग,उमंग-उछाह, टीस,व्यथा

गीतों में मानव-मन की कोमल अनुभूतियाँ रूपायित होती हैं | अपने राग और हर्ष के लिए मनुष्य ने गीत विधा को सर्वाधिक उपयोगी माना | इस विधा के माध्यम से रोमांस, मस्ती आह्लादकता एवं प्रकृति के प्रति लगाव का प्रकटीकरण हुआ | मनुष्य ने गीतों को सहचर के रूप में निजी सुख-दुःख का माध्यम बनाया, यही कारण है कि गीतों में विराट संवेदनात्मक भूमि का दर्शन होता है | कविता जहाँ तिक्त-कटु यथार्थ की संवाहिका बनी, वहीं गीत मानव-मन की आतंरिक अवस्थाओं के सूचक सिद्ध हुए | हालांकि बाद में गीतों में उत्तरोत्तर क्षीणता दिखती है और एक समय के बाद हिंदी जगत की महान परम्परा हाशिए पर चली गयी | किन्तु इतना अवश्य है कि गीतों की महान परंपरा को ध्वनि एवं शब्द-रूप देने में छायावाद की महती भूमिका रही | निसर्ग के प्रति आग्रह, भावनाओं की स्पर्शकारी भूमिका एवं एकान्तिक रूप-रचना आदि ने छायावाद को गीतों के लिए सर्वथा उपयोगी सिद्ध किया | प्रगीतात्मकता, लयात्मकता, संगीतात्मकता आदि ने छायावाद की कविताओं एवं गीतों दोनों को ही नव्यता प्रदान की | महादेवी, निराला, प्रसाद के गीतों में मनुष्य के प्रणय-राग के साथ जीवन का श्रृंगार अभिव्यक्त हुआ | इन गीतों में जीवन की छाप है, इन गीतों को जीवन-धर्मी गीत कह सकते हैं | निराला के गीतों में भावात्मक कोमलता के साथ धरती के प्रति गहरी आसक्ति है, इस कारण गीत धरती से कटे हुए नहीं हैं प्रत्युत कहीं गहरे जीवन-उत्सव की कथा जान पड़ते हैं | जीवन का ताप पूरेपन के साथ निराला के गीतों में निबद्ध हुआ है | आलोचकों ने निराला को खड़ी बोली की गीत परंपरा का जनक माना है | गीतों की रचना में भाव-संवेदना के निरूपण के साथ जिस गेयता एवं संगीतात्मकता की आवश्यकता पड़ती है, वह निराला के यहाँ व्यवस्थित जान पड़ती है | डॉ. रामविलास शर्मा जी निराला के गीतों के संदर्भ में स्पष्टतः कहते हैं कि- "खड़ी बोली में उच्चारण-संगीत के भीतर से जीवन की प्रतिष्ठा निराला के गीतों की यह विशेषता है |"

स्वयं निराला ने अपनी बातचीत में कई बार इस ओर उल्लिखित किया है कि उनके लिखे गीत ब्रजभाषा के कलावन्तों एवं गीतकारों के लिए चुनौती पेश करते हैं | निराला द्वारा लिखे गीतों में हिंदी की प्रारम्भिक गीत-परम्परा, तुक विधान, छंद विधान की सिद्धता दिखती है, गीत केवल मनोरंजन के साधन मात्र नहीं हैं बल्कि इनके पाठ द्वारा संगीत एवं जीवन की गहरी समझ अर्जित की जा सकती है | निराला के गीतों में हर्ष और विषाद की छायाएँ हैं जिन्हें वह अपने गीतों में गहरे टहकार रंगों के साथ रचते जान पड़ते हैं | 'सखि बसंत आया' नामक गीत इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इस गीत में समग्र धरती का उछाह तरंगायित होकर प्रकट हुआ है | बसंत के आने पर पूरी जगती में उमंग-उल्लास की जो छायाएँ उभरती हैं, उन्हें निराला ने इस गीत के द्वारा भास्वर स्वर दिया है | निराला जीवन के प्रति आशान्वित होकर कहते हैं-

सखि वसंत आया ।
भरा हर्ष वन के मन,
नवोत्कर्ष छाया।
आवृत सरसी-उर-सरसिज उठे,
केसर के केश कली से छूटे,
स्वर्ण-शस्य-अंचल
पृथ्वी का लहराया।

'स्नेह निर्झर बह गया है' नामक गीत में निराला के तल्ख़ अनुभव व्यक्त हुये हैं | कवि ने इस गीत में हारेपन, अवशता आदि के साथ गहन जीवन-दर्शन को प्रकट किया है | जीवन के उत्थान-पतन, हार-जीत, सुख-दुःख की समग्र व्याख्या निराला के गीतों में दिखती है | सही अर्थों में कहें तो जीवन के जटिल यथार्थ को व्यक्त करने के कारण निराला हिंदी हिंदी गीतों के बड़े कवि रूप में उभरते हैं जो न केवल गीतों की रचना करते हैं अपितु आने वाले कवियों के लिये दिशा-मार्ग का निर्धारण भी करते हैं | देखने योग्य है 'स्नेह निर्झर बह गया है' गीत की मर्मस्पर्शी पंक्तियाँ जहाँ जीवन का विस्तीर्ण अनुभव है-

स्नेह निर्झर बह गया है
रेत ज्यों तन रह गया है।
आम की यह डाल जो सूखी दिखी,
कह रही है- अब यहाँ पिक या शिखी,
नहीं आते, पंक्ति मैं वह हूँ लिखी,
नहीं जिसका अर्थ-
जीवन दह गया है ।

छायावाद के बाद हिंदी गीतों की महाधारा संकरी और क्षीण होती चली गयी | आलोचकों ने पाँचवें दशक को हिंदी नवगीत के उत्स के रूप में देखा | इस काल को अपनी दूरदर्शिता एवं साहित्यिक सूझबूझ से निराला ने पुनः गहरे प्रभावित किया | इसलिए आलोचकों का एक वर्ग निराला को ही नवगीत का भी प्रवर्तक मानता है | शंभुनाथ सिंह जो नवगीत परंपरा के चितेरे कवि-आलोचक हैं, निराला के गीतों की जीवंतता के सन्दर्भ में कहते हैं कि- " निराला असामान्य कवि थे। उनकी प्रतिभा देश और काल की सीमाओं का अतिक्रमण करके काव्य-विषय और काव्य-शिल्प का संस्पर्श करती थी। आंचलिकता-बोध, युगीन- समाज से संपृक्ति और सामाजिक जीवन की विषमताओं के प्रति आक्रामक दृष्टि का प्रारंभ हिंदी कविता में सर्वप्रथम निराला में

ही दिखाई पड़ता है। इनको ही नवगीत का मूल- तत्व कहा जा सकता है, अतः सही अर्थ में निराला ही नवगीत के प्रवर्तक हैं।"

कवि ठाकुर प्रसाद सिंह हिंदी नवगीत परंपरा के आरम्भ से जुड़े हुए रचनाकार हैं | हिंदी नवगीत परंपरा ने जीवन के जिस कटु यथार्थ को गहरी वाणी प्रदान की, उसे ठाकुर प्रसाद सिंह ने पूरी ईमानदारी के साथ अपने गीतों में प्रकट किया है | उनके नवगीत इस मायने में विशेष हैं कि इनमें लोक एवं जनता का साहचर्य है | व्यक्ति मन निसर्ग के विराट-मन से जुड़ता हुआ यहाँ दिखता है | इसलिए आंचलिकता, ग्राम्यता एवं शहरीकरण की ऊब उनके गीतों की विशिष्टता है | 'शीशे के नगर में' कवि ने भौतिक ऊहापोह को दर्शाया है, जहाँ संवेदनाएँ आहत होती हैं और मानव-मन कंपकपाता है-

नगर में आ गए
शीशे के नगर में
लगे शीशे गली में
हर मोड़ पर
हर घर-डगर में
देखते हो, देखते ही रहो
कहो सब कुछ कहो
कुछ मत कहो
सहो, केवल सहो, सहते रहो,
आ गए तो चुप रहो, बैठो
न घोलो मधु ज़हर में।
नगर में आ गए
शीशे के नगर में।

उमाकांत मालवीय के गीतों में परिवर्तित संबंधों की स्थितियाँ, कटु यथार्थ एवं जीवन का विषम पथ दिखता है | 'चुभन और दंश' गीत में कवि ने विनोदी ढंग से जीवन की चुभन को दर्शाया है | इस गीत में संबंधों के दुराव-छिपाव के साथ मनुष्य की आत्मकेंद्रित एप्रोच दिखती है | नवगीत कवि के लिए अभिव्यक्ति का माध्यम भर नहीं हैं बल्कि जीवन-अनुभव की टीस एवं व्यथा को विस्तार से कहने के सुंदर ढंग हैं जिन्हें कवि ने जब -तब प्रकट करना चाहा है | पैने एवं गहरे यथार्थ पर बात करते हुए वह कहते हैं-

एक चाय की चुस्की, एक कहकहा
अपना तो इतना सामान ही रहा।

चुभन और दंशन पैने यथार्थ के
पग-पग पर घेर रहे प्रेत स्वार्थ के
भीतर ही भीतर मैं बहुत ही दहा
किंतु कभी भूले से कुछ नहीं कहा
एक चाय की चुस्की, एक कहकहा ।

देवेंद्र कुमार सातवें दशक के नवगीतकारों में अग्रगण्य हैं | आपके गीतों में शहरीकरण-नगरीकरण की आपाधापी के बीच सिसकती हुई ग्राम्य कथा है | परिवर्तित होते हुए गाँवों की सच्ची, टटकी तस्वीर यदि कहीं देखनी हो तो देवेन्द्र कुमार के गीतों में देख सकते हैं | कवि के गीतों में गाँव की अबोध छवियाँ हैं किन्तु इसके साथ शहरी अभिजात्यता एवं आधुनिकता -बोध भी उनके गीतों में मुखर हैं | देवेंद्र कुमार ने बड़ी सादगी के साथ जीवन की स्थितियों और दशाओं की अभिव्यंजना की है | देवेंद्र कुमार के गीतों के संदर्भ में शम्भुनाथ सिंह जी लिखते हैं कि- " देवेंद्र कुमार के गीतों में आधुनिकता- बोध और आंचलिक अनुभूतियों का सुंदर सामंजस्य हुआ है। अनुभूति के तीखेपन ने इनकी अभिव्यंजना को बांकपन प्रदान किया है। इसी कारण इनके गीतों का अलग स्वर है, जो इन्हें अन्य नवगीतकारों से अलग करता है।"

'हम ठहरे गाँव के' नामक नवगीत में देवेन्द्र कुमार ने ग्रामीण सद्भाव को चित्रित किया है | शहरी प्रभाव के कारण एकाकीपन, भेदभाव, रिक्तता किस कदर को मानस को शून्य करती हैं यह उनके इस गीत में आसानी से देख सकते हैं | शहरीकरण की अहमन्यता के साथ इस गीत में गाँव की सामूहिकता, सहजीविता आदि दिखाई पड़ती है जो इसे बड़ा बनाती है-

हम ठहरे गाँव के
बोझ हुए रिश्ते सब
कंधों के, पाँव के।

भेद-भाव, सन्नाटा,
यह साही का काँटा,
सीने के घाव हुए,
सिलसिले अभाव के ।

सुनती हो तुम रूबी,
एक नाव फिर डूबी,
ढूँढ़ लिये नदियों ने
रास्ते बचाव के !

सातवें दशक के कवि नईम के गीत इस मायने में विशेष हैं कि इन गीतों में बुंदेलखंड की प्रकृति का सुंदर वर्णन हुआ है | नईम के गीतों में लोक -परंपरा, संस्कृति एवं बुंदेलखंड की आत्मा परिलक्षित होती है | नईम ने पूरी त्वरा से बुंदेलखंड के बिंब अपनी कविता में उकेरे हैं | शम्भु नाथ जी नईम के गीतों के संदर्भ में कहते हैं कि - " नईम के गीतों में बुंदेलखंड का आंचलिक सौंदर्य पूरे उभार के साथ दिखाई देता है। बुंदेलखंड के प्राकृतिक परिवेश एवं सांस्कृतिक परंपरा ने नईम के कवि को एक अनोखा टटकापन और खूबसूरत खुरदरापन प्रदान किया है। अपने इस निराले तेवर के कारण नईम ने अपने गीतों में बुंदेलखंड ही नहीं, समूचे मध्यप्रदेश के जीवन की तरह- तरह की मूरतें गढ़ी हैं। ये मूरतें ही नईम के गीत हैं- ताजे, टटके और जीवंत नवगीत।"'दाग़ नहीं छूटे' नामक गीत में नईम ने निजी दुःख को अभिव्यक्ति देने के साथ मध्यप्रदेश की धरोहर एवं कला-साहित्य आदि को भी निरुपित किया है | उनका यह नवगीत केवल निजी पीड़ा का रूप भर नहीं है बल्कि इस गीत में विपुलता के साथ जीवन का घनत्व है | उनके गीतों की बड़ी विशिष्टता यह है कि इनमें भावनाओं की एक रेख नहीं है अपितु कई-कई स्वर इनमें मिले हुए हैं जो संदर्शों को बड़ा बनाते हैं | नईम ने अपने इस गीत में जीवन की आलोचना की है | एक सजग व्याख्याता की तरह वह घटना, दृश्य एवं प्रसंगों की थाह लेते हैं, अपनी रचना में टहकार रंगों में उसे रचते हैं-

दामन को मल-मल कर धोया,
दाग़ नहीं छूटे।
बड़ी पुण्य-भागा है शिप्रा।
कालिदास के मेघदूत-सा डूबा, उतराया
ठहरा, मँडराया।
काट रहा हूँ अपना बोया
कर्म किसे फूटे।

आज उम्र के विकट मोड़ पर
औंधे किसी कूप में जैसे राह नहीं दिखती
थाह नहीं दिखती।

जी भरकर रोया/नाग नहीं छूटे।

'उद्‌भ्रांत' के गीतों में ऋतु-वर्णन और प्रकृति की मनोहारी छंटा के दर्शन होते हैं | 'मोरपंखी' नामक गीत में उद्भ्रांत ने बोझिल प्रश्नों का प्रत्युत्तर प्रकृति के माध्यम से देना चाहा है | उनका यह नवगीत स्याह, अँधेरे से भरे हुए जगत की थाह लेता है | इस गीत में मानव स्थितियों की व्याख्या तो है ही साथ ही प्रकृति के साथ जुड़ने का बोध भी है | 'उद्‌भ्रांत' जी रिश्तों की सड़ांध, शुष्कता एवं निर्जीवता आदि को प्रकृति के साथ जोड़कर देखते हैं-

फैलाया विषधर ने जाल मोरपंखी
चंदन की देह को सम्हाल मोरपंखी !

घुमड़ रहे हैं काले आवर्तों में
बोझिल प्रश्नचिन्ह
टकराते हैं आपस में सबके
दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न
सदियों के बाद आज
ले बैठा है करवट काल मोरपंखी
चंदन की देह को सम्हाल मोरपंखी !
छाया है कुहरा, अब नहीं नज़र
आती है कहीं धूप
लगता जैसे नभ के प्रांगण में
उग आया अंध-कूप
मरकर बिजली मन की
ज़ोर से अस्तित्व निज उछाल मोरपंखी
चंदन की देह को सम्हाल मोरपंखी !

आठवें दशक के नवगीत सामाजिक-राजनीतिक दुरावस्था को चित्रित करते हैं | देश में व्याप्त गरीबी, बेरोजगारी एवं राजनीतिक आक्रोश को इस दशक के गीतों ने दर्शाया है | तद्युगीन नवगीत-परम्परा पर बात करते हुए शम्भुनाथ सिंह ने सही कहा है कि- "आठवें दशक की भारतीय परिस्थितियों ने नवगीत को पुनः नयी दिशा में मुड़ने के लिए विवश किया । ययह दशक भारतीय राजनीति में उथल-पुथल और जनक्रांति का काल था । इस काल में शासन के सत्ताधारियों के विरुद्ध सामान्य जनता में आक्रोश और विद्रोह की भावना उत्पन्न हुई । क्योंकि शासकों ने देश को गरीबी की ओर बढ़ाया था । बेरोजगारी और महंगाई के कारण जीवन दूभर हो गया था । ऐसा लगने लगा था कि इस दुर्व्यवस्था से मुक्ति का कोई उपाय नहीं है ।"

नरेश सक्सेना आठवें-नवें दशक के सक्रिय गीतकार हैं | आपने अपने गीतों के द्वारा समकालीन समस्याओं को उठाया है | आपके कृतित्व में निम्न मध्यवर्गीय जीवन बिखरी छवियाँ हैं | व्यक्ति, प्रकृति, आस-पास के प्रकीर्णित जीवन आदि को गीत के साँचे में आपने ढाला है | मन की उन्मन अवस्था के साथ प्रेम का सम्मोहन, मन का सौंदर्य आपके गीतों में झलक कर उभरा है | मन के सजीले रूप की झाँकी आपके यहाँ मिलती है जो गीतों को इन्द्रधनुषीय रंग देती है | इन गीतों को जगी आँखों से देखे हुए सपने कहा जा सकता है जिन्हें कवि अपलक देखते हैं और रीझ उठते हैं | एक तरह से कह सकते हैं कि उनके गीत मन की हसीन कोठरी में पल रही खुशनुमा उम्मीद हैं, जो गहन हताशा के क्षणों में भी जीवन को उदासी में गर्क नहीं होने देते | एक सुखद के एहसास के साथ जीवन को जीने, आकंठ सौंदर्य में डूबने की चाह यहाँ दिखती है | रूप की इसी घनी चाह की आस में कवि नरेश सक्सेना कहते हैं-

दिन भर की अलसाई बाहों का मौन,
बाहों में भर-भर कर तोड़ेगा कौन,
बेला जब भली लगेगी ।
आज चली पुरवा, कल डूबेंगे ताल,
द्वारे पर सहजन की फूलेगी डाल,
ऊंची हर डाल को झुकायेगा कौन
चौथे दिन फली लगेगी ।

दिन-दिन भर अनदेखा,अनबोली रात
आंखों के सूने से बरजोरी बात,
साँझ गए साँकल खनकायेगा कौन,
कितनी बेकली लगेगी ।

हिंदी नवगीतों के संदर्भ में कह सकते हैं कि इनमें जीवन के राग-रंग, उमंग-उछाह, नेह-छोह आदि का मार्मिक अंकन है | उद्दाम आकर्षण एवं रूप-माधुरी में भीगे हुए ये गीत निजता की परिसीमा से होते हुए असीम धरातल का स्पर्श करते हैं | धूल-धूसरित जीवन को रचने के साथ ये गीत धरती के भदेसपन को भी ज़ुबाँ देते हैं | एक गहरे अर्थ में इन गीतों में जीवन का वैविध्य है | जीवन को समझते हुए, जीवन में डूबते हुए इन गीतों ने जीवन को बचाया है | प्रकृति के नैकट्य के साथ मानुष-गंध की अभिरक्षा इन गीतों का मूल ध्येय है | राजनीति का गहरा दंश गीतों के सुनहले दृश्य को तनिक भी हल्का नहीं कर पाता | कारण स्पष्ट है गीतों का धरती से गहरे जुड़ा होना | धरती से गीतों का जुड़ाव ही इन्हें बड़ा एवं अर्थकारी बनाता है | जब भी संदर्श बदलेंगे और जटिल यथार्थ के बीच मानव-जीवन बेरंग, हताश होगा | नवगीतों की सुंदर छवियाँ मनुष्य को आशान्वित करेंगी, उसके रास्ते को प्रशस्त करेंगी ताकि उसे सुकूं मिल सके और वह प्रकृतस्थ होकर अपने दायित्वों को पूरा कर सके |

****

संदर्भ :-

1.संध्या सिंह, 'निराला का गीत-काव्य',पृष्ठ संख्या- 23
2.कन्हैया लाल नंदन (भूमिका, चयन एवं संपादन), 'श्रेष्ठ हिंदी गीत संचयन', पृष्ठ संख्या-85
3.कन्हैया लाल नंदन (भूमिका, चयन एवं संपादन), 'श्रेष्ठ हिंदी गीत संचयन', पृष्ठ संख्या-84
4.शम्भुनाथ सिंह (संपादक), 'नववगीत सप्तक',पृष्ठ संख्या-119
5.कन्हैया लाल नंदन (भूमिका, चयन एवं संपादन), 'श्रेष्ठ हिंदी गीत संचयन', पृष्ठ संख्या-190
6.कन्हैया लाल नंदन (भूमिका, चयन एवं संपादन), 'श्रेष्ठ हिंदी गीत संचयन', पृष्ठ संख्या-247
7.शम्भुनाथ सिंह (संपादक), 'नववगीत सप्तक',पृष्ठ संख्या-116
8.कन्हैया लाल नंदन (भूमिका, चयन एवं संपादन), 'श्रेष्ठ हिंदी गीत संचयन', पृष्ठ संख्या-362
9.शम्भुनाथ सिंह (संपादक), 'नववगीत सप्तक',पृष्ठ संख्या-117
10.कन्हैया लाल नंदन (भूमिका, चयन एवं संपादन), 'श्रेष्ठ हिंदी गीत संचयन', पृष्ठ संख्या-319
11.कन्हैया लाल नंदन (भूमिका, चयन एवं संपादन), 'श्रेष्ठ हिंदी गीत संचयन', पृष्ठ संख्या-390
12.शम्भुनाथ सिंह (संपादक), 'नवगीत सप्तक',पृष्ठ संख्या-21
13.कन्हैया लाल नंदन (भूमिका, चयन एवं संपादन), 'श्रेष्ठ हिंदी गीत संचयन', पृष्ठ संख्या-352

समकालीन हिन्दी कविताओं में पर्यावरण

डॉ सजिना. पी. एस.
असिस्टेंट प्रोफेसर युनिवर्सिटी कॉलेज
तिरुवनंतपुरम केरल मो.-7025527422

शोधसार:- हमारे जीवन में पर्यावरण का महत्वपूर्ण स्थान है। पर्यावरण से हमें शुद्ध हवा, पानी, रहने के लिए भूमि सब कुछ मिलता है। प्रगति के नाम पर मनुष्य प्रकृति का लगातार विनाश करता जा रहा है। प्रकृति का अमर्यादित उपभोग, वनों की कटाई, उद्योग-धंधों की भरमार, उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन, व्यापार, बाजार और इसी प्रकार का एक परिवेश बनता जा रहा है जो प्रकृति, पर्यावरण, पृथ्वी और मानव जाति के लिए हानिकारक सिद्ध हो रहा है। समकालीन हिन्दी कविता में पर्यावरण को बचाने की चिंता प्रमुख है। समकालीन कविता प्राकृतिक चित्रण के साथ-साथ प्रकृति के विनाश के कारणों की भी पड़ताल करती है।

बीज शब्द:- पर्यावरण, प्रकृति, , ग्लोबल वार्मिंग, प्रदूषण, उत्सर्जन, विकसित और विकासशील देश, भूमंडलीकरण।

प्रस्तावना:- पर्यावरण शब्द अत्यंत व्यापक है, जिसमें सारा ब्रह्मांड ही समा जाता है। 'हम सभी और हमारा संसार के समस्त तत्वों एवं पदार्थों का समग्र रूप ही पर्यावरण है। अर्थात् चारों ओर से हम जो कुछ देखते और अनुभव करते हैं. वह पर्यावरण का हिस्सा है। यही हमारा अस्तित्व का आधार है। इसलिए पर्यावरण को बनाये रखना हमारी आवश्यक है और कर्तव्य भी।

मूल लेख:-पर्यावरण आज एक बहुआयामी शब्द है। आज पर्यावरण की समस्या सबसे अधिक चर्चित समस्या में एक है। हिंदी साहित्य में विशेष रुप से समकालीन हिंदी साहित्य में पर्यावरण का नया रूप उभर कर आ रहा है। समकालीन कविता विचारों के गहरे – दवाबों से विवश होकर रची जाती है। यहां महामानव और लघु मानव की बहस को समाप्त करता हुआ सामान्य मानव केंद्र में आ गया है। वस्तुतः हर युग की कविता अपने युग के मानव को परिभाषित करने की कोशिश करती है। इसलिए कविता का सृजन कर्म में निरंतर परिस्थितियों के घात – परिघात से बदलती हुई मनोस्थिति का अध्ययन आवश्यक है व्यापक अर्थ में कह सकते हैं की परिवेश ही समकालीन काव्य सर्जना की मूल प्रेरणा है।

भूमण्डलीकरण के इस युग में कविता इन परिस्थितियों से उत्पन्न तनावों को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन में छिपी विसंगतियों और विषमताओं के प्रति हमें भावनात्मक दृष्टि से सजग करती हुई सहानुभूति या संवेदना का दायरा बढ़ाती है।"1 समकालीन कविता में पर्यावरण की चिंता की यदि बात करते हैं तो यह चिंता हमें 'अज्ञेय' के काव्य से समझना आवश्यक है। अज्ञेय की कविता का अर्थ शायद उस मछली में है जिसे सभी दिशाओं से सागर घेरता है। मछली अर्थात अस्तित्व या जिजीविषा जल के बाहर निकाल दी गई मछली, तड़पती छटपटाती और हॉफती है। क्या चाहती है वह जीना, मुक्ति। यही अज्ञेय की कविता की सही जमीन है।[2]

नागार्जुन की कविता 'धरती' में प्रकृति और परिवेश के ऊपर मनुष्य का तीव्र शोषण का चित्रण है। उत्तर आधुनिक जरूरतों की पूर्ति के नाम पर अमेरिका धर्म नवीकरण से, बेसहारों की सहायता, साम्राज्यवाद आदि अनेक कर्मकांड चलाता है, जिसके द्वारा यह संसार भर के छोटे मोटे विकासशील राष्ट्रों पर अपना अधिकार जमाने की कोशिश करता रहता है इसके लिए आधुनिक युग में पर्यावरण का प्रदूषण अधिक हो गया है। मानव के अपने इतिहास से पनपकर पली हुई परिस्थिति और परिस्थिति दर्शन आज तिरस्कृत होने लगे हैं उस कविता के द्वारा नागार्जुन प्रकृति और मनुष्य के संबंध के बारे में एक अलग दृष्टिकोण से अपनी राय प्रकट करते हैं। हमारी प्राचीन सभ्यता वसुंधरा को माता की संज्ञा देती है।दोहन और पोषण का भाव लुप्त हो गया है। हम मानव भौतिकवादी बन गए हैं। आविष्कार के क्षेत्र में मानव कल्याण का साधन मात्र नहीं बने हैं, जाति के सर्वनाश का भी कारण बन सकते हैं। हम प्रगति की आंधी दौड़ में वसुंधरा को भूलते हैं।इस भाव को कवि इस प्रकार आत्मसात करते हैं-

धरती धरती है,/पनहाई हुई गाय नहीं
कि चट से दुह लो कंटिया भर दूत [3]

"नागार्जुन ने इस धरती को विनाशक वैज्ञानिक अस्त्रों से बचाने की इच्छा व्यक्त की है। युद्धों का विरोध करते हुए वे लिखते हैं-

पौधों या पेड़ों में कभी नहीं फली हैं
छुटियाँ /कन्द की जड़ से कभी नहीं निकला है
विस्फोटक बम/चर कर घास गाय ने दूध के बदले नहीं
दिया इलाइल/सोख कर इस धरती का जहर नहीं बरसा
कमी भी बादल। [4]

वैश्वीकरण के परिदृश्य में लिखी गई केदारनाथ सिंह की रचना है 'पानी की प्रार्थना ' यह प्रमाणित करती है कि प्राकृतिक दोहन का खमियाजा इस धरती के सभी प्राणियों को भुगतना है। प्रकृति और मानव जीवन इसी प्रकार जुड़े गए हैं कि एक को दूसरे से अलग करना संभव नहीं है। इसमें निहित पारिस्थितिक बोध आज की उपभोक्ता प्रणाली के विरुद्ध कवियों की शंखध्वनि है –

"अंत में प्रभु/अंतिम लेकिन सबसे जरूरी बात
वहाँ होंगे मेरे भाई बंधु
मंगल ग्रह या चाँद पर/पर यहाँ पृथ्वी पर मै
यानी आपका मुँहलगा यह पानी

अब दुर्लभ होने के कगार तक/पहुँच चुका है" [5]

लीलाधर जगूड़ी की कविता उस दिन का जंगल मैं प्रीति को तथा बिम्बों के सहारे कवि ने अतिरिक्त एवं वर्तमान को सात साथ उपस्थित किया है। पुराना कभी पुराना नहीं होता, वह हर नए को जन्म देता है। इसमें अतीत का पतझर है जिसकी पत्तियाँ आज भी झड़ती जा रही है वह एकदम सुखमय था। उसमें हताशा नहीं थी, रौशनी थी। कविता के कई बिम्ब में है जो मनोभावों को दर्शाते हैं-

पिछले पतझर में/हम कितने रोशन थे
जैसे उजाले के दो पेड़/ घास बड़ी होती है
तो आपस में दोस्त हो जाती है।[6]

इस कविता में संबंधों की टूटन है।पेड़ की तुलना में घास अधिक श्रेयस्कर है क्योंकि वह मिलजुल कर रहना जानती है। वह धरती से ऊर्जा लेकर उसी पर रहना चाहती है। यहाँ घास निम्न मध्यवर्गीय जीवनशैली का भी प्रतीक है। घास की तुलना में पेड़े होकर जमीनी यथार्थ से दर चले जाते हैं अपने अकेलापन में उलझे हुए मनुष्य की भाँति उनकी नियति हो जाती है। यहाँ पेड़ को आभिजात्य एवं आधुनिकता में डुबे हुए मनुष्य का प्रतीक माना जाता है।अरुण कमल की कविता 'गंगा को प्यार 'भारतीय मनुष्य और गंगा के आत्मीय, अंतरंग एवं शुद्ध संबंधों की पवित्र गाथा है। गंगा के बिना भारतीय जीवन तथा संस्कार की कल्पना भी असंभव है।गंगा जीवन का आधार और प्राण है। यह कविता केवल पर्यावरण की बाह्य चिंताओं का प्रतिफल नहीं बल्कि कृतज्ञता बोध की विनम्र अभिव्यक्ति है। साथ ही वर्तमान की विभीषिकाओं को भी रेखांकित करती है।गंगा में प्यास बुझाने के लिए पक्षी आते ही हैं। वे गंगा के जल की सतह को अपने वक्ष से स्पर्श करते हैं परंतु पानी में चौच नहीं डालते और घूम जाते हैं, क्यों? गंगा का पानी उन्हें पीने लायक नहीं लगता। अर्थात् गंगा का प्रदूषण इतना मुखर है कि उसे जानने के लिए गंगा के पानी को छूने या पीने की जरूरत नहीं है, सिर्फ देखने से ही उसकी प्रतीति हो जाती है। गंगा का प्रदूषण जैसे मुंह बोलता है। इसी कविता में एक और प्रसंग है कि एक गाय रुक-रुककर, संभल संभलकर पैर रखती है, जल पीने के लिए गंगा की धार तक उत्तरती है। उसकी सांस से गंगा पानी हिल जाता है। शायद इसीलिए कि गंगा अपने पानी को हिलाकर उस गाय को निषेध कर रही है कि वह पानी न पिये। यह सब देखकर कवि आश्चर्यचकित हो सोचता है कि क्या गंगा इतनी प्रदूषित हो सकती है- "कभी-कभी कोई पक्षी जल की सतह को लगभग छाती से छुता नि शब्द/ मुडता है वापस, कोई गाय, संभलकर पांव टिकाती उतरी जल पीने और नथुनों के नीचे/ हिल गई गंगा! असंभव असंभव है सोचना-जिनकी मिट्टी हवा-पानी से गुंथी है।उनके लिए असंभव है सोचना कि एक दिन गंगा के ऊपर उड़ता हुआ पक्षी विष की धाह से झलस जायेगा। गंगा में यह प्रदूषण मनुष्य द्वारा फैलाया गया है। ऐसा करते हुए उन्होंने इसके परिणाम के बारे में नहीं सोचा।

ज्ञानेन्द्रपति की कविता है- 'नदी और साबुन '। कवि कहते हैं कि यह कैसीविडम्बना है कि जो साबुन कपड़ों के मैल को दूर करता है वही गंगा के जल को प्रदूषित करता है। यह साबुन की बही साबुत है. इसका रैपर हटा दिया गया है। यह जल में डूबी घाट की सीढ़ी से ऊपर सूखी सीढ़ी पर रखी है, रंग इसका नीला है। इस साबुन की बट्टी को एक बहुराष्ट्रीय कंपनी ने बनाया है. इसके लिए बहुत प्रचार भी किया है। कवि कहते हैं कि यह कैसी विचित्र माया है कि हथेली भर के साबुन की चौकोर काया की इतनी लंबी छाया है अर्थात् वह साबुन की टिकिया इतनी दर तक अपना प्रभाव छोड़े हुए है- **"माया है कि तरहथ भर की उसकी चौकोर निश्चल काया की बहुत लंबी छाया है। गंगा के सिरहाने है हिमालय-शुभ्रता और उज्ज्वलता का प्रतिमान। उस शुभ्रता से नि:सृत गंगा को एक हथेली भर की टिकिया ने नीला कर दिया। शुभता धरी रह गई, विषैला नीलापन प्रमुख हो गया। इस साबुन का निर्माता भी मनुष्य है और साबुन से कपड़े धोने वाला भी, उद्योग लगाने वाला भी और उद्योगों का निस्सरण जल में छोड़ने वाला भी मनुष्य है, तो गंगा को प्रदूषित करने वाला भी मनुष्य ही हुआ। गंगा के प्रति कवि की यह चिंता प्रकारांतर से मनुष्य के लिए की गई चिंता है। अंतत गंगा का जल मनुष्य के लिए ही तो है। गंगा का जल केवल जीवों के प्यास को ही नहीं बुझाती, भीतर की गहरी 'संस्कारों की प्यास' को भी तृप्त करती है। निर्मला पुतुल 'बूढी पृथ्वी का दुख' कविता में लिखती हैं- "इस घाट अपने कपड़े और मवेशियाँ धोते सोचा है कभी कि उस घाट/पी रहा होगा कोई प्यासा पानी या कोई स्त्री चढ़ा रही होगी किसी देवता को अर्घ्य."** [7]

निष्कर्ष:-समकालीन दौर में पर्यावरण असंतुलन की समस्या सम्पूर्ण विश्व की अर्थात वैश्विक स्तर की समस्या है। इसके समाधान के लिए विश्व में विभिन्न स्तरों से कार्य चल रहा है। हिंदी साहित्य के माध्यम से मनुष्य के जीवन में पर्यावरण की भूमिका को निर्दिष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है। समकालीन कवियों ने पर्यावरण से सम्बन्धित विविध पक्षों को उद्घाटित किया है।मनुष्य और पर्यावरण के भावनात्मक सम्बन्ध को भी समकालीन कवियों के द्वारा रेखांकित किया गया है।इस प्रकार समकालीन कविता के सभी महत्वपूर्ण कवियों ने किसी न किसी रूप में पर्यावरणीय चिंताओं पर केन्द्रित कविताएँ लिखी है। समकालीन कविता का सरोकार केवल मानव तक ही सीमित नहीं है, उसकी परिधि में समय प्रकृति समाहित है। मानव इन तत्वों के संतुलन में विकृति पैदा कर रहा है। अतः समकालीन कविता का सरोकार पर्यावरण विकृति और उसके परिणाम भी है। यही समकालीन हिंदी कविता को हिंदी काव्य धारा में अपनी अलग से पहचान बनाती दिखलाई पड़ती है।

****

संदर्भ:-

1.बलवेय वंशी समकालीन कविताः विचार कविता में (डॉ. चन्द्रकांत बांदिवडेकर का लेख), पराग प्रकाशन, दिल्ली, पृ.144
2. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी समकालीन कविता. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.09
3.अज्ञेय पारिस्थितिक पाठ और हिंदी कविता, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृ.93
4. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी समकालीन कविता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.84
5. केदारनाथ सिंह पारिस्थितिक पाठ और हिंदी कविता, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृ.99
6.वहीं, पृ.106
7. निर्मला पुतुल 'नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द' (कविता संग्रह), तीसरा संस्करण-2012, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृ.31

मंडा पर्व का विश्लेषण

देवेंद्र साहू
असिस्टेंट प्रोफेसर एंव रिसर्च
स्कॉलर, नागपुरी विभाग,कार्तिक उराँव
महाविद्यालय गुमला

झारखंडी (नागपुरी) समाज में यह पर्व को सबसे कठिन पर्व माना जाता है। इस पर्व में कठिन व्रत भी किया जाता है। यह पर्व अक्षय तृतीया बैशाख से आरंभ हो जाता है। महादेव भोलेनाथ की पूजा, महादेव मंडा में कठिन व्रत उपवास, नियम धर्म का पालन करते हुए भगताओं द्वारा मनाया जाता है। इन भक्तों की प्रमुख को पाट भगता कहा जाता है। इन सभी भगताओं की सेवा के लिए मां, बहन, पत्नी, या बेटी में से कोई एक रहती है। इन्हें भी कठिन व्रत का पालन करना पड़ता है। इन्हें सोखताइन कहते हैं। जागरण की रात मेला भी लगता हैं। और मेले में बहुत दूर-दूर के लोग मेला देखने मेला स्थल पर पहुंचते हैं ।मेला में बहुत भीड़ होती है। मेला में कलाकार अपना कला दिखाते हैं। कहीं-कहीं में छऊ नृत्य का भी मनोहारी आयोजन किया जाता है। मंडा व्रत रखने वाले भगता कहीं-कहीं पर 100 से भी अधिक लोग होते हैं। भगताओं की तब बहुत ही कठिन होता हैं। भगताओं को रात्रि में धूप-धूवन की अग्नि शिखाओं के ऊपर उल्टा लटका कर झुलाया जाता हैं। इसे धुवाँसी भी कहा जाता है। इसके बाद भगताओं को दहकते अंगारों के कतार के ढ़ेर पर सभी लोग एक-एक कर नंगे पांव पर चलना होता हैं। दहकते अंगारों पर चलने को "फुलखुदी" कहा जाता हैं। दूसरे दिन चरक डाँग मचान पर भी चरखी में 15- 20 फीट ऊपर उन्हें हवा में झुलाया जाता हैं। भगता अपने फूलों की हार को लोगों के भीड़ की ओर फेंकते हैं। उन्हें पवित्र मानकर लोग अपने पास रख लेते हैं। भगताओं का दल रंग-बिरंगे पोशाकों में कंधे पर चाँवर, पैरों में घुँघरू, हाथों में बेद की छड़ी,सिर पर पगड़ी, मोर का पँख, गले में गुलइची फूलों की मोती माला में ये भगता दल बड़े ही सुशोभित होते हैं भगता का सामूहिक नृत्य मनोहरी होती हैं। इस नृत्य को देखने के लिए सभी लोग जाते हैं। यह मंडा पर महादेव पूजा का सबसे बड़ा त्यौहार है।

मंडा पर्व को आदिवासी सदान, दोनों समुदाय के लोग मनाते हैं। इस पर्व भगता आदिवासी- सदान सभी लोग बनते हैं। भगवान भोलेनाथ की लीला अपरमपार है। गर्मी के मौसम में इतना कठिन व्रत कहीं देखने को नहीं मिलता है। झारखंड प्रदेश की संस्कृति ही अलग हैं। झारखंड प्रदेश की पूरे विश्व में अपना अलग पहचान बनी हुई हैं। गर्मी के मौसम में भी उपवास करना, आग की धुआं में झुलना ,खंबे में उल्टा लटकना, आग के अंगारे में खाली पैर चलना, ये सब बहुत ही कठिन हो जाता हैं।परंतु भगताओं के लिए यह सरल हैं।इस पर्व में जो भी व्रतधारी होते हैं वे बड़ी सजकता पूर्व इस व्रत को पूरा करते हैं। यदि गलती हो जाता है तो कठोरतम सजा मिलती हैं और वह इस व्रत को पूरा नहीं कर पाते हैं। अतः जो भी भगता बनते हैं उन्हें पूरी लगन के साथ महादेव की उपासना करनी पड़ती हैं।मंडा पर्व शुरू होने के बाद पूरे नागपुरी भाषा क्षेत्र भक्तिमय हो जाता हैं। शिव उपासना में सभी लोग लीन हो जाते हैं। मंडा पर्व को भक्ति का सबसे बड़ा पर्व माना जाता है।संजय कृष्ण के मतानुसार– " आग पर चलने की पर्व दुनिया की कई आदिम संस्कृतियों में है आस्था का एक ऐसा ही रंग,अंगारों के संग पूरे छोटानागपुरी में देखने को मिलता है। मंडप पर्व के रूप में चैत्र मास के शुक्ल पक्ष से प्रारंभ होकर यह पर्व ज्येष्ठ मास तक मनाया जाता हैं। यह त्यौहार आग पर चलकर उपासना और साधना की सत्यता प्रमाणित करने के लिए आदिवासियों और सदानों द्वारा सम्मिलित रूप से मनाया जाता हैं।

अलग-अलग स्थानोंपर यह त्यौहार अलग-अलग तिथि में मनाया जाता है। शिव की इस उपासना में आदिवासी सदान का भेद मिट जाता हैं।

मजेदार बात तो यह हैं कि आदिवासियों का भी त्यौहार बली और इलि (चावल से बनी शराब) के बिना पूरा नहीं होता परंतु मंडा पर्व ही इनका ऐसा पर्व है जिसमें किसी प्रकार की बली नहीं चढ़ाई जाती हैं। इलि का अर्पण इसमें नहीं किया जाता है। बल्कि पूर्व रुपेण सात्विक रूप से इसे मनाया जाता है। इस त्यौहार में मुख्य उपासक जिन्हें पाट भगता एवं भगतिया कहा जाता है। के नेतृत्व में अन्य सह उपासक धधकती आग पर नंगे पैर चलते हैं। उस रात को जागरण और आग पर चलने की क्रिया को "फूलखुंदी" कहा जाता हैं।" (1)

मंडा पर्व के बारे में डॉ० गिरिधारी राम गंझू "गिरिराज" के अनुसार–

"पूरे झारखंड में बैसाख पक्ष अक्षय तृतीया के दिन से मंडा त्यौहार मनाया जाता हैं।मंडा का त्योहार महादेव मंडा में ही मनाया जाता है। और यह शिव की आराधना का कठिन व्रत धारण करने का व्रत पर्व है। जो शिव के आराधक इस मंडा पर्व में सम्मिलित होते हैं। उन्हें भगतिया (भगत) कहा जाता है। ये भगतिया उपवास, फलाहार, और अनेक जटिल क्रियाओं से होकर गुजरते हैं। जलते हुए हवन कुंड की लपेटों के ऊपर उलटे पाँव,ऊपर पैर, सिर नीचे कर धुवाँसी झूलते हैं। काँटी के बिछे पटरे पर शयन करते हैं। खुली सड़क पर लोटन (लुढ़कते) करते हैं। 10 -12 हाथ लंबे, दो हाथ चौड़े अंगारों के लहलहाते ढेर पर फूलखुंदी (अंगारों पर चलना) करते हैं। पीठ पर लोहे के हुक लगाकर 15-20 फीट ऊँचे चरक डांग (मचान की चरकी पर) झूलते हैं। और इनकी सेवा में हरेक भगतिया के लिए माँ, बहन,

जिसे सोखताइन कहते हैं।सोखताइन का तात्पर्य होता है भगतिया के सारे कष्टों को सोख लेने वाली। इनका भी वैसा ही कठिन व्रत, उपवास होता है जैसे भगतियों का। जिस रात फुलखूँदी तथा धुवाँसी होता है उस रात को जागरण की रात कहा जाता हैं। लोगों को धुवाँसी एवं फुलखूँदी की तैयारी जो लंबी चलती हैं। इस बीच मंडा स्थल पर छऊ नृत्य का नाच की व्यापक व्यवस्था होती हैं।" (2)

मंडा पर्व को पूरे झारखंड प्रदेश में आस्थापूर्ण मनाया जाता हैं। झारखंड के हर गांव में महादेव मंडा रहता है। साथ ही देवी गुड़ी भी होता है। इसी शिव स्थल को झारखंड में शिवालय माना जाता हैं। देवी गुड़ी में माँ पार्वती का स्थल माना जाता है। इसे शिव के ही पूरक माना जाता है। शिव-पार्वती को आदिकाल से यहाँ के लोग पूजते आ रहे हैं। इसके बिना कोई गांव भी नहीं बसता हैं। सदान आदिवासी दोनों का इष्ट देव महादेव,आदिदेव, महादेव ही हैं।सदान महादेव कहते हैं। तो आदिवासी इन्हें सिंगबोंगा कहते हैं।

पुराणों में शिवपुराणों की विशेष महत्व है। पुराणों के अनुसार शिव संसार की संहारक माने जाते हैं। और संसार हेतु शिव तांडव नृत्य करते हैं। इसी से शिव को नृत्य का आदिदेव माना जाता है। साथ ही उनके डमरू से वाद्य संगीत का आरंभ होता हैं। इस तरह शिव संगीत के अर्थात वादन, नर्तन के अधिवाता देव माने जाते हैं। शिव की हर कथा में इनकी अलग ही महत्व है। शिव के बिना सब कुछ अधूरा रह जाता हैं।मानव समाज शिव की उपासना सदियों से करते आ रहे हैं। झारखंड में भी आदिकाल से कुछ ना कुछ रूप में शिव की आराधना की जाती हैं। शिव की महिमा झारखंड में कुछ अलग ही है। मंडा जैसी पर्व पूरी दुनिया में कहीं भी देखने को नहीं मिलता हैं। सगुण भक्ति धारा की ये सबसे बड़ी प्रमाण है।ये पूरी तरह ईश्वरीय शक्ति को सिद्ध कर देता है। मंडा पर्व देखने के बाद सारी शंकाएँ मिट जाती है। और ईश्वरीय शक्ति पर विश्वास होने लगती हैं। कोई भी नाश्तिक इसे इनकार नहीं कर पाता हैं। सारे तर्क, वितर्क इस पर्व पर मिट जाती है। सभी लोग भक्ति भावना में डूब जाते हैं। महादेव की उपासना में सदान आदिवासी लीन हो जाते हैं। दहकते अंगारों में नंगे पांव चलना, पर ये भक्तों को फूल में चलने जैसा प्रतीत होता हैं। और जलते भी नहीं। धुवाँसी करना, काँटी पर चलना,ये सब कठिन साधना होती हैं। ये पर्व सभी को आश्चर्यचकित कर देता है। शिव पर आस्था जाग जाती है। झारखंड का मंडा पर्व इसी महादेव की पूजा आराधना तब व कठिन साधना से जुड़ा हुआ हैं।जिसमें आराधना करने वाले भक्त जिसे यहां भगतिया कहा जाता हैं।10-11 दिनों तक कठिन व्रत रखते हैं। और आदि देव महादेव को प्रसन्न कर अपनी मनोकामना पूर्ण करते हैं। भगतिया (भक्तगण)।

मंडा एक प्राचीन पर्व हैंऔर मंडा पर्व का आरंभ कब, कहाँ, कैसे, क्यों, कौन किया ये प्रश्नों का उत्तर नहीं मिलता है। पत्नी, बेटी या कोई एक महिला उनकी रात- दिन सेवा करती है।फिर भी प्रारंभिक रूप से इतिहास के और अज्ञात काल से यह मंडा पर्व सतत अविराम चलता आ रहा है। मंडा पर्व को पूरे सदान-आदिवासी बड़ी श्रद्धा, भक्ति, नियम, धर्म के साथ मनाते आ रहे हैं। मंडा पर्व झारखंड का सबसे बड़ा पवित्र और कठिन पूजा (व्रत) हैं।झारखंड का लंबे समय से चलने वाला लोक-उत्सव हैं। मंडा पर्व झारखंडी समरसत्ता का एक बड़ा त्यौहार हैं। डाँ० गंझू के मतानुसार पूजा विधि–

" सर्वप्रथम इच्छुक व्यक्ति जो मंडा पूजा में भाग लेना चाहता है। वह पास के महादेव मंडा के प्रधान पुजारी जिसे पाट भगता कहा जाता है। उसके पास जाता है। और मंडा का भगतिया बनने व प्रवेश करने की इच्छा जाहिर करता हैं। भगतिया पाँच वर्ष से अधिकतम उम्र तक चल फिर, संभल सकने की अवस्था तक के पुरुष भाग लेते हैं। वह अपने झोले में एक लोटा, गमछा, साड़ी, (धोती) आम के दतवन,आम पत्तों समेत टहनी, चाँवर,घुंघरू, वेंत की छड़ी,मोर पंख आदि पूजन सामग्री अवश्य रखता हैं।ऐसे भगतिया की सेवा के लिए उसकी पत्नी,बहन, बेटी, मां, दादी, नानी कोई एक महिला तैयार रहती है। इसे सोखताइन कहते हैं। जो भगतिया के कठिन साधना के कष्ट को सोख लेती है। इसी से इसे सोखताइन कहा गया हैं।

महादेव मंडा का प्रधान पाट भगता (प्रधान पुजारी) जब पूरी तरह इच्छुक को परख लेता है तब वैसे समस्त इच्छुक भगतिया गणों को नदी ले जाता है। वहाँ बिठाकर मंडा पर्व के महत्व, उसकी विधि-विधान वह निषेधों को विस्तार से बतलाता है। कठिन साधना, तप, उपवास, फलाहार, निर्जला, स्नान, पूजा, मंत्र, दिन, विधि आदि बतलाता हैं। सभी एक दूसरे को तीन-तीन बार प्रणाम करते हैं। आम का दतवन करते हैं। स्नान करते हैं। और वही नदी किनारे शांति से सादा भोजन फल, चना, आदि खाते हैं। कोलाहल बिल्कुल माना हैं।छीक आने, हिचकी होने, खांसी होने, सरकने,कंकड़ मिलने या किसी प्रकार की बाधा होने पर भोजन वे नहीं करते। मांस, मछली, मदिरा का सेवन पूर्णतया वर्जित होता है। नदी किनारे की बालू में ही वे विश्राम करते हैं। संध्या समय महादेव मांडा में माथा टेक कर घर लौटते हैं। सोखताइन उनकी हर विधि से ध्यान रखती है, सेवा करती है, दोनों ही जमीन पर शयन करते हैं। सोखताइन प्रतिदिन के लिए गुलइची फूलों का हार बनाती है उसके लिए खाने की व्यवस्था करती हैं। दूसरे दिन सभी भगतिया साड़ी की धोती पहनकर ऊपर सफेद गेंजी, गुलइची फूलों की माला से तन ढके रहते हैं। कंधों पर दोनों ओर चाँवर बंधे होते हैं। पैरों में घुंघरू बंधा होता है। पगड़ी और ऊपर मोर पंख की कलगी की तरह खोसे रहते हैं। पाट भगता के साथ महादेव मंडा में माथा टेक कर भगतिया के साथ स्नान-ध्यान के उपरांत गांव- गांव, घर-घर घूम कर बच्चों को सामने बिठाकर अपने पैरों से आशीष देते हैं। ध्यान देने की बात है कि पाट भगता श्वेत धोती पहने रहता है उसके दाहिने- बाएँ नगाड़ची (नगाड़े बजाने वाला), ढाकँची (ढ़ाक बजाने वाला) तथा शहनाई वादक को प्रति घर से कुछ अनाज व पैसे मिलते हैं।

जो सभी भगतिया के काम आते हैं। यह प्रक्रिया 9 दिनों तक गाँव घर बदल-बदल कर होता है। भगतिया सभी पाट भगता के साथ एक मंत्र हमेशा बोलते रहते हैं। "जय जगन्नाथ काशी-विशी नाथ, गया गजा दो, बेनी महादेव, बले शिवा शिवा महे।" इसके मूल शब्द इसी तरह सुनाई पड़ते हैं।

पाट भगता महादेव मंडा से शिवलिंग को कंधे पर उठाकर आगे-आगे चलता है। उसके साथ नगड़ा ढ़ाँक तथा शहनाई बजाने वाले बजाते हुए चलते हैं। उनके पीछे सारे भगतियी मंत्र जाप करते चलते हैं। और शिव मंदिर के अतिरिक्त अन्य किसी मंदिर या देवी गुड़ी तक जाते हैं। और लौटते हैं। नौंवे दिन पूर्णतया उपवास एवं निर्जला रहकर सभी भगतिया एवं सोखताइन पूजा में सम्मिलित होते हैं। पाट भगता उनकी अगुवाई करता है। शौच तथा लघुशंका के बाद हर बार स्नान करना अनिवार्य होता हैं। मिलकर दादल घाट स्नान करने जाते हैं। गोलाकार बैठकर एक दसरे को गुलइची फूल की माला पहनाते व तीन-तीन बार प्रणाम करते हैं। इस दिन गुलइची फूलों के साथ रजनी गंधा फूल की भी माला पहनते हैं। महादेव मंडा में जाकर सभी माथा टेकते हैं।

रात्रि में इधर महादेव मंडा स्थल के खुले भाग में लकड़ी का ढ़ेर लगाते हैं। उसे जलाकर आंगोर बनाते हैं।सूप से हाँक कर सारे राख उड़ा देते हैं। दसरी ओर एक झूलन में उलटे सिर लटका कर ऊपर पैर फंसा करे भगतिया गणों को झलाते हैं। नीचे गड्ढे में आग होती है।उस पर धूप-धूवन देकर प्रज्वलित करते हैं। और उसके ऊपर पहले पाट भगता फिर अन्य भगतिया लोगों को बारी -बारी से झूलाते हैं। कोई अगर चुपके से खाना खा लिया है या नियम भंग कर लिया है तो उस झूलन से जिसे धुवाँसी कहते हैं। अर्थात धूम्रपान कराना तो उसकी उल्टी हो जाती है। सोखताइन उसी स्थल पर गोलाकार खड़ी रहती है। काँसे लोटे में आम का टहनी पत्तों समेत सिर पर ढोकर धुवाँसी होने के बाद फुलखुँदी होती है दो बजे रात पाट भगता भगतिया लोगों के साथ एक घड़े को कंधे पर ढोकर बिना पीछे मुड़कर देखते हुए चुपचाप चला जाता हैं । दादुल घाट, तालाब या नदी। वहाँ कमर से ऊपर तक पानी में प्रवेश कर एक ही कजसाँस में डुबकी लगाकर स्नान और घड़ा भरने की काम करता हैं । बजाने वाला साथ बजाते हुए चलते हैं। सभी भगतिया साथ लौटते हैं। 10 से 15 फीट लंबे आग के ढेर पर से सर्वप्रथम पाट भगता अपनी अंजुली में आग उठाय महादेव मंडा में शिवलिंग पर चढ़ता हैं। और उस पर धूप-धूवन देता है। पूजा करने के बाद लंबे अग्नि ढ़ेर के चारों ओर भीगे हुए पुआल बिछा दिए जाते हैं। सभी भगतिया गोलाकार होकर खड़े हो जाते हैं। पुआल पर सोखताइन का वृत्त इनके बाहर -बाहर बना रहता हैं । वे भगतिया जनों पर आम पत्तियों की टहनी से जल का छिड़काव करती रहती है। भगतिया परिक्रमा करते रहते हैं। रात्रि का मध्य भाग पार हो गया रहता है। सर्वप्रथम पाट भगता हाथ जोड़े अग्नि में प्रवेश करता है। और पूरी लंबाई में इस तरह चलता है जैसे वह फूलों पर चल रहा हो। इसे फुलखुँदी कहते हैं। भगतिया लोगों की संख्या कहीं-कहीं 100-200 तक हो जाती है। उनके बाद सोखताइनें भी अग्नि पर चलती हैं।रात्रि काफी हो जाती है इसे जागरण की रात कहते हैं। लोगों को जागृत रखने के लिए मंडा स्थल पर ही फूलखुँदी के पूर्व एवं बाद भी छऊ नृत्य का या सांस्कृतिक गीत-संगीत का कार्यक्रम चलता रहता है।फुलखुँदी के समाप्ति के बाद महादेव मंडा परिसर में ही विश्राम करते हैं। भगतियागण सुबह घर जाते हैं। कभी-कभी सामान्य व्यक्ति तथा सोखताइन भी फूलखुँदी करते हैं। दसवें दिन चरक डांग (चरखी झूलन) झूलने का तथा मेले का दिन होता हैं।पाट भगता कांटी के सेज पर सोकर महादेव मंडा से झलन स्थल तक आता हैं। इसे बैलगाड़ी या सगड़ में रखकर लीया जाता है। इस समय पाट भगता लोगों की भीड़ पर गुलइची फूलों को भीड़ पर लुटाता रहता है। इसे शुभ और पवित्र प्रसाद समझ कर लोग लोक लेते हैं। और साल भर अपने घरों में सुरक्षित रखते हैं। सभी भगतिया आकर्षक वेशभूषा में रहते हैं। चलने पर घुंघरू के कारण छम-छम से वातावरण मधुर हो जाता है। सर्वप्रथम झूलन मंच पर पाट भगता झूलता है। एक 15-20 फीट ऊंचाई पर एक ओर भगता लोगों को कपड़े से बांध दिया जाता है। छाती पर दसरी ओर रस्सी से उसे एक परिक्रमा हवा कराया जाता हैं। उस समय वह कुलकुली लगता है तथा अपने झोलें से गुलइची फूलों को भीड़ में लुटाता रहता है। इसे भी पवित्र मानकर घरों में साल भर रखा जाता हैं। बारी-बारी से सभी भगतिया लोगों के झूलने के बाद उतरने वाले भगतिया को उनके भले स्वजन कंधे पैर बिठाकर घर ले जाते हैं। घर में खान-पान होता है।कहीं-कहीं धुवाँसी के दिन तथा कहीं-कहीं पर झूलन के दिन बकरे की बलि दी जाती है। जिसका प्रसाद स्वरूप एक-एक दोना प्रत्येक घर भिजवाया जाता हैं।

ग्यारहवाँ दिन मंडा छठी होता है। इसे गणेश की छठी भी कहा जाता हैं । 9-10 दिनों के कठिन व्रत के उपरांत दसवें दिन संगे-संबंधियों मेले में आए रहते हैं। उनका विशेष भोजन से सम्मान होता है। ग्यारहवाँ दिन मंड़ा छठी के उपरांत मंड़ा का त्योहार समाप्त हो जाता हैं। पाट भगता का चयन होता हैं। और कहीं-कहीं पारंपरिक भी पाट भगता होते हैं। ये पूरे मंडा के कार्यक्रमों का पूजा पाठ का सूत्रधार एवं अगुवा होते हैं।" (3) झारखंड के दक्षिणी छोटा नागपुर प्रमंडल में पूर्वी और दक्षिणी भाग में इस त्योहार को उमंग और उल्लास के साथ मनाया जाता हैं। झारखंड प्रदेश का यह एक अनोखा त्योहार है। इस पर्व में अंगारे भी फूल बन जाते हैं। यह श्रद्धा, विश्वास, भक्ति, और अटूट सांस्कृतिक विरासत का त्योहार है। यह अक्षय तृतीया से जेठ पूर्णिमा तक चलता रहता है। मंडा पर्व एक ही दिन नहीं होता है। कहीं-कहीं पर अलग-अलग दिन में होता है। यह भी सरहुल की भांति घूमता हुआ त्योहार है। मंडा पर्व झारखंड प्रदेश का समरसत्ता का अप्रितम त्योहार है। ऐसा त्योहार अन्य जगहों पर देखने को नहीं मिलता हैं।

मंडा पर्व की कथा- मंडा पर्व की खास कथा प्रचलित नहीं है। करम, जितिया जैसी कथा इस पर्व में नहीं है। अन्य पर्वों में जो कथाएँ मिलती है। वह पैराणिक कथाओं से जुड़ी रहती हैं। जो मंडा पर्व में भी पौराणिक कथाओं में आग में कूदने की कथाएँ मिलती है। डॉक्टर गिरिधारी राम गौंझू के अनुसार इस

प्रकार है:--- " झारखंड पौराणिक भूभाग है। यहां नाग, असुर, सराक आदि के मध्य मुंडा सर्वप्रथम आ बसे। असुर तब लोहा गलाने और लोहे का औजार बनाने के लिए भट्टे पर भट्टे बड़ाते जा रहे थे। इसे पर्यावरण, जीव-जंतु, पेड़- पौधे प्रभावित होने लगे। धरती गर्म पर गर्म होती जा रही थी। असुरों को भट्ठे बंद करने के लिए कहा गया। पर वे मानते ही न थे। असुर हर वर्ष नरबलि दिया करते थे। एक बार नरबलि के लिए एक खसरा युवक मिला। लोककथा बतलाती है कि खसरे युवक को अग्नि में डालने पर वह स्वर्ण बनकर जीवित निकल आया भट्टे से। फिर क्या था सोना पाने के व बनने के लोभ में असुर आग में कूद गए। आग में कूदने, चलने की प्रथम कथा यही मिलती हैं।

झारखंड नाग भूमि रही हैं। मुंडाओं के यहाँ आने पर इस झारखंड का नाम नागदिसुम (नागदेश) कहकर संबोधित किया। महादेव की प्रिय भूमि झारखंड रही है। इसी से इस राज्य में झारखंडी महादेव, बूढ़ा महादेव, बुचा महादेव, केतुगाँ महादेव, पाट महादेव, बनखंडी महादेव, टांगीनाथ महादेव, झारखंड में सर्वत्र बिरजमान है। महादेव मंडा तो प्राय देवी गुड़ी की तरह हर गांव में सर्वत्र अवस्थित है। महादेव असुरों तथा नागों जैसे अनार्य समुदाय के आदि देव हैं। इन्हें खुश करने के लिए असुर सदैव तप करते रहे हैं। कठिन साधना करते रहे हैं। महादेव भी प्रश्न होकर असुरों को वरदान देते रहे हैं। पौराणिक कथाएँ तो यही कहती है। झारखंड का मंड़ा पर्व इसी महादेव की पूजा आराधना तक वह कठिन साधना से जुड़ा हुआ है जिसमें आराधना करने वाले भक्त जिसे यहाँ भगतिया कहा जाता है। 10-11 दिनों तक कठिन व्रत रखते हैं।और आदि देव महादेव को प्रश्न कर अपनी मनोकामना पूर्ण करते हैं। भगतिया (भक्तगण) का मंडा एक प्राचीन पर्व हैं।"(4)
अभी तक इस पर्व को मनाते आ रहे हैं।

मंडा पर्व को कब, कहां, और कैसे, क्यों, कौन आरंभ किया यह अभी तक पूर्ण रूप से पता नहीं चल पाता हैं। इतिहास में अक्षांश काल से यह मंडा पर्व सतत अविराम चला आ रहा है। इस पर्व को झारखंड के जनसमुदाय आदिवासी- सदान आदिकाल से मनाते आ रहे हैं। सदान, उरांव, खड़िया, मुंडा, वह अन्य प्रजातियां भी बड़ी श्रद्धा, भक्ति, नियम, धर्म से मनाते आ रहे हैं। इससे प्रतीत होता है कि मंडा पर्व झारखंड का एक बड़ा कठिन पर्व है। और लंबे समय तक चलने वाला लोक- उत्सव है।और मंडा पर्व झारखंडी समरसता का एक अनोखा पर्व हैं। जो झारखंडी जनसमुदाय को एक सूत्र में बांधकर रखती हैं।यह झारखंडी एकता का परिचायक हैं।

मंडा पर्व की गीत- झारखंड के सभी पर्व त्योहार में गीत-संगीत के साथ उत्सव किया जाता हैं। मंडा पर्व में भी मंडा पर्व संबंधित मंत्र गीत कुछ इस प्रकार देखा जा सकता हैं। विद्योत्तमा निधि के अनुसार—

"जय जगन्नाथ, काशी विश्वनाथ
गया गजाधर वेणी महादेव
बले शिबा महे।" (5)

इस मंत्र गीत को भगतिया (भक्तगण) हमें व्रत आरंभ करने से लेकर अंत तक बोलते रहते हैं। सभी भक्त पूरे क्षेत्र को भक्तिमय कर देते हैं। पूरे समाज आस्था भक्ति में सरोवर हो जाते हैं। मंडा पर्व में शिव की महिमा का बखान किया जाता हैं।

भगतिया का नृत्य बड़ा ही उत्तेजक होता है। खूबसूरत और आकर्षक नित्य भी होता हैं। इसमें शिव की महिमा के गीत प्राय गाए जाते हैं जो इस प्रकार है–

"हाय रे हाय रे सोना शिव शंकर जटाधारी
पलके बिछालैं मनमारी भाई, शिव शंकर जटाधारी।।१।।
एक हाथे डमरू एक हाथे त्रिशूल,
शिव शंकर जटाधारी पलके बिछालैं मनमारी,
शिव शंकर जटाधारी।।२।।
शिवजी के छाईं करे महादेवपार्वती
शिव शंकर जटाधारी पलके बिछालैं मनमारी,
शिव शंकर जटाधारी।।३।।" (6)

इस गीत में नागपुरी समाज पूरा शिव भक्ति में सराबोर हो जाता हैं। डॉक्टर विद्योतमा निधि नागपुरी लोकगीत, नृत्य, और वाद्य में शिव के आकार-प्रकार, रूप-रंग, शील स्वभाव, गणेश पार्वती का बहुत ही अच्छा चित्रण हुआ हैं। शिव भक्त शिव की महिमा का गुणगान करते हैं। जो पूरे झारखंड भक्तिमय और संगीतमय हो जाता हैं। इस प्रकार की एक और गीत देखा जा सकता है–

"ठिमिर ठिमिर बजना बाजे शिवजी चललैं बारात,
शिवजी चललैं बारात गउरी बियाहें बसाहा बरद असवार।।१।।
मुड़े लेले शिव जाटा हो जोगी काँधे बाघ केरा छाल
गले लेलैं शिव नाग माला चललैं गउरी बियाहें।।२।।
परिछे जे बाहरे भेलैं सासु मंधयिनी नाग छोड़लैं फुफकारे
अंग के वस्त्र सासु उधनी-बधनी गेल
लागी गेल शिव के ढीठ।।३।।
धीये लागिन उगब, धीये लागिन डुबब,
धीये लागिन खिलमु पताल
अइसन बैराहा बर संगें धीया ना
बिहावब भले गउँरारहतैं कुंवार।।५।।" (7)

शिव की महिमा का गुणगान करना ही भक्ति का संकेत हैं। भक्तगण हमेशा शिव की भजनगीत गाते रहते हैं। शिव की आराधना में शिव,पार्वती, गणेश का अधिक वर्णन होता है। पौराणिक कथाओं के अनुसार शिव के जाटा से गंगा की उत्पत्ति का भी वर्णन मिलती है। और शिवजी माता गउरी से शादी के लिए बारात जाते हैं। और बारात में बैल पर बैठ कर गउरा के घर पहुँचते हैं।गउरा की मां शिव को परिछने जाती है। तब शिव जी को देखकर वह डर जाती है। शिवजी के गले में नाग सांप का माला, मुड में जाटा, काँध और कमर में बाघ के छाल ये सब को देखकर शिव के सास डर जाती हैं। वह भाग कर घर जाती है। और करती है कि मेरी गउरा घर पर कुंवार रहेगी पर ऐसी बर से विवाह नहीं होगी।

इस तरह से मार्मिक गीतों के माध्यम से शिवभक्त शिव की मंड़ा पर्व आराधना करते हैं। और शिव की महिमा का गुणगान करते हैं।

निष्कर्ष :-

झारखंड के पर्व त्योहारों में मंडा पर्व की एक अलग ही पहचान है। इस पर्व में सभी तरह के भेदभाव मिट जाते हैं। इंसान सिर्फ शिव भक्ति में लीन हो जाते हैं। आदिदेव महादेव सभी लोगों का इष्ट देव हो जाते हैं। मंडा पर्व झारखंडी एकता समरसता का सूचक है। प्रेम उत्सव उमंग उल्लास से मानव मन भर जाता है। इसी तरह मानव समाज में आपसी प्रेम सदा बनाए रखने के लिए जीवन में इस तरह का पर्व त्यौहार होना आवश्यक है।

****

संदर्भ:-

1. कृष्ण, संजय : झारखंड के पर्व त्यौहार मेले और पर्यटन स्थल, पृष्ठ संख्या 195, प्रभात प्रकाशन दिल्ली। वर्ष -2017.
2. गौंझ , डॉ०. गिरधारी राम : झारखंड के लोक संगीत, पृष्ठ संख्या 159, झारखंड झरोखा रांची।वर्ष-2015.
3. गौंझ, डॉ० गिरधारी राम : ऋतु के रंग मांदर के संग, पृष्ठ संख्या 71/72 , प्रिय साहित्य सदन दिल्ली।वर्दिल्ली।वर्ष-2018.
4. गौंझ ,डॉ० गिरधारी राम : ऋतु के रंग मांदर के संग, पृष्ठ संख्या 69/70, प्रिय साहित्य सदन दिल्ली।वर्ष-2018.
5. निधि, डॉ विद्योतमा : नागपुरी लोकगीत नृत्य एवं वाद्य, पृष्ठ संख्या 216, पृथ्वी प्रकाशन दिल्ली।,वर्ष -2020.
6. उपर्युक्त , पृष्ठ संख्या 216.
7. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या 217.

सेक्स, जेंडर एवं लैंगिकता के आधार पर क्वीर का एक संक्षिप्त अध्ययन

सलीजा ए पी
सहायक प्राध्यापक –हिंदी
शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय कोझीकोड- केरल

क्वीर एक अवारित शब्द (umbrella word) है, जो ऐसे व्यक्तियों का वर्णन करता है जो विषमलैंगिक नहीं हैं, और जिनके जेंडर समाज के कायदे के अनुकूल नहीं है । 'क्वीर' शब्द ने LGBTQIA+ व्यक्तियों के लिए एक सामान्य और सामाजिक रूप से स्वीकार्य तरीके के रूप में अपने और अपने समुदाय को संदर्भित किया है।

हर कोई, अपने आप को 'लिंग' (sex) के ज़रिये ही परिभाषित करता हैं, लेकिन यह परिभाषा आम तौर पर समाज द्वारा पूर्व निर्धारकों से होती है। समाज ने कायदे-कानून बना रखे है कि कोई विशिष्ट लिंग में जन्मे हो तो विशिष्ट रूप से पेश आना चाहिए, तुम्हारा मन जो भी कहे वह महत्व नहीं रखता। असल में जेंडर हमारा लिंग (जननांग) के आधार पर नहीं है, वह हमारी सोच के आधार पर है। दिमाग जो कहता है, वही हमारा जेंडर है I हम जिस ओर आकर्षित होते है वह ही हमारी लैंगिकता है। इसका मतलब यही है कि सेक्स व लिंग जन्म से मनुष्य के साथ है (लेकिन उसकी पहचान बाद में अलग हो सकता है) I ऐसा भी हो सकता है कि किसी को जन्म के अवसर पर लिंग ही ना हो, और जो है वह सिर्फ नाम मात्र हो या जो है उसका उसके मन और दिमाग से कोई सम्बन्ध नहीं रखता हो। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति, पुरुष का जननांग लेकर जन्म लेता है तो उसका सेक्स पुरुष का हुआ, लेकिन इस से यह निर्धारित नहीं किया जाता कि उसका जेंडर पुरुष का है, उसका जेंडर स्त्री का भी हो सकता है, वैसे ही जेंडर स्त्री का होने से यह भी पक्का नहीं कि उसका लैंगिक आकर्षण पुरुष से हो, वह स्त्री से भी हो सकता है, या दोनों से भी हो सकता है, उसी तरह विपरीत रूप में भी। समझने में कठिनाई है मगर यही सच्चाई है।

क्वीर का अपना एक स्वत्व है । विशेष अधिकार व सुविधा (प्रिविलेज) के साथ जीने वाले लोग, जिस समाज का निर्माण करते हैं, उस समाज में कुछ लोगों को जानबूझकर बाहर रखते है। सामान्यतः लैंगिक अल्पसंख्यकों को LGBTQIA+ के नाम से पहचाना जाता है और क्वीर शब्द को अवारित या छाता शब्द के रूप में इस्तेमाल करते हैं। क्वीर शब्द के अंतर्गत वे सभी लोग आते हैं जो विषम लैंगिक (Hetro Sexual) व सिस जेंडर नहीं है, अर्थात जिसकी जेंडर स्त्री व पुरुष का नहीं है या जिसकी लैंगिकता समाज के कायदे के अनुकूल नहीं है, जिसको समाज विचित्र कहता आया है, और उनको उसी अर्थ में 'क्वीर' नाम प्राप्त हुआ। दरअसल, क्वीर के अंतर्गत सिर्फ ट्रांसजेंडर या समलैंगिक ही नहीं है बल्कि इसमें कई तरह की विभिन्नताओं के साथ, अनेक विभाग है। जेंडर और लैंगिकता में शारीरिक व मानसिक रूप से अलगाव रखने वाले सभी इस विभाग में आते हैं।

एक समलैंगिक व्यक्ति को प्रेम करने का और एक अलैंगिक व्यक्ति को प्रेम न करने का पूर्ण अधिकार है, उस अधिकार के लिए क्वीर समाज एक कंठ से आग्रह करता है I यह भी क्वीर सिद्धांत का मुख्य दायित्व है। क्वीर और उसके अर्थ को बेहतरीन तरीके से समझने के लिए पहले **लिंग, जेंडर और लैंगिकता** नामक तीन शब्दों

को गहराई से समझना और उनके अंतर को जानना अनिवार्य होजाता है।

1.3. लिंग (sex), जेंडर और लैंगिकता (sexuality)

इस अंश का उद्देश्य लिंग, जेंडर और लैंगिकता (sexuality) को परिभाषित करना और इन के अंतर को समझाना है । ये तीनों ही शब्द उपयोग में लाने की गलती में यथार्थ अर्थ से हटकर दूसरे अर्थों में या गलत अर्थों में प्रयुक्त किया जा रहा है, और उन्हीं अर्थों में इन शब्दों की पहचान होने लगी है।

जैविक रूप से हमारी पहचान, सेक्स व लिंग के द्वारा की जाती है, अर्थात जननांगों के आधार पर यह समझना कि हम स्त्री, पुरुष या उभय लिंगी है । जेंडर, सामाजिक रूप से हमारी पहचान है, जिसके लिए सामाजिक व्यवहार साथ देता है और यह हमारे दिमाग और हमारी भावनाओं पर केंद्रित है।

Sexuality या लैंगिकता दूसरों से हमारे लैंगिक रुझान या यौन आकर्षण से पता चलता है, इसी के आधार पर समझा जाता है कि किस को, किस विभाग के प्रति लैंगिक आकर्षण है।

1968 में मनोवैज्ञानिक रोबर्ट **जे.** स्टोलर (**Robert J. Stoller**) ने अपने शोध परियोजना कार्य के दौरान **85** मरीजों का अध्ययन किया। इस अध्ययन का केंद्र बिंदु सेक्स और जेंडर के बीच के अंतर को जानना व जेंडर पहचान की समस्या पर बात करना था। स्टोलर '**Sex and Gender: The Development of Masculinity and Femininity**' अपनी पुस्तक में सेक्स और जेंडर के बीच के अंतर पर बात करता है । स्टोलर ने 'जेंडर का अर्थ प्रकृति से न मानकर मनोवैज्ञानिक व सांस्कृतिक संदर्भों से जोड़ कर देखा और कहा कि सेक्स का संबंध स्त्री और पुरुष से है तो जेंडर का संबंध स्त्रीत्व व पुरुषत्व से है। ये दोनों ही शब्द लिंग की प्राकृतिक (नैसर्गिक) संरचना से स्वतंत्र अर्थ ग्रहण करते हैं।' जेंडर और कामुकता के संबंध में वह लिखता है- 'लैंगिकता की सीख उन्हीं अवधारणाओं से होती है जो एक इन्सान को प्रसवोत्तर मुख्य और सांस्कृतिक रूप से सिखाया जाता है'। रोबर्ट स्टोलर का यह अब तक का पहला स्वतंत्र अध्ययन था, जिसमें लिंग और जेंडर को अलग-अलग रूपों में सामने लाया गया I

1.3.1.लिंग (sex)

लिंग में महिलाओं और पुरुषों की जैविक विशेषताएं शामिल हैं। यह मानव और जानवरों में जैविक विशेषताओं को संदर्भित करता है या शारीरिक विशेषताओं के साथ जुड़ा हुआ है जिसमें क्रोमोसोम, जीन, अभिव्यक्ति का स्तर, प्रजनन और यौन शरीर रचना शामिल हैं। सेक्स को सामान्यतः महिला या पुरुष के रूप में वर्गीकृत किया जाता था। 'Sex' या 'लिंग' का अर्थ जन्म के वक़्त निर्धारित करने वाला मनुष्यों का शारीरिक विभाजन है, जैसे पुरुष, स्त्री, इंटर-सेक्स, ऐसा कहने पर ही ये विभाजन कुछ हद तक पूर्ण हो जाता है। जन्म के अवसर पर निर्धारित किया जाने वाला लिंग, कभी-कभी स्व:पहचान से भिन्न हो सकता है।

1.3.2. जेंडर

जेंडर आइडेंटिटी या जेंडर पहचान का मतलब व्यक्ति की आंतरिक भावना पुरुष हैं या महिला या फिर दोनों का मिश्रित रूप है। एक व्यक्ति के लिंग की पहचान दिमाग में है, जो बाहर दिखाई देता है, वह नहीं है। एक व्यक्ति के लिए जेंडर की पहचान सिर्फ उसकी अपनी है, अपनी सोच है जिस पर दूसरों की पहुँच नहीं है।

जेंडर से मतलब है कि कैसे एक व्यक्ति बाहरी रूप से अपना लिंग पहचान व जेंडर आइडेंटिटी दर्शाता है, इसमें फिजिकल एक्सप्रेशन शामिल हैं । जैसे कि व्यक्ति के कपड़ों के स्टाइल, मेकअप और सामाजिक अभिव्यंजना जैसे नाम और सर्वनाम को चुनना । जेंडर के कुछ ऐसे उदाहरण है - स्त्रीत्व, पुरुषत्व और उभय लिंग।

सामाजिक संदर्भों में जब हम जेंडर की बात करते हैं तो इसका पहला प्रयोग लिंग (**Sex**) और लिंग की भूमिका (**Sex Role**) के अंतर को स्पष्ट करने के दौरान सामने आता है, जहाँ स्त्री और पुरुष का जैविक आधार पर विभाजन न होकर समाज द्वारा तय मानदंडों पर विभाजित होता है।

पूर्ववर्ती काल से लेकर अब तक का जेंडर सम्बन्धी सारा अध्ययन स्त्री और पुरुष को ही सामने रखकर किया गया, और यह भी बताया गया कि जन्म से जो लिंग है उसी के आधार पर जेंडर की पहचान होती है, होना चाहिए। असल में जेंडर की पहचान शरीर के किसी अंग से नहीं बल्कि दिमाग से होनी चाहिए।

लैंगिकता (Sexuality)

लैंगिकता को एक इंसान के शरीर एवं इच्छाओं के साथ जोड़ते हुए समझा जाना चाहिए। लैंगिकता को स्वाभाविक रूप से प्राकृतिक और सार्वभौमिक अनुभवों के रूप में नहीं समझा जाना चाहिए, जिनका गठन सामाजिक और राजनीतिक बल द्वारा हुआ है। यह वर्ग जाति और नस्ल से, खासकर जेंडर आस पास सत्ता के संबंधों से जुड़ा हुआ है । लैंगिकता की सांस्कृतिक समझौता स्त्रीत्व व पुरुषत्व के सामान्य आशयों पर गढ़ा गया है और वह पुरुष और स्त्री के लिए समाज द्वारा पूर्व निर्धारित होती है।

रूमानी आकर्षण और लैंगिक बर्ताव के आधार पर लैंगिकता की पहचान होती है। लैंगिकता के आधार में क्वीर का विभाजन बहुत ज्यादा है ।LGBTQIA+ में 'T'और 'I' को छोडकर ज़्यादातर विभाजन लैंगिकता के आधार पर है।

सेक्स प्रकृति की देन है, जब कि जेंडर मनुष्य की उपज है। जेंडर में विचार और एहसास के अनुसार बदलाव आ सकता है। इस का मतलब सेक्स जननांगों पर निर्भर है। जेंडर हमारे विचारों पर आधारित है, इसलिए जेंडर में बदलाव आने पर सेक्स भी बदला जा सकता है । लैंगिकता सेक्स से अलग है, लैंगिकता एक बहुत व्यापक शब्द है और इसके कई घटक हैं।

हम सोगी **SOGIE (SexualOrientaion Gender Identity and expression)** के द्वारा हमारा लैंगिक एवं जेंडर पहचान कर सकते हैं । लैंगिक अभिविन्यास, सालिंग अभिव्यक्ति और सालिंग पहचान के आधार पर ही वह जेंडर व लैंगिकता के किस विभाग में है, यह समझा जाता है। उदाहरण के लिए एक महिला, जन्म के अवसर पर महिला का जननांग होने के कारण एक स्त्री बताई गई थी, उसकी सालिंग पहचान महीला के ही होने के कारण उसे हम 'सिस जेंडर' महिला कह सकती है । उसकी लैंगिक रुझान पुरुषों के प्रति है, इसलिए हम उसको विषम लैंगिक कह सकते है। वह पान्ट्स पहनना पसंद करती है तो यह उसकी जेंडर एक्सप्रेशन है । तो यह एक सिसजेंडर हेट्रो और सेक्सुअल महिला है, जो पैन्ट्स पहनना पसंद करती है। यही सब मिलकर उसका अपना **SOGIE** है।

LGBTQIA+वह संक्षिप्त रूप है जो अक्सर ऐसे व्यक्तियों का वर्णन करता है जो विषमलैंगिक या सिस जेंडर के रूप में नहीं पहचाने जाते। **LGBTQIAAP2S**... इस तरह ये विभाजन आगे जाता है। इसके संक्षिप्त अक्षरों में 'L' लेस्बियन के लिए, 'G' 'गे' के लिए,'B' बईसेक्सुअलया उभयलिंगी के लिए, 'T' ट्रांसजेंडर के लिए प्रयुक्त किया जाता है। 'Q'के लिए दो अर्थ बताया जाता है। एक क्वीर के लिए,जो सामान्य रूप से एक अवारित शब्द के रूप में उपयुक्त किया जाता है । दूसरा अर्थ Q माने क्वेसटीयन व सवाल है जो एक विशेषव्यक्ति द्वारा अपने जेंडर और लैंगिकता पर उठाया जाता है 'I' इंटरसेक्स के लिए हैं। 'A' अक्षर आली (ally) के लिए है। जो

क्वीयर लोगों को मानसिक और प्रायोगिक रूप से समर्थन करता है, सहारा देता है उनको Ally कहते है। दूसरा'A'एसेक्सुअल के लिए जो किसी से भी लैंगिक रुझावनहीं रखता, उन लोगों में सिर्फ रुमानी रुझाव होता है। 'P' पनसेक्सुअल शब्द का संक्षेप है, जो bIsexual शब्द से अर्थ व्यप्ति में अलग है, ऐसे एक व्यक्ति को किसी भी चीज से रुझाव हो सकता है। '2S' दो स्पिरिट या दो आत्माओं के लिए खड़ा है, जो व्यक्तित्व, लैंगिकता और जेंडर आइडेंटिटी में LGBTQIA+ में प्रतीक इस तथ्य को दर्शाता है कि कई यौन अभिविन्यास और लिंग पहचान हैं जो व्यापक LGBTQIA+ समुदाय का हिस्सा हैं I इन सब विभागों के लिए क्वीर एक अवारित शब्द है I

क्वीर एक सिद्धांत के रूप में सामाजिक रूप से स्थापित मानदंडों और द्वैतवादी श्रेणियों पर सवाल उठता है I क्वीर सिद्धांत के अंतर्गत, पुरुष वर्चस्व वाले समाज में स्त्री के साथ, सवर्ण द्वारा किया जाने वाले उत्पीड़नों में दलितों के साथ, बहुतायत की भयानकता भरे व्यवहार में अल्पसंख्यक के साथ, क्वीर फोबिक समाज में क्वीर मनुष्यों के साथ खड़े होना आता है, और इन सब के लिए क्वीर सिद्धांत आवाज़ उठाता है।

****

संदर्भ :-

I. www.Barker,M.John & Scheele,21-09-2019 Julia (2016) – Queer A Graphic History – UK, Icon Books Ltd.

II. www.researchgate.net -sexand gender : the Development and feminity - Robert Stoller

III. .पृष्ठ संख्या 29, Sara warner -Acts of Gaiety -The University of Michigon press -2012

IV. Jagose, A. (1997) – Queer Theory: An Introduction – Newyork, Newyork

Analysis of Production and Growth pattern of Lentil Pulse crops in the state of Madhya Pradesh

Jageshwar Prasad Prajapati
Assistant Professor Economics, Govt. Shyam Sundar Agrawal P.G. college Sihora, Jabalpur, M.P. 483225

Dr. Sunil Kumar Tripathi,
Assistant Professor Economics, Govt. Tilak P.G. College Katni, M.P.

Abstract- *Pulse crops are an important and essential part of Indian diet. Lentil pulse crop become more important due to its rich nutritive value. Lentil production reached an all-time high of 1.61 million tons (Mt) over an area of 1.55 million hectares (Mha), with a record productivity level of 1,034 kg/ha in the year 2017-18 in India. The crop was cultivated on 14 lakh hectares (Lha), with Madhya Pradesh leading in both area and production and ranked first in India, contributing 35% in each category during 2016-17 to 2020-21. To estimate the trend coefficient of area, production and yield of lentil pulse crop computed the annual compound growth rate in the state of Madhya Pradesh. The result revealed that the growth of this pulse crop was time constant during the present study.*

Key word- Pulse crop, Nutritive value, trend coefficient, growth in area, production and yield.

Introduction- Pulses are a vital food crop worldwide, known for their high protein content. In India, they play a crucial role not only in the diet but also in the economy, contributing significantly to exports and yielding substantial financial gains. As a major source of protein, pulses are integral to the Indian diet, complementing the carbohydrate-rich meals consumed by people across all demographics. India stands as the largest producer and consumer of pulses globally. With a protein content ranging from 20 to 25 percent by weight, pulses offer double the protein of wheat and triple that of rice. Globally, pulses are cultivated on approximately 93.18 million hectares (Mha), with a production of 89.82 million tons (Mt) and an average yield of 964 kg/ha. India, with over 28 Mha dedicated to pulse cultivation, is the world's leading producer, accounting for 31 percent of the global area and 28 percent of total production. (Annual Report, 2021-22)

The substantial and noticeable upward trends in pulse production during 2016-17, 2017-18, and 2020-21—reaching 23.13 Mt, 25.42 Mt, and 25.46 Mt, respectively—are remarkable success stories. Pulse

| शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648 |
वर्ष - 02 अंक– 05 जनवरी - मार्च - 2024 Impact factor– 3

productivity increased by 13 percent to 885 kg/ha in 2020-21 and by 9 percent to 853 kg/ha in 2017-18, compared to 786 kg/ha in 2016-17. Overall, production growth achieved a 10 percent increase over the 2016-17 levels. (Annual Report, 2021-22) Madhya Pradesh occupied 60.74 lakh hectare area of pulses and its contribution in India was 21%, Pulses production was 59.70 lakh tons and country level contribution approx. 25% and yield was 983 kg/ha during the period of 2016-17 to 2020-21. Lentil production reached an all-time high of 1.61 million tons (Mt) over an area of 1.55 million hectares (Mha), with a record productivity level of 1,034 kg/ha in the year 2017-18. The top six lentil -producing states were Madhya Pradesh (0.68 Mt), Uttar Pradesh (0.50 Mt), West Bengal (0.15 Mt), Bihar (0.14 Mt), Jharkhand (0.06 Mt), and Rajasthan (0.03 Mt). The crop was cultivated on 14 lakh hectares (Lha), with Madhya Pradesh leading in both area and production and ranked first in India, contributing 35% in each category shown in table no. 1. It was followed by Uttar Pradesh, West Bengal, and Rajasthan, each contributing 12% and 11%. (Annual Report, 2021-22)

Table 1: Area, productio

	M.P.	All India	Rank
Area	4.93(35%)	14.29	1st
Production	4.73(35%)	13.34	1st
Yield	959	934	3rd
Parenthesis shows the share of percentage			

Source – Annual Report 2021-22, DPD Bhopal

Table 2: Nutritive value of Lentil Pulse Crop

Protein	24-26%	Carbohydrate	57-60%
Phosphorus	300mg/100mg	Calorific value	343-346 kcal/100g
Fat	1.3%	Vitamin C	10-15mg/100g
Dietary	11-12%	Vitamin A	(450 IU) and Riboflavin
Calcium	69mg/100mg	Iron	7mg/100mg

Source- Pulses in India: Retrospect and Prospect Report 2018, DPD Bhopal

This crop is a valuable food source, primarily consumed as dry seeds, either whole, decorticated, or split. In the Indian subcontinent, it is commonly prepared as 'Dal' by removing the outer skin and separating the cotyledons. It is also used in snacks, soups, and other dishes. Known for being easy to cook and highly digestible, it is often recommended for patients due to its high biological value. Additionally, the dry leaves, stems, and broken pods serve as nutritious cattle feed. Grains that are bold, well-shaped, and visually appealing are in high demand for export, often fetching premium prices.

Chart 1: Top Potential districts of Lentil in area (Lha), Production (Lt) and Yield (Kg/ha)

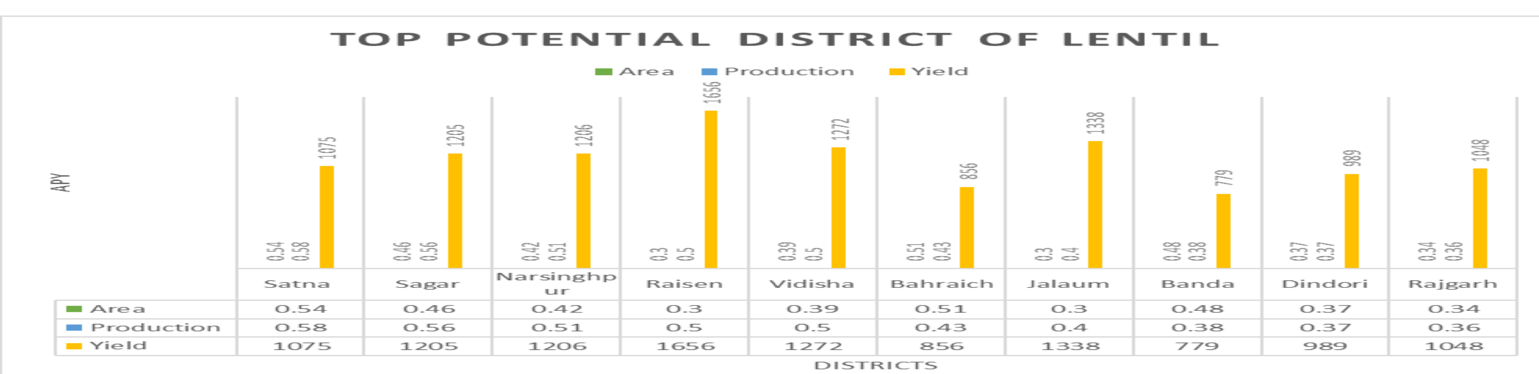

	Satna	Sagar	Narsinghpur	Raisen	Vidisha	Bahraich	Jalaum	Banda	Dindori	Rajgarh
Area	0.54	0.46	0.42	0.3	0.39	0.51	0.3	0.48	0.37	0.34
Production	0.58	0.56	0.51	0.5	0.5	0.43	0.4	0.38	0.37	0.36
Yield	1075	1205	1206	1656	1272	856	1338	779	989	1048

Source- Directorate of Pulses Development Bhopal (M.P.)

Chart 1 shows the Inter district analysis in the country. The above presented chart revealed that district Satna of M.P. with 5.39% of production has the highest share followed by Sagar (5.18%), Narsinghpur (4.71%) and Raisen (4.62%) of M.P. District-wise area, production and yield of top ten district of India in respect of production are presented below which contributed 29.56 per cent and 42.53 per cent of area and production of the country.

Objectives of the paper:

The main objectives of the paper are:

To analyze the trend and growth rate in area, Production and yield of lentil pulse crop in Madhya Pradesh.

A comparative study of lentil pulse crop production between states and country.

Hypothesis: -H_0: There is no trend and Growth rate of area, production and yield in lentil pulse crop in the state of Madhya Pradesh.

H_1: There is a positive trend and growth rate of area, production and yield in lentil pulse crop in the state of Madhya Pradesh.

Sources of Data -To fulfill the objective of the present paper the secondary data has been used. The secondary data for the period of 1970-71 to 2014-15 on area, production, and yield of Lentil pulse crop in Madhya Pradesh was collected from the various sources like Indian Agricultural statistics, Agriculture statistics at a glance and E- pulses data book from ICAR- Indian institute of pulses research. State wise area, production and productivity data for the period of 2016-17 to 2020-21 compiled from directorate of economic & statistics, DA&FW as per fourth advance estimates and Directorate of Pulses Development Bhopal.

Research Methodology-The annual Compound growth rate statistical method was employed for the analysis and interpretation of data and fulfill the objectives of the present paper:

Compound annual growth rate (CAGR)-The compound annual growth rate was worked out the propensity of the variable to increase, decrease or stagnant over the period of time. It also indicates the magnitude of the rate of variation in the variable under consideration per unit of time. The Compound Growth Rate has been calculated with the help of exponential function which is as Exponential Function

$Y = ab^x$

Log Y = loga + Xlogb

CGR= Antilog (b-1) ×100

Result and Discussion -To estimate the trend and growth rate of area, production and yield of lentil pulse crop in the state of Madhya Pradesh was calculated annual compound growth rate. The result has been presented below

Table 3 Annual Compound Growth rate of Lentil in Madhya Pradesh

Variable	phase	Trend Coefficient	T- ratio	F-ratio	Sig
A	I short run (1970-71 to 1986-87)	1.000*	249.985	0.005	0.942
P		1.002*	123.343	0.048	0.000
Y		1.002*	151.681	0.102	0.754
A	II short run (1987-88 to 2003-04)	1.035*	209.212	52.336	0.000
P		1.032*	153.008	22.730	0.000
Y		0.997*	287.541	0.950	0.345
A	III short run (2004-05 to 2020-21)	0.994*	154.435	0.739	0.404
P		1.050*	75.717	13.699	0.002
Y		1.050*	84.181	20.969	0.000
A	IV long run (1970-71 to 2020-21)	1.016*	747.030	139.133	0.000
P		1.030*	494.955	217.771	.000
Y		1.014*	512.550	51.772	0.000
*-Significant at 1% level of significance					

Source-Compiled by researcher In this table analyzed the compound annual growth rate in lentil pulse crops for the period 1970-71 to 2020-21. This period divided into four phases.

The compound annual growth rate in area for the period 1970-71 to 1986-87 in area was 1.000 and statistically significant. the f- ratio reported with 0.005 and was found statistically insignificant, which suggest that the model was found insignificant. In the period 1987-88 to 2003-04 in area of lentil pulse crops in Madhya Pradesh the compound annual growth rate was 1.035 and statistically significant. the f- ratio reported with 52.336 and was found statistically significant, which stated that the model was found significant. the compound annual growth rate in area for the period 2004-05 to 2020-21 was 0.994 and statistically significant. the f- ratio was found insignificant, which suggest that the model was found insignificant. in long run series for the period 1970-71 to 2020-21 in area the compound annual growth rate was 1.016 and statistically significant the f- ratio reported with 139.133 and was found significant, which suggest that the model was found significant.

In above discussion suggest that the area growth rate model in 2nd and long run series was found significant. whereas, in rest of the case it was found insignificant. However, t-ratio of β coefficient was found significant in each case, which reveals the growth in area of lentil was timed constant.

For the period 1970-71 to 1986-87 in production of lentil pulse crops the compound annual growth rate was 1.002 and statistically significant. the f- ratio reported with 0.048 and was found statistically significant, which suggest that the model was found significant. In production of lentil pulse crops the compound annual growth rate for the period 1987-88 to 2003-04 was 1.032 and statistically significant. The f- ratio reported with 22.730 and was found significant, which suggest that the model was found significant. the compound annual growth rate in production of lentil pulse crops for the period 2004-05 to 2020-21 was 1.050 and statistically significant. the f- ratio reported with 13.699 and was found statistically significant because the value of P is 0.002 which is less than 0.005. which stated that the model was found significant. in long run phase in production for the period 1970-71 to 2020-21 the compound annual growth rate was 1.030 and statistically significant. the f-ratio reported with 217.771 and was found significant, which suggest that the model was found significant.

In this discussion suggest that the production growth rate model in 1st to long run series was found significant. The t- ratio of β coefficient was found significant in each case, which reveals the growth in production of lentil was time constant.

The compound annual growth rate in yield for the period 1970-71 to 1986-87 was 1.02 and statistically significant. the f- ratio reported with 0.102 and statistically insignificant, which suggest that the model was found insignificant. In the period 1987-88 to 2003-04 in yield of lentil pulse crops the compound annual growth rate was 0.997 and statistically significant. the f-ratio reported with 0.950 and was found insignificant, which suggest that the model was found insignificant. Yield of lentil pulse crops computed the compound annual growth rate for the period 2004-05 to 2020-21 was 1.056 and statistically significant. The f- ratio reported with 20.969 and was found significant, which suggest that the model was found significant. in long run series in yield of lentil pulse crops for the period 1970-71 to 2020-21 the compound annual growth rate was 1.014 and statistically significant. the f- ratio reported with 51.772 and was found significant, which suggest that model was found significant.

In the above discussion suggest that the yield growth rate model in 3rd and long run series was found significant. whereas, in rest of the cases it was found insignificant. however, the t- ratio of β coefficient was found significant in each case, which reveals the growth in yield of lentil was time constant.

Conclusion -Pulse crops are an important and essential part of Indian diet. Lentil pulse crop become more important due to its rich nutritive value. The present paper analyzed the area, production and yield status in the state of Madhya Pradesh. The study found that the growth in area of lentil pulse crop in Madhya Pradesh was statistically significant in each case. Which suggest that the growth rate of lentil pulse crop in this state was time constant during the study period. Production and yield growth of lentil pulse crop also registered positive and significant except some cases. Which suggest that the growth in production and yield of lentil pulse crop was time constant in the state of Madhya Pradesh during the study period. It is said as per the result of the study that in case of lentil pulse crop Madhya Pradesh is the dominant state in terms of area, production and yield. That's why it is known as Dalhan state in the country. With the help of study of the above study following policy recommendation are given:

- To increase level of awareness about various initiatives of the government.
- To provide certified seeds and fertilizers to farmers through proper channel.
- To provide the adequate level of power supply during the cultivation time of rabi pulse crop.

****

References

1. Reddy A., Amarender2004, Consumption Pattern Trade and Production Potential of Pulses, Economic and Political Weekly, 39.4854-4860.
2. Anil Kumar Singh, SS Singh (2015), Pulses Production in India: Present Status, Bottleneck and Way Forward. Journal of Agri Search 2(2), 75-83.
3. Agriculture statistics at a glance (2021), department of agriculture and farmers welfare, department of statistics and economics.
4. Shrivastava A. And Awasthi, P. K. 1(992) growth of pulses in Madhya Pradesh. India journal of pulses research ,5(1):109 -111.
5. Sodhiya H.C. (1989). Growth trend in area production and productivity of cereals pulses and oil seeds in Sagar division Madhya Pradesh economic affairs Calcutta, 34 (2):112-114
6. Directorate of Economics and statistics, G. (2023). *Madhya Pradesh Economic Survey 2022-23.* Bhopal: Directorate of Economics and statistics, Go MP.
7. Gupta, S. P. (2012). *Statistical Methods.* New Delhi: Sultan Chand & Sons.
8. Yadav Swati (2013) Dynamics of Lentil Production in Major Producing district of Madhya Pradesh, JNKVV Jabalpur (M.P.).

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 02 अंक– 05 जनवरी - मार्च - 2024 Impact factor– 3

दलित आत्मकथाओं में अभिव्यक्त जीवन संघर्ष

डॉ. रमेश मनोहर लमाणी
At-Post-Siddapur (Shivnagar)
Taluka-Bilagi, Dist- Bagalkot
Pin-587117, State-Karnataka

भारतीय साहित्य में पहली बार मराठी में दलित साहित्य लिखा गया। बाद में अनुवाद के माध्यम से प्रेरणा लेकर हिन्दी भाषा के प्रदेशों में दलितों ने लिखना प्रारंभ किया। आज हिन्दी दलित साहित्य विभिन्न विधाओं में हमारे समक्ष है- कहानी, कविता, उपन्यास और आत्मकथा के रूप में सबसे पहले आत्मकथा लिखने की परंपरा मराठी साहित्य से शुरू हुई। आज हिन्दी में भी आत्मकथा सबसे सशक्त विधा के रूप में सामने आई है। दलित आत्मकथाओं ने दलित समुदाय के शोषण, अपमान, अवहेलन-तिरस्कार लिखकर पूरे समाज को यह बता दिया कि हमारा-जीवन जानने के लिए किसी रची हुई कहानी या आख्यान की जरूरत नहीं, स्वयं हमारे जीवन को देखना जरूरी है। जो प्रमुख आत्मकथा हिन्दी दलित साहित्य में आए हैं, वे इस प्रकार हैं- मोहनदास नैमिषराय की 'अपने अपने पिंजरे', ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन', कोशल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप', सूरजपाल चौहान की 'तिरस्कृत', डॉ.डी.आर.जाटव की 'मेरा सफर मेरी मंजिल', माताप्रसाद की 'झोपड़ी से राजभवन, नरेंद्र महर्षी की 'मेरे मन की बाइबल', डॉ.श्योराज सिंह बेचैन की 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर', प्रो. श्यामलाल की 'एक भंगी कुलपति की अनकही दास्तान', सुशीला चाकभौरे की 'शिकंजे का दर्द' और तुलसी राम की 'मुर्दहिया'। ये आत्मकथाएँ वेदना के गर्भ से जन्मी पुरानी सामाजिक संरचनाओं को अस्वीकार करती है। इन आत्मकथाओं के लेखकों ने पूरे समाज व्यवस्था पर तमाचा मारा है, इसलिए इनका अपना विशेष महत्व हैं। क्योंकि इन आत्मकथाओं में लेखकों के वास्तविक जीवन का कटु सत्य छिपा हुआ है।

इन आत्मकथाओं में लेखक महोदय ने स्वयं जीये हुए परिवेश का यथार्थ अंकन किया है। इन आत्मकथाओं में निहित मूल संवेदनाओं का पक्ष इतना प्रबल है कि सारी वास्तविकता आइने के समान साफ दिखाई देती है।

मोहनदास नैमिशराय ने 'अपने-अपने पिंजरे' में मेरठ जिले के चमारों की स्थिति और उनके जीवन को अंकित किया है। समाज में व्यक्ति का दर्जा और हैसियत उसकी जाति से तय की जाती है। लेखक ने इस समस्या से गुजरते हुए लिखा है- "हिन्दु समाज में आदमी की कीमत उसकी जात से आँकी जाती थी। हमें विशेष तौर पर – चमार- चूहडे नाम से संबोधित किया जाता है।" भारतीय जातिग्रस्त समाज में हर एक को सबसे पहले व्यक्ति की जाति के बारे में जानने की जिज्ञासा रहती है। दलित जानते ही सवर्ण उनसे मुँह मोड लेते हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' में दलितों की दयनीय स्थिति का चित्रण प्रस्तुत हुआ है। बरला गाँव के व्यक्तियों पर त्यागियों से होनेवाले अत्याचार का यथार्थ अंकन हुआ है। 'जूठन' में हर आदमी लेखक से पूछते है कि, "तू कूण जात का है। अबे चूहडे के दूर हठ बदबू आ रही है।" चूहडे जाति के कारण कुलकर्णी की बेटी सविता वाल्मीकि के प्रेम से मुँह मोड लेती है। सन् 1980 में जब पत्नी सहित वाल्मीकि जी रेल में सफर करते समय एक मंत्रालय के परिवार से परिचय हुआ और आत्मीयता भी बढ़ गयी। पर जैसे ही भंगी जात सुनते ही बिगड जाते है और डिब्बे में सन्नाटा छा जाता है।

सूरजपाल चौहान ने 'तिरस्कृत' आत्मकथा में ब्राह्मणवादी उत्पीडन के साथ- साथ अपने परिवार, रिश्तेदारी, दलित समाज द्वारा मिली मानसिक पीड़ा और तिरस्कार को उद्घाटित किया है। इस आत्मकथा द्वारा जाति का बीज़ कितना गहरा एवं भयानक होता है, इसका स्पष्ट रूप मिलता है। सूरजपाल चौहान अपने गाँव जा रहे थे तो बच्चे और पत्नी को प्यास लगी, कुएँ से पानी निकालकर पीने लगे तो जमीनदार दाँत पीसता हुआ बोला- "और भंगनिया, नेक पीछे कुहट के पानी पी, यहाँ शहर ना गाँव है, मारे लठिया के कमर तोड़ दई जाएगी.......भैंचे-भंगियों और चमट्टा के सहर में जाके नए-नए लत्ता पहन के गाँव में आ जाता है, कुछ पत्तो न चलतु कि जे भंगिया के है, कि नाँय।" इस प्रकार सूरजपाल चैहान के हर जगह सवर्णों के व्यवहार को झेलना पड़ा। उन्होंने भंगी होने का दर्द महसूस किया।

श्योराज सिंह बेचैन की 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' आत्मकथा में एक अस्पृश्य बालक का बचपन आसूँ, तकलीफ और संघर्ष से भरा है। बालक श्योराज सिंह के सर पर पिता का साया नहीं था। यहाँ कैसी नियती है कि हर्षमय और उल्लासमय बचपन की, स्मृतियों की जगह त्रासद स्मृतियों ने ले ली थी। ये स्मृतियाँ लेखक के मन पर अमीठ छाप छोड़ी हुई है। बालक श्योराज ने अपने परिवार को ढ़ोने के लिए अंधे बाबा के साथ कुट्टी काटने, मशीन खींचने तथा मृत पशु ढोने का काम किया। फिर भी परिवार की भूख को शांत करना असंभव था। वे लिखते हैं- "अभी तक प्राण निकले थे। रात को सब बस्ती सो रही थी और हम सब भूख के मारे व्याकुल थे। बब्बा ने अपने पास जमा आधा सेर चावल की गाँठ दी....... ताई ने चावल गरम कर दिये थे। नमक डालकर हमने

मथोडे-थोडे बाँट खाए।" जब माँ का पुर्नविवाह गरीब रामलाल से करवा दिया तो वह तीन सौतेले बच्चों का पालने में असमर्थ था। परिणाम स्वरूप श्योराज एवं भाई-बहनों को दोहरी मार झेलनी पड़ती थी। माता प्रसाद की 'झोंपड़ी से राजभवन तक' आत्मकथा स्वतंत्र भारत में जहाँ एक और दलित के राजभावन पहुँचने का यात्रा को रेखांकित करती है। वहीं स्वतंत्रता से पूर्व झेले गए अनेक संत्रास का उद्घाटन बडे शिद्दत के साथ करती है। इस समाज व्यवस्था में दलितों के बाल काटने के लिए हिन्दू नाई तौयार नहीं होते। "दूसरे दिन बाज़ार में नाई की दुकान पर बाल बनवाने गया तो वह भी हिन्दू नाई था। उसने जब हमारी जाति जानी तो बाल बनाने से इनकार कर दिया।" दलित होने के नाते लेखक को इस घटना से काफी बुरा अनुभव होता है।
डॉ.डी.आर जाटव की 'मेरा सफर मेरी मंजिल' आत्मकथा में लेखक का जन्म एक जाट (चमार) परिवार में हुआ और बचपन में पिता का साथ उठ गया। घर में माँ, बहन, पत्नी और स्वयं अभाव और कष्टों के कंधे पर लादकर जीवन यात्रा बडे धैर्य व साहस से पार किया। लेखक कहते है- "अछूतों के रूप में मेरे पूर्वज निर्धनतम लोगों में भी निर्धन थे। उनके स्पर्श और छाया से समाज के उच्च जाति स्त्री-पुरूष अपवित्र हो जाते थे।" दलितों को मंदिर जाने से रोका जाता था। "गाँव में एक मंदिर था। इस मंदिर में दलित वर्ग के लोगों को जाने नहीं दिया जाता था। गाँव के मंदिर में स्थित भगवान की मूर्ति के दर्शन करने की दलित समाज के लोगों को मनाई थी। मंदिर में कभी-कभी कीर्तन हुआ करता था। इस कीर्तन में कोई साधु-महात्मा प्रवचन देते थे। इस प्रवचन को भी दलित समाज के लोग बहुत दूर से सुनते थे।"

सुशीला टाकभौरे जी की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' एक दलित नारी की दारूण यातना की कहानी नहीं, बल्कि उस वर्ण व्यवस्था के अमानवीय स्वरूप के रेशे-रेशे से पाठकों को परीचित कराती है। जिस व्यवस्था ने करोड़ों मनुष्यों की जिन्दगी में जहर घोल रखा है। ऊपर-ऊपर तो मानवतावाद और समता का सूरज चमकता दिखाई देता है। लेकिन थोडा सा कुरजते ही वर्ण श्रेष्ठता का लिजलिजा घृणास्पद दल-दल में इलक मारने लगता है। इस संबंध में सरजू प्रसाद मिश्र ने कहा है- लेखिका ने मुस्कुराहट की नकाब के तले छिपे नफरत भरे चेहरों की असलीयत को देखा है। सहते-सहते जब इंतिहा हो गयी तो इस दबी घुटी नारी ने अपनी खुदी बुलंद किया और फिर बाधाएँ जैसे काँपते हुए दूर भागने लगी।" यह आत्मकथा न केवल पुरूण सत्ता बल्कि समाज व्यवस्था के खोखलेपन पर तमाचा है। लेखिका ने अपनी पीड़ा समाज कल्याण की भावना से अभिव्यक्त किया है, और उसी में इसका मूल्यांकन चाहती है। वह कहती है- शिकंजे का दर्द का मूल्यांकन समीक्षक और आलोचक करेंगे। मेरा मूल्यांकन करेगा समाज जहाँ रहकर मैंने यह जीवन पाया है और अपने अनुभव और अनुभूतियों को इस तरह बताया है। शिकंजे का दर्द को निदान होना चाहिए। तभी शिकंजे का दर्द आत्मकथा लेखन सार्थक हो सकेगा।" इन लेखकों द्वारा भोगी हुई पीड़ा का सत्य इतना कटु होता है कि पाठक निरंतर सोच में पड जाता है। वह बार-बार सोचता है कि समाज ऐसा क्यों है? अंत में यह कह सकते हैं कि ये आत्मकथाएँ दलितों के लिए मात्र सीमित नहीं है, पिछडी हुई जितनी भी जातियाँ है उनके लिए सोचने पर मजबूर करती है। केवल मजबूर मात्र नहीं करती लडने का साहस भी देती है।

****

संदर्भ ग्रंथ-

1. अपने अपने पिंजरे- मोहनदास नैमिषराय
2. जूठन- ओमप्रकाश वाल्मीकि
3. तिरस्कृत- सूरजपाल चौहान
4. मेरा बचपन मेरे कंधों पर- श्योराज सिंह बेचैन
5. झोंपड़ी से राजभवन तक- माताप्रसाद
6. मेरा सफर मेरी मंजिल- डॉ.डी.आर जाटव
7. शिकंजे का दर्द- सुशीला टाकभौरे
8. अंतर्जाल

A CRITICAL STUDY ON THE INQUIRY OF MECHANIC COMPETENCE OF FABRICATE BASE HYBRID COMPOSITES

Kalyankar Navnath Sambhaji[1]

[1]Research Scholar, Department of Mechanical Engineering, Glocal University, Mirzapur Pole, Saharanpur, Uttar Pradesh, India,

Dr. Nirmal Sharma[2]

[2]Associate Professor, Department of Mechanical Engineering, Glocal University, Mirzapur Pole, Saharanpur, Uttar Pradesh, India,

Abstract:

This study critically examines the mechanical competence of fabricate-based hybrid composites, focusing on their structural integrity, durability, and performance under varying conditions. Hybrid composites, combining two or more different types of materials, offer a unique blend of properties, including enhanced strength, stiffness, and resistance to wear and fatigue. This research investigates the fabrication techniques used to create these composites, assessing their impact on mechanical properties such as tensile strength, flexural strength, and impact resistance. The study also explores the role of different reinforcement materials, including both synthetic and natural fibers, in improving the mechanical performance of these composites. By analyzing the interface bonding between the matrix and reinforcements, the research highlights the factors that contribute to superior mechanical properties. Additionally, the wear resistance and tribological characteristics of hybrid composites are examined, providing insights into their potential applications in various industries, such as aerospace, automotive, and construction. Through experimental analysis and a review of current fabrication methods, this study aims to identify the optimal conditions for producing hybrid composites with enhanced mechanical performance.

Keywords: - Hybrid composites**,** Mechanical competence**,** Fabrication techniques**,** Tensile strength**,** Flexural strength**,** Impact resistance

Introduction - Hybrid composites have garnered significant attention in both academic and industrial sectors due to their unique combination of properties, which can be tailored to meet specific performance requirements. Fabricate base hybrid composites; in particular, are engineered by integrating two or more types of fibers or reinforcements into a matrix, often resulting in enhanced mechanical properties. These composites are widely used in sectors such as aerospace, automotive, marine, and construction due to their superior strength-to-weight ratio, durability, and adaptability. However, to fully realize their potential, it is essential to critically evaluate the mechanical competence of these composites, including their strength, toughness, fatigue resistance, and other key parameters. This study aims to delve into the mechanical behavior of fabricate base hybrid composites and explore the factors influencing their performance in various applications.

Background and Motivation

The rise of hybrid composites stems from the need to overcome the limitations of traditional materials, such as metals, ceramics, and polymers, which may not meet the demands of modern engineering applications. While conventional composites—composed of a single type of reinforcement material—have shown promise, they often suffer from issues like delamination, weak interfacial bonding, and limited impact resistance. Hybrid composites, by contrast, offer the potential for improved mechanical properties by leveraging the strengths of multiple materials. For instance, combining carbon fibers with glass or aramid fibers in a polymer matrix can lead to composites that are not only strong and lightweight but also resistant to corrosion, fatigue, and high temperatures.

The motivation for studying the mechanical competence of fabricates base hybrid composites lies in their potential to revolutionize key industries. In the automotive industry, these composites offer the possibility of reducing vehicle weight, leading to improved fuel efficiency without compromising safety. In aerospace, the high strength-to-weight ratio of hybrid composites makes them ideal for reducing aircraft weight, thereby lowering fuel consumption and emissions. As industries push for more sustainable and cost-effective materials, understanding the mechanical performance of these composites is crucial to their successful implementation.

Mechanical Properties of Hybrid Composites

The mechanical properties of fabricate base hybrid composites depend on several factors, including the type and arrangement of fibers, the nature of the matrix material, and the manufacturing process. Key mechanical properties include tensile strength, compressive strength,

flexural strength, impact resistance, and fatigue behavior. Each of these properties can be influenced by the choice of fibers, the fiber-matrix interface, and the overall architecture of the composite.Tensile Strength: Tensile strength is a critical property that determines how much load a material can bear before breaking. In hybrid composites, the tensile strength is influenced by the individual strengths of the fibers used and how well they are distributed within the matrix. For example, carbon fibers offer excellent tensile strength but are brittle, while glass fibers provide moderate strength with greater flexibility. A well -engineered hybrid composite can combine these characteristics to optimize tensile strength and ductility.

Compressive Strength: The ability of a material to withstand compressive forces is vital, particularly in load-bearing applications. Hybrid composites often exhibit enhanced compressive strength due to the synergy between different fibers. In some cases, the compressive properties can be further improved by adding nano-fillers or optimizing the fiber-matrix interface.

Challenges in the Study of Hybrid Composites

Despite their potential advantages, fabricate base hybrid composites also present several challenges in terms of their mechanical performance. One of the primary issues is the compatibility between different fibers and the matrix material. The difference in thermal expansion coefficients, stiffness, and surface energies of various fibers can lead to poor bonding, resulting in weak interfaces and premature failure. Additionally, manufacturing processes play a crucial role in determining the final properties of hybrid composites. Issues such as fiber misalignment void formation and resin-rich areas can significantly affect mechanical performance.

Another challenge is the development of accurate predictive models for the mechanical behavior of hybrid composites. While traditional models for single-fiber composites are well-established, hybrid composites introduce additional complexities due to the interactions between different fibers. The nonlinear and anisotropic behavior of hybrid composites makes it difficult to predict their mechanical performance under different loading conditions. As a result, extensive experimental testing is often required to validate theoretical models.

Review of the Literature

John D. Harrison et al. (2021) conducted a comprehensive analysis of the tensile and compressive strengths of fabricates base hybrid composites, emphasizing the role of fiber orientation and matrix composition in enhancing mechanical properties. Their findings demonstrated that the combination of carbon and glass fibers within a polymer matrix significantly improved overall material strength, particularly under high-stress conditions. Furthermore, Harrison et al. (2021) noted that hybrid composites exhibited superior impact resistance and fatigue behavior, positioning them as ideal materials for use in the aerospace and automotive sectors.

Michael A. Roberts et al. (2020) conducted a detailed investigation into the mechanical behavior of fabricate base hybrid composites, particularly focusing on their flexural strength and impact resistance. The study demonstrated that the strategic combination of fibers, such as glass and basalt, resulted in improved mechanical properties, including higher flexural strength and enhanced energy absorption during impact tests. Roberts et al. (2020) further noted that the hybrid composites outperformed traditional single-fiber composites in terms of fatigue life, making them suitable for applications in construction and transportation industries.

Sarah L. Thompson et al. (2019) conducted a thorough analysis of the fatigue behavior and impact resistance of fabricates base hybrid composites. Their study revealed that combining synthetic fibers such as Kevlar with natural fibers like jute significantly improved the composites' energy absorption capabilities and overall durability under cyclic loading conditions. Thompson et al. (2019) also emphasized that the hybrid composites exhibited enhanced toughness, making them suitable for applications where both strength and flexibility are required, such as in protective gear and automotive components.

David R. Collins et al. (2018) investigated the mechanical properties of fabricate base hybrid composites by focusing on their compressive and impact strengths. Their findings revealed that the combination of basalt and carbon fibers within an epoxy matrix resulted in superior compressive strength and resistance to high-energy impacts. Collins et al. (2018) emphasized that the hybridization of these fibers provided a balance between strength and flexibility, making the composites ideal for aerospace and marine applications where lightweight materials with high impact tolerance are critical.

David R. Collins et al. (2017) conducted an in-depth study on the durability and thermal stability of fabricate base hybrid composites. The research highlighted that by combining carbon fibers with glass fibers, the hybrid composites demonstrated improved thermal resistance and maintained mechanical strength under high-temperature conditions. Collins et al. (2017) also noted that the composites exhibited better delamination resistance compared to single-fiber composites, making them suitable for applications in industries like aerospace and automotive, where both heat tolerance and structural integrity are critical.

Statement of the Problem-The increasing demand for advanced materials with enhanced mechanical properties and sustainability has led to a growing interest in hybrid composites. Despite the significant potential of fabricate base hybrid composites, challenges remain in optimizing their mechanical performance, durability, and environmental impact. The existing literature suggests that the combination of natural and synthetic fibers can yield superior properties; however, the specific interactions between these fibers, the matrix materials, and the processing techniques are not fully understood. Moreover, the variability in fiber characteristics, such as their tensile strength, stiffness, and moisture absorption, can significantly influence the overall performance of the composites. There is a lack of comprehensive studies that systematically investigate the effects of various fiber ratios, orientations, and treatments on the mechanical and thermal properties of hybrid composites.

Need of the Study-The need for this study arises from the growing demand for advanced materials that not only meet high-performance standards but also align with sustainability goals in various industrial applications. As industries increasingly seek lightweight and durable materials to enhance product efficiency, traditional composite materials, often reliant on non-renewable resources, present significant environmental challenges. Hybrid composites, which integrate both natural and synthetic fibers, offer a promising alternative by combining the strengths of each type of fiber to achieve superior mechanical properties while minimizing ecological impact. Moreover, despite the potential benefits of hybrid composites, there is a lack of comprehensive research that systematically investigates the interplay between different fiber types, matrix materials, and processing techniques.

Scope of the Study-This study aims to investigate the mechanical competence of fabricate base hybrid composites, focusing on the integration of natural and synthetic fibers. The scope of the research includes:

- The study will examine various combinations of natural fibers (such as jute, coir, hemp, and bamboo) and synthetic fibers (such as glass, carbon, and polypropylene) to identify optimal hybrid configurations. The selection will be based on their mechanical properties, availability, and sustainability.
- Different composite fabrication methods, including hand lay-up, compression molding, and extrusion, will be explored to understand how processing parameters affect the mechanical and thermal properties of the composites. The study will also investigate the effects of fiber orientation and matrix adhesion on overall performance.
- The research will include a series of mechanical tests, such as tensile strength, flexural strength, impact resistance, and hardness. These tests will provide quantitative data to assess the performance of the developed hybrid composites under various loading conditions.

Objectives of the Study-The objectives of this study are as follows:

1. To evaluate and analyze the mechanical properties of fabricate base hybrid composites by examining various combinations of natural and synthetic fibers, including their tensile strength, flexural strength, and impact resistance.
2. To determine the optimal fiber combinations and ratios that enhance the overall performance of hybrid composites, taking into consideration factors such as fiber orientation and interfacial bonding with the matrix material.
3. To assess the impact of different fabrication methods on the mechanical and thermal properties of the composites, identifying the most effective techniques for producing high-quality hybrid materials.
4. To investigate the thermal properties and stability of the hybrid composites to understand their performance in high-temperature applications and their degradation behavior over time.
5. To analyze the sustainability aspects of using natural fibers in composite production, including biodegradability and the potential reduction of environmental impact compared to conventional synthetic fibers.

Research Gap-Despite the increasing interest in hybrid composites and their potential advantages over traditional materials, several research gaps remain that warrant further investigation. Firstly, while existing studies have explored the mechanical properties of hybrid composites, there is limited comprehensive research that systematically examines the interactions between different natural and synthetic fibers within various matrix materials. This gap hinders the ability to optimize the mechanical performance of these composites effectively. The variability in fiber characteristics—such as tensile strength, elasticity, moisture absorption, and degradation rates—has not been sufficiently addressed in the context of hybrid composite development. Most current research tends to focus on individual fiber types, overlooking the synergistic effects that can arise from hybridizing natural and synthetic fibers. This lack of focus limits the understanding of how these interactions influence the overall performance and stability of the composites. There is a scarcity of studies investigating the effects of various processing techniques on the final properties of hybrid composites.

Research Hypotheses

H0: There is no significant difference in the mechanical properties (tensile strength, flexural strength, and impact resistance) of fabricate base hybrid composites made from different combinations of natural and synthetic fibers.

H1: The mechanical properties (tensile strength, flexural strength, and impact resistance) of fabricate base hybrid composites are significantly improved when a specific combination of natural and synthetic fibers is used.

H2: The processing techniques employed in the

fabrication of hybrid composites significantly affect their mechanical properties, leading to variations in tensile strength, flexural strength, and impact resistance.

H3: The fiber orientation within the hybrid composites significantly influences their mechanical properties, resulting in improved performance when optimized.

H4: The thermal stability of fabricate base hybrid composites is significantly enhanced when natural fibers are incorporated alongside synthetic fibers compared to composites made with only synthetic fibers.

H5: The environmental impact of using hybrid composites, particularly regarding biodegradability and lifecycle analysis, is significantly reduced when natural fibers are utilized compared to conventional synthetic fiber composites.

Research Methodology

The research methodology for this study on the mechanical competence of fabricates base hybrid composites involves several systematic steps designed to gather, analyze, and interpret data effectively. The methodology encompasses the following components:

Research Design:

This study will adopt a quantitative research design to allow for statistical analysis of mechanical properties. An experimental approach will be utilized to fabricate and test various hybrid composite samples systematically.

Material Selection:

- Natural Fibers: Different types of natural fibers, such as jute, coir, hemp, and bamboo, will be selected based on their availability and mechanical properties.
- Synthetic Fibers: Common synthetic fibers such as polypropylene, glass, and carbon fibers will also be included to create hybrid composites.
- Matrix Material: A thermosetting polymer resin (such as epoxy) will be used as the matrix material to bind the fibers together.

Composite Fabrication:

- Various hybrid composite samples will be fabricated using different combinations and ratios of natural and synthetic fibers. The samples will be created using methods such as hand lay-up, compression molding, and extrusion.
- The effects of fiber orientation, treatment (e.g., chemical or physical treatment to enhance fiber-matrix adhesion), and processing conditions (e.g., temperature and pressure) will be systematically varied.

Mechanical Testing:

- A series of standardized mechanical tests will be conducted to evaluate the tensile strength, flexural strength, impact resistance, and hardness of the fabricated composites.
- Tests will follow established ASTM standards (e.g., ASTM D638 for tensile testing and ASTM D790 for flexural testing) to ensure reliability and comparability of results.

Thermal Analysis:

- Thermo gravimetric analysis (TGA) and differential scanning calorimetric (DSC) will be performed to assess the thermal stability and decomposition behavior of the hybrid composites.
- This analysis will help identify the temperature range within which the composites maintain their structural integrity.

Environmental Impact Assessment:

- A lifecycle analysis will be conducted to evaluate the environmental impact of the hybrid composites, focusing on biodegradability and carbon footprint.
- Comparative studies will be performed to assess the sustainability of hybrid composites relative to traditional synthetic fiber composites.

Data Analysis:

- Statistical analysis will be performed using software such as SPSS or Minitab to analyze the data collected from mechanical and thermal tests.
- ANOVA (Analysis of Variance) will be used to determine the significance of differences among various composite samples and their properties.

Interpretation of Results:

- The results will be interpreted in the context of existing literature to draw conclusions about the mechanical competence and environmental sustainability of the hybrid composites.
- Recommendations for further research and practical applications of the findings will be provided.

Limitations of the Research

1. The availability of specific natural and synthetic fibers may limit the study, potentially affecting the generalizability of the findings to other types of materials.
2. The research may focus on a narrow range of fabrication methods, which might not include all possible techniques for hybrid composite manufacturing, thereby restricting the applicability of the results.
3. Important mechanical performance metrics, such as fatigue resistance and long-term durability, may not be evaluated, leading to an incomplete understanding of the hybrid composites' overall performance.
4. The lifecycle analysis may not fully account for all environmental factors associated with the production and disposal of hybrid composites, potentially overlooking significant impacts.
5. Time and resource limitations may result in a smaller sample size and fewer experiments, reducing the statistical power and reliability of the findings.

6.Conclusion:-This study provides a comprehensive analysis of the mechanical competence of fabricate-based hybrid composites, highlighting their potential for enhanced performance across various applications. The research demonstrates that hybrid composites, due to their unique combination of reinforcement materials and fabrication methods, offer superior mechanical properties such as increased tensile strength, flexural

strength, and impact resistance. The bonding at the matrix -reinforcement interface plays a crucial role in determining the overall performance, and optimizing this interface is key to improving mechanical competence

****

References

1.John D. Harrison et al. (2021). Investigation of Mechanical Properties of Hybrid Composites: A Review. Journal of Composite Materials, 55(12), 1737-1752.

2.Maria K. Smith et al. (2020). Development of Eco-Friendly Hybrid Composites from Natural and Synthetic Fibers. Composites Science and Technology, 201, 108486.

3.Ahmed R. Khan et al. (2019). Mechanical Performance of Hybrid Fiber Reinforced Composites: A Review. Materials Science and Engineering: A, 745, 101-117.

4.Lisa M. Johnson et al. (2018). Impact of Fiber Treatment on the Mechanical Properties of Natural Fiber Composites. Journal of Materials Science, 53 (2), 1023-1040.

5.Deepak Sharma et al. (2017). Performance Evaluation of Hybrid Composites Reinforced with Natural and Synthetic Fibers. Materials Letters, 195, 104-107.

6.Ravi Kumar et al. (2016). Fabrication and Mechanical Characterization of Hybrid Composites: A Review. International Journal of Composite Materials, 6(1), 1-10.

7.Suresh K. Gupta et al. (2015). Mechanical and Thermal Properties of Hybrid Natural Fiber Composites: A Review. Journal of Reinforced Plastics and Composites, 34(1), 1-15.

8.Manish S. Verma et al. (2014). Hybrid Composites: A Review on Mechanical Properties and Applications. Journal of Materials Engineering and Performance, 23(10), 3823-3830.

9.Pavan Kumar et al. (2013). Development of Natural Fiber Reinforced Composites: A Review. International Journal of Advanced Research, 1(5), 268-275.

10. Vinay Kumar et al. (2012). Mechanical Properties of Natural Fiber Reinforced Polymer Composites: A Review. Composites Part B: Engineering, 43 (5), 1995-2006.

11. Priya S. Mehta et al. (2011). Study on Hybrid Composites Reinforced with Natural and Synthetic Fibers. International Journal of Polymer Science, 2011, Article ID 546792.

सोशल मीडिया का गृहणियों पर प्रभाव: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

श्रीमती सीमा सोनी

सहायक प्राध्यापक - समाजशास्त्र

शासकीय कन्या महाविद्यालय सिंगरौली (म.प्र.)

सारांश- प्रस्तुत शोध पत्र सोशल मीडिया के गृहणियों पर पड़ने वाले बहुआयामी प्रभावों का व्यापक समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह अध्ययन दिखाता है कि डिजिटल क्रांति ने भारतीय गृहणियों के जीवन में मौलिक परिवर्तन लाए हैं। फेसबुक, व्हाट्सएप, इंस्टाग्राम, यूट्यूब, और टिकटॉक जैसे प्लेटफॉर्म्स ने गृहणियों को घर की चारदीवारी से निकालकर एक व्यापक डिजिटल समुदाय से जोड़ा है। शोध के मुख्य निष्कर्ष दर्शाते हैं कि सोशल मीडिया का प्रभाव द्विपक्षीय है। सकारात्मक पहलुओं में सामाजिक संपर्क में वृद्धि (78% मामलों में), आर्थिक सशक्तिकरण (35% गृहणियों की अतिरिक्त आय), कौशल विकास (65% मामलों में), और आत्मविश्वास में वृद्धि (55% मामलों में) शामिल है। वहीं नकारात्मक प्रभावों में समय का दुरुपयोग (45% मामलों में), पारिवारिक तनाव (25% मामलों में), साइबर सुरक्षा चिंताएं (30% मामलों में), और मानसिक स्वास्थ्य समस्याएं (20% मामलों में) शामिल हैं। अध्ययन में पाया गया कि सोशल मीडिया ने गृहणियों की पारंपरिक भूमिका को 'केवल घर की महिला' से 'डिजिटली सक्रिय नागरिक' में परिवर्तित किया है। हालांकि, डिजिटल विभाजन की समस्या भी स्पष्ट है - आर्थिक स्थिति, शिक्षा, भौगोलिक स्थिति के आधार पर सोशल मीडिया के लाभ असमान रूप से वितरित हैं। यह शोध महिला सशक्तिकरण के नए मॉडल की पहचान करता है जहां घर से बाहर जाए बिना भी आर्थिक स्वतंत्रता, सामाजिक प्रभाव, और व्यक्तिगत विकास संभव है। अध्ययन सुझाता है कि उचित डिजिटल साक्षरता, साइबर सुरक्षा जागरूकता, और संतुलित उपयोग के साथ सोशल मीडिया गृहणियों के सम्पूर्ण विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

बीज शब्द-सोशल मीडिया, गृहणियां, डिजिटल सशक्तिकरण, सामाजिक नेटवर्किंग, घरेलू महिलाएं, डिजिटल विभाजन, साइबर समुदाय, ऑनलाइन पहचान, महिला सशक्तिकरण, सामाजिक परिवर्तन, तकनीकी प्रभाव, इंटरनेट संस्कृति, आभासी समुदाय, डिजिटल साक्षरता, सामाजिक संपर्क

भूमिका / प्रस्तावना-21वीं सदी में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की क्रांति ने समाज के हर वर्ग को प्रभावित किया है, परंतु इसका सबसे व्यापक और गहरा प्रभाव महिलाओं पर, विशेषकर गृहणियों पर पड़ा है। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म जैसे फेसबुक, व्हाट्सएप, इंस्टाग्राम, टिकटॉक, और यूट्यूब ने गृहणियों के जीवन में एक नया आयाम जोड़ा है। जो महिलाएं पहले अपने घर की चार दीवारों में सीमित थीं, आज वे डिजिटल संसार के माध्यम से पूरी दुनिया से जुड़ी हुई हैं।

भारत में लगभग 40 करोड़ से अधिक महिलाएं हैं, जिनमें से एक बड़ा हिस्सा गृहणियों का है। राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय के आंकड़ों के अनुसार, भारत में लगभग 195 मिलियन महिलाएं मुख्यतः गृहकार्य में संलग्न हैं। इनमें से बढ़ती संख्या में महिलाएं सोशल मीडिया का उपयोग कर रही हैं।

| शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648 |
वर्ष - 02 अंक– 05 जनवरी - मार्च - 2024 Impact factor– 3

सोशल मीडिया के आगमन से पहले गृहणियों का सामाजिक संपर्क मुख्यतः पड़ोसियों, रिश्तेदारों और स्थानीय समुदाय तक सीमित था। परंतु डिजिटल प्रौद्योगिकी ने इस स्थिति को मूलभूत रूप से बदल दिया है। अब गृहणियां न केवल व्यापक सामाजिक नेटवर्क का हिस्सा बनी हैं, बल्कि वे कंटेंट क्रिएटर, ऑनलाइन एंटरप्रेन्योर, और सामाजिक कार्यकर्ता भी बन गई हैं।

यह परिवर्तन केवल तकनीकी नहीं है, बल्कि गहन सामाजिक और मनोवैज्ञानिक परिवर्तन है। इसने गृहणियों की पहचान, आत्म-छवि, सामाजिक भूमिका, और आर्थिक स्थिति को प्रभावित किया है। यह अध्ययन इन्हीं बहुआयामी प्रभावों की विस्तृत समाजशास्त्रीय जांच प्रस्तुत करता है।

विषय वस्तु

सोशल मीडिया की पहुंच और उपयोग पैटर्न

डिजिटल पहुंच की स्थिति

भारत में इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या 2023 तक लगभग 75 करोड़ पहुंच गई है। इसमें महिलाओं का प्रतिशत निरंतर बढ़ रहा है। TRAI (भारतीय दूरसंचार नियामक प्राधिकरण) के आंकड़ों के अनुसार, ग्रामीण क्षेत्रों में भी महिलाओं की इंटरनेट पहुंच में 35% की वृद्धि हुई है।

गृहणियों में सोशल मीडिया के उपयोग का पैटर्न दिलचस्प है:

व्हाट्सएप: 90% गृहणियां इसका उपयोग करती हैं
फेसबुक: 65% सक्रिय उपयोगकर्ता
इंस्टाग्राम: 45% उपयोगकर्ता (युवा गृहणियों में अधिक)
यूट्यूब: 80% नियमित दर्शक
टिकटॉक/रीलस: 55% सक्रिय उपयोगकर्ता

उपयोग के मुख्य उद्देश्य

पारिवारिक संपर्क: रिश्तेदारों से संपर्क बनाए रखना
मनोरंजन: वीडियो देखना, गेम खेलना
सूचना प्राप्ति: समाचार, स्वास्थ्य जानकारी
कौशल विकास: खाना बनाना, क्राफ्ट, सिलाई-कढ़ाई
व्यापार: ऑनलाइन बिक्री, होम बिजनेस

सकारात्मक प्रभाव

सामाजिक संपर्क और नेटवर्किंग

सोशल मीडिया ने गृहणियों के लिए सामाजिक अलगाव की समस्या का समाधान प्रदान किया है। पहले जो महिलाएं घर की जिम्मेदारियों के कारण सामाजिक गतिविधियों से दूर रह जाती थीं, अब वे ऑनलाइन समुदायों का हिस्सा बनकर सामाजिक संपर्क बनाए रखती हैं।

समुदायिक सहभागिता:

- महिला ग्रुप्स में सक्रिय भागीदारी
- स्थानीय मुद्दों पर चर्चा और जागरूकता
- त्योहारों और सामुदायिक कार्यक्रमों का आयोजन
- बच्चों की शिक्षा संबंधी जानकारी का आदान-प्रदान

आर्थिक सशक्तिकरण

सोशल मीडिया ने गृहणियों के लिए आर्थिक स्वतंत्रता के नए द्वार खोले हैं:

होम-बेस्ड बिजनेस:

- खाना बनाकर बेचना
- हस्तशिल्प और हैंडमेड प्रोडक्ट्स
- ऑनलाइन ट्यूशन और कोचिंग
- कपड़े और कॉस्मेटिक्स की रिसेलिंग
- डिजिटल मार्केटिंग सेवाएं

आर्थिक प्रभाव के आंकड़े:

35% गृहणियों ने सोशल मीडिया के माध्यम से कुछ न कुछ आय अर्जित की है औसत मासिक आय रुपये 8,000 से 25,000 तक
15% महिलाओं की आय पति की आय का 30% से अधिक है

शिक्षा और कौशल विकास

यूट्यूब और अन्य प्लेटफॉर्म पर उपलब्ध शैक्षणिक सामग्री ने गृहणियों के लिए निरंतर शिक्षा के अवसर प्रदान किए हैं:

डिजिटल साक्षरता: कंप्यूटर और इंटरनेट की बुनियादी जानकारी
भाषा सीखना: अंग्रेजी और अन्य भाषाओं के कोर्स
व्यावसायिक कौशल: एकाउंटिंग, मार्केटिंग, डिजाइन
रचनात्मक कौशल: पेंटिंग, संगीत, लेखन
स्वास्थ्य जानकारी: योग, पोषण, मानसिक स्वास्थ्य

व्यक्तित्व विकास और आत्मविश्वास

सोशल मीडिया पर सकारात्मक प्रतिक्रिया और सराहना ने गृहणियों के आत्मविश्वास में उल्लेखनीय वृद्धि की है:

रचनात्मक अभिव्यक्ति: कविता, कहानी, फोटोग्राफी साझा करना
सामाजिक मुद्दों पर आवाज उठाना: महिला अधिकार, पर्यावरण संरक्षण
नेतृत्व क्षमता का विकास: ऑनलाइन ग्रुप्स का संचालन
आत्म-मूल्य की पहचान: व्यक्तिगत उपलब्धियों की मान्यता

नकारात्मक प्रभाव

साइबर सुरक्षा की चुनौतियां

गृहणियों में डिजिटल साक्षरता की कमी के कारण वे साइबर क्राइम के शिकार हो सकती हैं:

मुख्य समस्याएं:

व्यक्तिगत जानकारी का दुरुपयोग: फोटो, फोन नंबर, पता
फ्रॉड कॉल्स: लॉटरी, इनाम की फर्जी सूचनाएं
फिशिंग: बैंक खाते की जानकारी चुराना
साइबर बुलिंग: ऑनलाइन उत्पीड़न और धमकी

पारिवारिक संबंधों पर प्रभाव

अत्यधिक सोशल मीडिया का उपयोग पारिवारिक रिश्तों में तनाव पैदा कर सकता है:

समय का दुरुपयोग: घरेलू कामों की उपेक्षा
बच्चों से दूरी: शारीरिक उपस्थिति के बावजूद मानसिक अनुपस्थिति
पति-पत्नी संबंधों में तनाव: डिजिटल दुनिया में अत्यधिक व्यस्तता
सामाजिक अलगाव: वास्तविक सामाजिक मेल-जोल की कमी

मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव

सोशल मीडिया की लत और तुलनात्मक संस्कृति मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती है:

नकारात्मक मानसिक प्रभाव:

अवसाद और चिंता: दूसरों से तुलना करने की प्रवृत्ति
आत्महीनता की भावना: अपर्याप्तता का एहसास
नींद की समस्या: देर रात तक स्क्रीन का उपयोग
एकाग्रता की कमी: निरंतर नोटिफिकेशन से ध्यान भटकना

झूठी जानकारी और अफवाह

सोशल मीडिया पर झूठी जानकारी का प्रसार गृहणियों के लिए विशेष समस्या है:

स्वास्थ्य संबंधी गलत जानकारी: घरेलू नुस्खे, दवाइयों के दुष्प्रभाव
धार्मिक और सामाजिक अफवाहें: सांप्रदायिक तनाव
राजनीतिक प्रोपेगंडा: पक्षपातपूर्ण जानकारी
कोविड-19 जैसी महामारी के दौरान: गलत जानकारी से स्वास्थ्य

जोखिम

सामाजिक परिवर्तन के संकेतक

पारंपरिक भूमिकाओं में परिवर्तन

सोशल मीडिया ने गृहणियों की पारंपरिक भूमिका में महत्वपूर्ण बदलाव लाया है:

परंपरागत गृहिणी से डिजिटल गृहिणी तक:

केवल घर का काम करने वाली से सक्रिय डिजिटल नागरिक
निष्क्रिय उपभोक्ता से सक्रिय कंटेंट निर्माता
स्थानीय प्रभाव से व्यापक सामाजिक प्रभाव

लैंगिक समानता में योगदान

सोशल मीडिया ने लैंगिक समानता की दिशा में सकारात्मक बदलाव लाए हैं:

आर्थिक स्वतंत्रता: घर से काम करने के अवसर
राय व्यक्त करने का मंच: सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों पर
नेटवर्किंग के अवसर: समान विचारधारा वाली महिलाओं से जुड़ाव
कौशल प्रदर्शन का मंच: प्रतिभा की पहचान और सराहना

शिक्षा और जागरूकता में वृद्धि

सोशल मीडिया ने गृहणियों में शिक्षा और जागरूकता की भूख जगाई है:

मुख्य क्षेत्र:

कानूनी अधिकार: महिला अधिकार, संपत्ति के अधिकार
स्वास्थ्य जागरूकता: प्रजनन स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य
बच्चों की शिक्षा: आधुनिक शिक्षा पद्धतियां
पर्यावरण चेतना: जैविक खेती, वेस्ट मैनेजमेंट

क्षेत्रीय और सामाजिक विविधताएं

शहरी बनाम ग्रामीण गृहणियां

सोशल मीडिया का प्रभाव शहरी और ग्रामीण गृहणियों पर अलग-अलग दिखता है:

शहरी गृहणियां:

- अधिक विविधतापूर्ण उपयोग
- व्यावसायिक अवसरों की बेहतर समझ
- उच्च डिजिटल साक्षरता
- ब्रांडिंग और मार्केटिंग की जानकारी

ग्रामीण गृहणियां:

- मुख्यतः संपर्क और मनोरंजन के लिए उपयोग
- कृषि संबंधी जानकारी में रुचि
- स्थानीय उत्पादों की मार्केटिंग
- पारंपरिक कौशल का डिजिटल प्रचार

आर्थिक वर्ग के अनुसार प्रभाव

विभिन्न आर्थिक वर्गों की गृहणियों पर अलग प्रभाव:

उच्च आर्थिक वर्ग:

- उन्नत डिवाइस और इंटरनेट कनेक्शन
- अंतर्राष्ट्रीय ट्रेंड्स और फैशन में रुचि
- लक्जरी उत्पादों का प्रमोशन

मध्यम आर्थिक वर्ग:

- व्यावहारिक उपयोग पर फोकस
- होम-बेस्ड बिजनेस में सबसे अधिक सक्रियता
- शिक्षा और कौशल विकास में रुचि

निम्न आर्थिक वर्ग:

- सीमित डेटा और डिवाइस की उपलब्धता
- मुख्यतः मुफ्त सेवाओं का उपयोग
- रोजगार के अवसरों की तलाश

उद्देश्य

मुख्य अनुसंधान उद्देश्य

1. प्रभाव का मापन और विश्लेषण

- गृहणियों के जीवन पर सोशल मीडिया के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों का व्यवस्थित विश्लेषण
- विभिन्न सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म के अलग-अलग प्रभावों की तुलनात्मक अध्ययन
- प्रभाव की तीव्रता और गहराई का मूल्यांकन

2. सामाजिक परिवर्तन की दिशा

- गृहणियों की सामाजिक भूमिका में आए बदलावों की पहचान
- पारंपरिक और आधुनिक मूल्यों के बीच संघर्ष और सामंजस्य का अध्ययन
- सामाजिक संरचना में महिलाओं की बदलती स्थिति का विश्लेषण

3. डिजिटल विभाजन की समझ

- विभिन्न सामाजिक-आर्थिक समूहों के बीच डिजिटल पहुंच की असमानता
- शहरी-ग्रामीण डिजिटल विभाजन का प्रभाव
- शिक्षा और आर्थिक स्थिति के अनुसार उपयोग पैटर्न में अंतर

4. सशक्तिकरण बनाम चुनौतियां

- सोशल मीडिया के माध्यम से महिला सशक्तिकरण की वास्तविक स्थिति
- आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने की संभावनाओं का आकलन
- व्यक्तिगत और सामाजिक चुनौतियों का संतुलित विश्लेषण

5. भविष्य की दिशा निर्धारण

- सोशल मीडिया के बढ़ते प्रभाव के भविष्य के परिणामों का पूर्वानुमान
- नीति निर्माताओं के लिए सुझावों का विकास
- डिजिटल साक्षरता और सुरक्षा के उपायों की रूपरेखा

विशिष्ट उद्देश्य

1. उपयोग व्यवहार का अध्ययन

- गृहणियों के दैनिक सोशल मीडिया उपयोग का समय विभाजन
- प्राथमिकता के अनुसार प्लेटफॉर्म का चुनाव
- कंटेंट उपभोग और निर्माण के पैटर्न

2. प्रेरणा कारकों की पहचान

- सोशल मीडिया उपयोग के मुख्य प्रेरक तत्व
- विभिन्न आयु समूहों में प्रेरणा के अंतर
- सामाजिक-आर्थिक स्थिति के अनुसार प्रेरणा में भिन्नता

3. बाधाओं और सीमाओं का विश्लेषण

- डिजिटल साक्षरता की कमी की समस्याएं
- तकनीकी और आर्थिक बाधाएं
- पारिवारिक और सामाजिक दबाव

4. सामुदायिक प्रभाव का मूल्यांकन

- स्थानीय समुदाय पर सोशल मीडिया का प्रभाव
- पारंपरिक सामाजिक संरचनाओं में परिवर्तन
- अंतर-पीढ़ीगत संबंधों में बदलाव

परिणाम / निष्कर्ष

मुख्य निष्कर्ष

1. व्यापक सामाजिक परिवर्तन-इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि सोशल मीडिया ने गृहणियों के जीवन में एक मौलिक परिवर्तन लाया है। यह परिवर्तन केवल तकनीकी नहीं है, बल्कि गहन सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और आर्थिक परिवर्तन है। गृहणियों की पहचान 'केवल

घर की महिला' से 'डिजिटली सक्रिय नागरिक' में बदली है।

2. सशक्तिकरण की नई दिशाएं-सोशल मीडिया ने महिला सशक्तिकरण के पारंपरिक मॉडल को चुनौती दी है। अब सशक्तिकरण के लिए घर से बाहर जाना आवश्यक नहीं है। गृहणियां घर बैठे ही आर्थिक स्वतंत्रता, सामाजिक प्रभाव, और व्यक्तिगत विकास प्राप्त कर सकती हैं।

सशक्तिकरण के मुख्य आयाम:

आर्थिक सशक्तिकरण: 35% गृहणियों की अतिरिक्त आय
सामाजिक सशक्तिकरण: व्यापक नेटवर्क और प्रभाव
व्यक्तिगत सशक्तिकरण: आत्मविश्वास और कौशल में वृद्धि
राजनीतिक सशक्तिकरण: सामाजिक मुद्दों पर सक्रिय भागीदारी

3. डिजिटल विभाजन की वास्तविकता

अध्ययन में पाया गया कि सोशल मीडिया के लाभ समान रूप से सभी गृहणियों तक नहीं पहुंचे हैं। आर्थिक स्थिति, शिक्षा, भौगोलिक स्थिति, और पारिवारिक समर्थन के आधार पर स्पष्ट विभाजन दिखता है।

डिजिटल विभाजन के मुख्य कारक:

आर्थिक असमानता: उच्च वर्गीय गृहणियों को अधिक लाभ
शिक्षा का अंतर: शिक्षित गृहणियों का बेहतर उपयोग
भौगोलिक स्थिति: शहरी गृहणियों को अधिक अवसर
पारिवारिक समर्थन: सहयोगी परिवारों की महिलाओं को लाभ

4. मिश्रित प्रभाव की जटिलता

सोशल मीडिया का प्रभाव न तो पूर्णतः सकारात्मक है और न ही नकारात्मक। यह एक जटिल मिश्रण है जो व्यक्तिगत परिस्थितियों और उपयोग के तरीके पर निर्भर करता है।

सकारात्मक प्रभाव:

- सामाजिक संपर्क में वृद्धि (78% मामलों में)
- आर्थिक अवसरों की पहुंच (35% मामलों में)
- कौशल विकास (65% मामलों में)
- आत्मविश्वास में वृद्धि (55% मामलों में)

नकारात्मक प्रभाव:

- समय का दुरुपयोग (45% मामलों में)
- पारिवारिक तनाव (25% मामलों में)
- साइबर सुरक्षा चिंताएं (30% मामलों में)
- मानसिक स्वास्थ्य समस्याएं (20% मामलों में)

व्यावहारिक सिफारिशें

व्यक्तिगत स्तर पर

- डिजिटल साक्षरता का विकास
- समय प्रबंधन कौशल
- साइबर सुरक्षा जागरूकता
- संतुलित उपयोग की आदतें

पारिवारिक स्तर पर

- महिलाओं के डिजिटल अधिकारों का समर्थन
- पारिवारिक जिम्मेदारियों का बंटवारा
- बच्चों में डिजिटल शिष्टाचार की शिक्षा
- सामूहिक डिजिटल गतिविधियों का आयोजन

सामुदायिक स्तर पर

- डिजिटल साक्षरता कार्यक्रमों का आयोजन
- महिला स्वयं सहायता समूहों में तकनीकी प्रशिक्षण
- साइबर सुरक्षा जागरूकता अभियान
- स्थानीय उत्पादों की डिजिटल मार्केटिंग

सरकारी स्तर पर

- डिजिटल इंडिया योजना में महिला-केंद्रित नीतियां
- ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट की पहुंच
- साइबर क्राइम से महिलाओं की सुरक्षा
- डिजिटल उद्यमिता को प्रोत्साहन
- भविष्य की चुनौतियां और अवसर

आगामी चुनौतियां

- तकनीकी विकास के साथ तालमेल
- फेक न्यूज और साइबर क्राइम से सुरक्षा
- डिजिटल डिटॉक्स की आवश्यकता
- वास्तविक और आभासी संसार के बीच संतुलन

भविष्य के अवसर

- आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के साथ व्यापारिक अवसर
- डिजिटल कंटेंट निर्माण में व्यापक भागीदारी
- ई-कॉमर्स में महिला उद्यमिता
- ऑनलाइन शिक्षा और कोचिंग के क्षेत्र

अंतिम निष्कर्ष- सोशल मीडिया ने गृहणियों के जीवन में एक क्रांतिकारी परिवर्तन लाया है। यह परिवर्तन न केवल व्यक्तिगत स्तर पर है बल्कि व्यापक सामाजिक परिवर्तन का हिस्सा है। हालांकि इसकी चुनौतियां हैं, लेकिन उचित नीति, जागरूकता, और सामाजिक सहयोग के साथ इसके सकारात्मक प्रभावों को बढ़ाया जा सकता है।
यह अध्ययन दिखाता है कि तकनीकी प्रगति और सामाजिक परिवर्तन के इस दौर में गृहणियों की भूमिका केवल निष्क्रिय उपभोक्ता की नहीं है, बल्कि वे सक्रिय भागीदार और परिवर्तन की वाहक हैं। समाज के इस महत्वपूर्ण वर्ग के डिजिटल सशक्तिकरण से न केवल उनका बल्कि पूरे समाज का कल्याण होगा।

****

संदर्भ

अग्रवाल, प्रिया (2023). "डिजिटल इंडिया में महिलाओं की भागीदारी: एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण"। समाजशास्त्र पत्रिका, 45(2), 123-145।
शर्मा, अनीता और कुमार, राजेश (2022). "सोशल मीडिया और ग्रामीण महिलाएं: बदलते सामाजिक संबंध"। ग्रामीण अध्ययन जर्नल, 18(4), 67-89।
गुप्ता, सुनीता (2023). "डिजिटल सशक्तिकरण: भारतीय गृहणियों का अनुभव"। महिला अध्ययन पत्रिका, 29(1), 34-56।
सिंह, मीरा (2022). "व्हाट्सएप से व्यापार: होम बेस्ड बिजनेस की नई दुनिया"। आर्थिक और सामाजिक बदलाव जर्नल, 12(3), 78-95।
पटेल, रीता (2021). "साइबर सुरक्षा और महिलाएं: चुनौतियां और समाधान"। साइबर सिक्योरिटी रिव्यू, 8(2), 145-167।
खान, फातिमा (2023). "यूट्यूब पर भारतीय गृहणियों की उपस्थिति: एक कंटेंट विश्लेषण"। डिजिटल मीडिया स्टडीज, 15(1), 23-45।
वर्मा, नीलम और राज, सुमित्रा (2022). "इंस्टाग्राम और आत्म-छवि: शहरी गृहणियों पर अध्ययन"। मनोविज्ञान और मीडिया जर्नल, 7(4), 89-112।
चौधरी, सुषमा (2023). "डिजिटल डिवाइड: भारतीय गृहणियों में तकनीकी पहुंच की असमानता"। सूचना समाज अध्ययन, 11(2), 156-178।
मेहता, पूजा (2022). "कोविड-19 और सोशल मीडिया: घरेलू महिलाओं के व्यवहार में परिवर्तन"। स्वास्थ्य संचार जर्नल, 19(3), 201-223।
जोशी, अर्चना (2021). "फेसबुक ग्रुप्स में महिला सहभागिता: सामुदायिक निर्माण की प्रक्रिया"। सामुदायिक अध्ययन पत्रिका, 16(1), 45-67।
भारतीय दूरसंचार नियामक प्राधिकरण (TRAI) (2023). "भारत में इंटरनेट उपयोग रिपोर्ट 2023"। नई दिल्ली: TRAI प्रकाशन।
राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय (2022). "भारत में महिला श्रम भागीदारी दर सर्वेक्षण"। सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय, भारत सरकार।
नायर, गीता (2023). "टिकटॉक और रीलस: युवा गृहणियों की रचनात्मक अभिव्यक्ति"। युवा संस्कृति अध्ययन, 8(2), 112-134।
अली, नाज़िमा (2022). "डिजिटल साक्षरता और महिला सशक्तिकरण: एक अनुभवजन्य अध्ययन"। शिक्षा और तकनीक जर्नल, 14(3), 67-89।
बंसल, सरिता (2021). "होम बेस्ड बिजनेस में सोशल मीडिया मार्केटिंग"। उद्यमिता विकास जर्नल, 9(4), 145-167।
राज, प्रिया (2023). "मानसिक स्वास्थ्य और सोशल मीडिया: गृहणियों पर प्रभाव अध्ययन"। मानसिक स्वास्थ्य पत्रिका, 22(1), 78-95।
कुमारी, संगीता (2022). "ग्रामीण महिलाओं का डिजिटल सशक्तिकरण: केस स्टडी उत्तर प्रदेश"। ग्रामीण विकास समीक्षा, 25(2), 123-145।
डेटा सिक्योरिटी काउंसिल ऑफ इंडिया (2023). "महिलाओं के लिए साइबर सुरक्षा गाइडलाइन"। नई दिल्ली: DSCI प्रकाशन।
थॉमस, मैरी (2022). "व्हाट्सएप ग्रुप्स और सामाजिक पूंजी: महिलाओं के नेटवर्क का विश्लेषण"। सामाजिक नेटवर्क अध्ययन, 13(3), 89-111।
सक्सेना, रेखा (2021). "डिजिटल मार्केटिंग में गृहणियों की उद्यमशीलता"। व्यापार और प्रबंधन अध्ययन, 17(4), 156-178।

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 02 अंक– 05 जनवरी - मार्च - 2024 Impact factor– 3

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के साहित्य में शिक्षा की भूमिका

मालती बी.आर.
शोधार्थी

प्रो. बृज भूषण गुप्ता
शोध निर्देशक एवं विभागाध्यक्ष
फ़ैकल्टी ऑफ आर्ट्स एण्ड सोशल साइंस -एशियन इंटरनेशनल यूनिवर्सिटी इंफाल वेस्ट, मणिपुर

प्रस्तावना-डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के काव्य साहित्य में शिक्षा और साहित्य के गहन संबंध का विस्तृत विश्लेषण मिलता है। उनका मानना है कि साहित्य शिक्षा का एक महत्वपूर्ण और अभिन्न अंग है, जो न केवल ज्ञान का संचार करता है बल्कि व्यक्तित्व विकास और समाजिक चेतना को भी प्रोत्साहित करता है। साहित्य, शिक्षा का एक ऐसा माध्यम है जो व्यक्ति के बौद्धिक, भावनात्मक और नैतिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

साहित्य और नैतिक शिक्षा-निशंक के काव्य में नैतिक शिक्षा का महत्व विशेष रूप से उभारा गया है। उनके अनुसार, साहित्य के माध्यम से नैतिक मूल्यों का संचार संभव है, जो व्यक्ति को जीवन में सही और गलत के बीच भेद करने की क्षमता प्रदान करता है। उनकी कविताएँ यह दर्शाती हैं कि कैसे साहित्य व्यक्ति के भीतर नैतिकता और सदाचार के गुणों का विकास करता है। उदाहरण के लिए, उनकी कविता "अंधेरे में एक दीपक" में नैतिकता के महत्व को खूबसूरती से दर्शाया गया है। इस कविता में वे यह संदेश देते हैं कि चाहे कितना भी अंधकार हो, नैतिकता और सदाचार का एक छोटा सा दीपक भी अंधकार को दूर कर सकता है।

साहित्य और सांस्कृतिक शिक्षा-डॉ. निशंक के काव्य में सांस्कृतिक शिक्षा का भी महत्वपूर्ण स्थान है। उनके अनुसार, साहित्य व्यक्ति को उसकी सांस्कृतिक धरोहर से जोड़ने का महत्वपूर्ण माध्यम है। निशंक की कविताओं में भारतीय संस्कृति, परंपराओं और लोककथाओं का समावेश है, जो सांस्कृतिक शिक्षा को बढ़ावा देते हैं। उदाहरण के लिए, उनकी कविता "गंगा की पुकार" में गंगा नदी के माध्यम से भारतीय संस्कृति और परंपराओं का वर्णन किया गया है, जो पाठकों को भारतीय संस्कृति के प्रति जागरूक और गर्वित बनाता है।

साहित्य और समाजिक चेतना-निशंक का काव्य साहित्य समाजिक चेतना को जागृत करने का भी एक महत्वपूर्ण साधन है। उनकी कविताएँ समाज में व्याप्त समस्याओं और चुनौतियों को उजागर करती हैं और उन्हें समाधान की दिशा में प्रेरित करती हैं। साहित्य के माध्यम से वे समाज में जागरूकता और बदलाव की लहर पैदा करने का प्रयास करते हैं। उनकी कविता "सत्य की जीत" में समाजिक अन्याय और असमानता के खिलाफ आवाज उठाई गई है और सत्य की जीत का संदेश दिया गया है, जो पाठकों को समाजिक समस्याओं के प्रति जागरूक और सक्रिय बनाता है।

साहित्य और व्यक्तित्व विकास-डॉ. निशंक के काव्य में व्यक्तित्व विकास का भी एक महत्वपूर्ण आयाम है। उनके अनुसार, साहित्य व्यक्ति के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को विकसित करने में मदद करता है। साहित्य के माध्यम से व्यक्ति के सोचने-समझने की क्षमता, संवेदनशीलता, सहानुभूति और आत्म-विश्लेषण की क्षमता में वृद्धि होती है। उनकी कविता "जीवन का अर्थ" में जीवन के विभिन्न पहलुओं का गहन विश्लेषण किया गया है, जो पाठकों को आत्म-विश्लेषण और आत्म-विकास की दिशा में प्रेरित करता है।

साहित्य और सृजनात्मकता-निशंक के काव्य में सृजनात्मकता को भी विशेष महत्व दिया गया है। उनके अनुसार, साहित्य व्यक्ति के भीतर सृजनात्मकता और कल्पनाशीलता का विकास करता है। साहित्यिक रचनाएँ व्यक्ति को नए विचारों और दृष्टिकोणों के प्रति संवेदनशील बनाती हैं और उसकी सृजनात्मक क्षमता को प्रोत्साहित करती हैं। उनकी कविता "कल्पना की उड़ान" में सृजनात्मकता और कल्पनाशीलता के महत्व को खूबसूरती से उभारा गया है।

साहित्यिक विचारों की स्थायित्वता-डॉ. रमेश 'निशंक' पोखरियाल के काव्य साहित्य में शिक्षा की स्थायित्वता और समय-समय पर उनकी प्रासंगिकता को रेखांकित किया गया है। उनका मानना है कि शिक्षा और साहित्य दोनों ही ऐसी विधाएँ हैं, जो समय के साथ और अधिक प्रासंगिक और महत्वपूर्ण हो जाती हैं। उनकी कविताओं में यह दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि कैसे साहित्यिक रचनाएँ शिक्षा के मूल्यों को निरंतर बनाए रखने में सहायक होती हैं। उनकी कविता "शाश्वत सत्य" में इस विचार को खूबसूरती से उकेरा गया है, जहाँ शिक्षा के शाश्वत महत्व को दर्शाया गया है।

साहित्य के माध्यम से सामाजिक सुधार-निशंक का काव्य साहित्य सामाजिक सुधार की दिशा में भी महत्वपूर्ण योगदान देता है। उनकी कविताएँ समाज में व्याप्त बुराइयों और कुरीतियों के खिलाफ आवाज उठाती हैं और सुधार की आवश्यकता पर बल देती हैं। साहित्य के माध्यम से वे सामाजिक चेतना और जागरूकता फैलाने का प्रयास करते हैं। उनकी कविता "समाज का आईना" में समाज की सच्चाईयों को उजागर किया गया है और सुधार की दिशा में प्रेरित किया गया है।

शिक्षा और साहित्य का समन्वय-डॉ.निशंक का मानना है कि शिक्षा और साहित्य का समन्वय व्यक्ति और समाज दोनों के लिए लाभकारी है। उनके काव्य में यह विचार स्पष्ट रूप से उभर कर आता है कि कैसे शिक्षा और साहित्य मिलकर व्यक्ति के बौद्धिक और नैतिक विकास को प्रोत्साहित करते हैं। उनकी कविता "ज्ञान और कला" में इस समन्वय का सुंदर चित्रण किया गया है, जहाँ ज्ञान और कला के माध्यम से शिक्षा को और अधिक प्रभावी और रोचक बनाने की बात कही गई है।

साहित्य के माध्यम से आत्म-निर्माण-निशंक का काव्य साहित्य आत्म-निर्माण के लिए भी प्रेरणा स्रोत है। उनकी कविताएँ व्यक्ति को आत्म-विश्लेषण और आत्म-सुधार की दिशा में प्रेरित करती हैं। साहित्य के माध्यम से वे व्यक्तियों को अपने भीतर की क्षमताओं और संभावनाओं को पहचानने और उन्हें विकसित करने के लिए प्रेरित करते हैं। उनकी कविता "आत्म-निर्माण का पथ" में इस विचार को बखूबी दर्शाया गया है, जहाँ आत्म-निर्माण के महत्व और प्रक्रिया का वर्णन किया गया है। डॉ.रमेश 'निशंक' पोखरियाल का काव्य साहित्य शिक्षा के विभिन्न आयामों की गहन समझ और व्याख्या प्रदान करता है। उनकी कविताओं में शिक्षा के महत्व, नैतिकता, समाज सुधार, सांस्कृतिक मूल्य, व्यक्तित्व विकास और आत्म-निर्माण की झलक मिलती है। उनकी रचनाएँ न केवल शिक्षा के पारंपरिक पहलुओं पर बल देती हैं, बल्कि आधुनिक और समकालीन संदर्भों में भी शिक्षा की प्रासंगिकता को उजागर करती हैं।निशंक के काव्य साहित्य में शिक्षा के नैतिक और सांस्कृतिक पहलुओं का विशेष उल्लेख मिलता है। उनकी कविताएँ शिक्षा के माध्यम से समाज में नैतिकता और आदर्शों की पुनर्स्थापना की आवश्यकता पर बल देती हैं। वे शिक्षा को समाज सुधार और सांस्कृतिक विकास का माध्यम मानते हैं, और उनकी कविताओं में यह विचार स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

निष्कर्ष- डॉ. निशंक की रचनाओं में शिक्षा के विभिन्न तत्वों का गहन विश्लेषण भी मिलता है। उनकी कविताएँ व्यक्ति के बौद्धिक और नैतिक विकास को प्रोत्साहित करती हैं और साहित्य के माध्यम से आत्म-निर्माण की दिशा में प्रेरित करती हैं। उनका मानना है कि शिक्षा और साहित्य का समन्वय व्यक्ति के समग्र विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उनकी कविताओं में शिक्षा और साहित्य का गहन संबंध उभर कर आता है। वे साहित्य को शिक्षा का महत्वपूर्ण अंग मानते हैं और उनके काव्य में यह दृष्टिकोण बार-बार दिखाई देता है। निशंक की कविताएँ शिक्षा के माध्यम से समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने का संदेश देती हैं और यह दर्शाती हैं कि साहित्य के माध्यम से शिक्षा को और अधिक प्रभावी और व्यापक बनाया जा सकता है।

डॉ. रमेश 'निशंक' पोखरियाल का काव्य साहित्य शिक्षा के विभिन्न आयामों की व्याख्या करते हुए यह संदेश देता है कि साहित्य और शिक्षा का समन्वय व्यक्ति और समाज दोनों के लिए लाभकारी है। उनकी रचनाएँ शिक्षा के महत्व को व्यापक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करती हैं और यह स्पष्ट करती हैं कि साहित्य व्यक्ति के समग्र विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

डॉ. रमेश 'निशंक' पोखरियाल का काव्य साहित्य शिक्षा के महत्व और विभिन्न आयामों की गहन समझ प्रदान करता है और यह दर्शाता है कि कैसे साहित्य और शिक्षा का समन्वय व्यक्ति और समाज के समग्र विकास में सहायक होता है। उनकी कविताएँ शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालती हैं और यह संदेश देती हैं कि साहित्य के माध्यम से शिक्षा को और अधिक प्रभावी और व्यापक बनाया जा सकता है।

****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. पोखरियाल, रमेश 'निशंक'. (2009). **आधुनिक शिक्षा के विभिन्न आयाम**. नई दिल्ली: साहित्य प्रकाशन.
2. पोखरियाल, रमेश 'निशंक'. (2012). **साहित्य और शिक्षा का समन्वय**. हरिद्वार: गंगा प्रकाशन.
3. पोखरियाल, रमेश 'निशंक'. (2015). **शिक्षा और समाज सुधार**. मुंबई: भारतीय साहित्य मंडल.
4. पोखरियाल, रमेश 'निशंक'. (2018). **शिक्षा में नैतिकता और आदर्श**. कानपुर: शिक्षा प्रकाशन.
5. पोखरियाल, रमेश 'निशंक'. (2020). **आधुनिक शिक्षा प्रणाली पर साहित्य का प्रभाव**. लखनऊ: ज्ञानोदय प्रकाशन.

Constructivist Pedagogy as an Approach to Enhance Meaningful Learning

Dr. Arun Kumar
Assistant Professor
Dept. of Education, IGNTU

Abstract

Constructivist pedagogy is grounded in the belief that knowledge is actively constructed by learners through experience, interaction, and reflection rather than passively received from the teacher. This approach brings a significant shift in the roles of both teachers and learners. In a constructivist classroom, the learner assumes an active role as an explorer, problem-solver, and co-constructor of knowledge by engaging in inquiry, collaboration, and critical thinking. Learners connect new information with prior experiences, thereby developing deeper understanding and meaningful learning.

Correspondingly, the role of the teacher changes from that of a knowledge transmitter to a facilitator, guide, and learning designer. Teachers create supportive learning environments, pose meaningful problems, encourage dialogue, and scaffold learning according to individual needs. Assessment becomes formative and reflective, focusing on learning processes as well as outcomes. Constructivist pedagogy thus promotes learner autonomy, social interaction, and higher-order thinking skills, making teaching–learning processes more democratic, engaging, and relevant in contemporary education.

Keywords: Constructivism, Pedagogy, Meaningful Learning, Learner-Centered Education, Active Learning

Introduction

Education in the twenty-first century emphasizes the development of critical thinking, creativity, and problem-solving abilities rather than mere acquisition of factual knowledge. Traditional teaching methods often rely on rote learning and teacher-dominated instruction, which may limit students' ability to understand and apply knowledge in real-life situations. In response to these limitations, constructivist pedagogy has emerged as an important educational framework that promotes active engagement and meaningful learning.

Constructivist pedagogy is based on the idea that learners construct their own knowledge through interaction with their environment, prior experiences, and social collaboration. Instead of simply receiving information from the teacher, students actively explore, question, and interpret new ideas. This approach helps learners develop a deeper understanding of concepts and enhances their ability to apply knowledge in different contexts.

Objectives of the Study

- To understand the concept and principles of constructivist pedagogy.
- To examine the relationship between constructivist pedagogy and meaningful learning.
- To analyse the roles of teachers and learners in a constructivist classroom.
- To identify the advantages and challenges of implementing constructivist pedagogy in education.

Research Methodology

This research paper is based on **qualitative and descriptive methodology**. It relies on secondary sources such as books, research articles, journals, and educational reports related to constructivist pedagogy and meaningful learning. The collected information has been analysed and interpreted to understand how constructivist teaching practices contribute to meaningful learning outcomes.

Theoretical Foundations of Constructivism

Constructivism is a learning theory which states that knowledge is actively constructed by learners rather than passively received. It emphasizes the role of prior knowledge, experience, and social interaction in learning. Important scholars who contributed to constructivist theory include: Jean Piaget – emphasized cognitive constructivism and the role of mental development in learning. Lev Vygotsky – highlighted the importance of social interaction and collaborative learning. Jerome Bruner – proposed discovery learning and the spiral curriculum.

According to constructivist theory, learning occurs when learners integrate new information with their existing knowledge structures. This process helps students develop meaningful understanding rather than superficial memorization.

Principles of Constructivist Pedagogy-Active Learning: Students learn effectively when they actively participate in the learning process rather than passively listening to lectures.

Prior Knowledge: Learners interpret new information based on their previous experiences and understanding.

Social Interaction: Learning is enhanced through discussion, collaboration, and group activities.

Problem-Based Learning: Real-life problems and inquiry-based tasks help students apply knowledge meaningfully.

Reflection: Reflection allows learners to analyse their experiences and deepen their understanding.

Characteristics of a Constructivist Classroom-A constructivist classroom is characterized by a learner-centered environment where students actively participate in the learning process. In such a classroom, learning is based on exploration, discussion, and collaboration rather than rote memorization. Students are encouraged to ask questions, share ideas, and engage in problem-solving activities that help them construct their own understanding of concepts. The teacher acts as a facilitator who guides and supports learners rather than simply delivering information. Learning activities are often connected to real-life situations so that students can relate new knowledge to their prior experiences. Group work, interactive tasks, and inquiry-based learning are commonly used to promote critical thinking and creativity. Assessment in a constructivist classroom focuses on understanding, application, and reflection rather than only on memorizing facts.

Role of the Teacher in Constructivist Pedagogy

In constructivist pedagogy, the role of the teacher shifts from being a traditional instructor to a facilitator of learning. Instead of simply transmitting knowledge, the teacher creates a supportive learning environment where students can actively explore ideas, ask questions, and construct their own understanding. The teacher designs meaningful learning experiences, encourages inquiry, and guides students in connecting new knowledge with their prior experiences. By promoting discussion, collaboration, and problem-solving activities, the teacher helps learners develop critical thinking skills. The teacher also observes students' learning processes, provides feedback, and supports them when they face difficulties. In this approach, the teacher acts as a mentor, motivator, and guide who encourages independent learning and helps students become active participants in the learning process.

Role of Learners in Constructivist Pedagogy

In constructivist pedagogy, learners play an active and central role in the learning process. Instead of passively receiving information from the teacher, learners actively construct their own knowledge through exploration, experience, and interaction with others. They participate in discussions, ask questions, and share their ideas and perspectives. Learners connect new information with their prior knowledge and experiences, which helps them develop deeper understanding of concepts. They also engage in collaborative learning activities, problem-solving tasks, and critical thinking exercises that promote meaningful learning. Through reflection and inquiry, learners take responsibility for their own learning and become independent thinkers who are capable of applying knowledge in real-life situations.

Constructivist Pedagogy and Meaningful Learning

Constructivist pedagogy plays an important role in promoting meaningful learning by encouraging students to actively participate in the learning process. In this

approach, learners do not simply memorize information; instead, they construct knowledge by connecting new ideas with their prior experiences and understanding. Through activities such as discussion, inquiry, problem-solving, and collaboration, students develop deeper conceptual understanding. Constructivist pedagogy also emphasizes learning through real-life situations, which helps learners see the relevance of knowledge in practical contexts. By engaging students in reflection and critical thinking, this approach enables them to retain knowledge for a longer period and apply it effectively in different situations. Therefore, constructivist pedagogy supports meaningful learning by making the learning process active, interactive, and student-cantered.

Advantages of Constructivist Pedagogy

Constructivist pedagogy offers several advantages in the teaching–learning process by making learning more active, engaging, and meaningful. It encourages students to participate actively in their learning rather than passively receiving information from the teacher. Through discussion, inquiry, and problem-solving activities, learners develop critical thinking, creativity, and analytical skills. This approach also promotes deeper understanding of concepts because students connect new knowledge with their prior experiences. Constructivist pedagogy supports collaborative learning, where students work together, share ideas, and learn from one another. It also helps learners become independent and responsible for their own learning, which encourages lifelong learning habits. Furthermore, by relating learning to real-life situations, constructivist pedagogy makes education more relevant and practical for students.

Challenges in Implementing Constructivist Pedagogy

Large class sizes may make interactive learning difficult. Teachers require special training to adopt constructivist methods. It may require more time and resources compared to traditional teaching methods. Assessment systems often emphasize memorization rather than conceptual understanding.

Conclusion

Constructivist pedagogy provides a powerful framework for meaningful learning in modern education. By focusing on active participation, inquiry, and collaboration, it enables learners to construct knowledge based on their experiences and understanding. The approach transforms the traditional roles of teachers and learners, making the learning process more interactive and student-cantered. Although certain challenges exist in its implementation, constructivist pedagogy plays a significant role in developing critical thinking, creativity, and lifelong learning skills among students. Therefore, integrating constructivist practices in classrooms can greatly enhance the quality and effectiveness of education.

******

References

1. Bruner, J. (1966). *Toward a Theory of Instruction.* Harvard University Press.
2. Piaget, J. (1972). *The Psychology of the Child.* Basic Books.
3. Vygotsky, L. S. (1978). *Mind in Society: The Development of Higher Psychological Processes.* Harvard University Press.
4. Fosnot, C. T. (2005). *Constructivism: Theory, Perspectives and Practice.* Teachers College Press.
5. Brooks, J. G., & Brooks, M. G. (1999). *In Search of Understanding: The Case for Constructivist Classrooms.* ASCD.

गांधीवादी राजनीतिक चिंतन और भारतीय अर्थव्यवस्था

पूरन मल मीना
(एम.ए., एम.फिल..)
एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष- राजनीति विज्ञान विभाग
राजकीय महाविद्यालय, राजगढ़, अलवर (राज.) पिन कोड नं- 301408
मो.न. 9461669111 Mail id - pmmeena111@gmail.com

अनिल कुमार शर्मा
सह आचार्य- राजनीति विज्ञान
राजकीय महाविद्यालय राजगढ अलवर (राजस्थान

सारांश-महात्मा गांधी का राजनीतिक चिंतन केवल स्वराज की राजनीतिक लड़ाई तक सीमित नहीं था; यह एक समग्र दृष्टि था जिसमें अर्थव्यवस्था नैतिकता, मानव कल्याण और पर्यावरणीय संतुलन के साथ गहराई से जुड़ी हुई थी। गांधीवादी चिंतन स्वदेशी, स्वराज, न्यास सिद्धांत (ट्रस्टीशिप), सरवोदय और विकेन्द्रीकृत ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर आधारित है, जो बड़े पैमाने की औद्योगीकरण, शोषण और उपभोक्तावाद की आलोचना करता है। यह शोध पत्र गांधी के आर्थिक विचारों के मूल स्रोतों—हिंद स्वराज, युवा इंडिया और हरिजन लेखों—का विश्लेषण करते हुए भारतीय अर्थव्यवस्था पर उनके प्रभाव का मूल्यांकन करता है। स्वतंत्रता के बाद नेहरूवादी मिश्रित अर्थव्यवस्था में गांधीवादी तत्वों (जैसे लघु उद्योग और ग्रामीण विकास) की आंशिक स्वीकृति हुई, लेकिन 1991 के उदारीकरण ने इसे पीछे धकेल दिया। फिर भी, आज आत्मनिर्भर भारत अभियान, सतत विकास लक्ष्य और बढ़ती असमानता के संदर्भ में गांधीवादी मॉडल की प्रासंगिकता पुनः उभर रही है। यह पत्र तर्क देता है कि गांधी की अर्थव्यवस्था न तो पूंजीवाद की नकल है और न ही मार्क्सवाद की; यह एक तीसरा रास्ता है जो नैतिक आत्म-नियमन और स्थानीय स्वावलंबन पर जोर देता है। शोध के उद्देश्यों के अनुरूप, यह विश्लेषण ऐतिहासिक, तुलनात्मक और समसामयिक आयामों को शामिल करता है। निष्कर्ष यह है कि पूर्ण गांधीवादी अर्थव्यवस्था को लागू करना चुनौतीपूर्ण है, लेकिन इसके चुनिंदा सिद्धांत—जैसे स्थानीय उत्पादन और न्यास—आज की वैश्विक संकट (जलवायु परिवर्तन, बेरोजगारी और असमानता) के समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। यह मौलिक शोध है जो पुराने स्रोतों का नया संश्लेषण प्रस्तुत करता है।

बीज शब्द:- गांधीवाद, स्वदेशी, स्वराज, न्यास सिद्धांत, सरवोदय, विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था, भारतीय अर्थनीति, आत्मनिर्भरता, ग्रामीण विकास।

उद्देश्य-इस शोध पत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. गांधीवादी राजनीतिक चिंतन के आर्थिक आयामों (स्वदेशी, न्यास, सरवोदय आदि) को स्पष्ट करना।
2. स्वतंत्र भारत की अर्थव्यवस्था (1950-1991 और उदारीकरण के बाद) पर गांधीवादी विचारों के प्रभाव का मूल्यांकन करना।
3. समसामयिक भारतीय संदर्भ में इन विचारों की प्रासंगिकता और सीमाओं का विश्लेषण करना।
4. एक संतुलित, नैतिक-आधारित वैकल्पिक आर्थिक मॉडल की संभावना पर चर्चा करना।

1. प्रस्तावना: गांधीवादी चिंतन का आर्थिक आधार-महात्मा गांधी ने राजनीति को नैतिकता से अलग नहीं माना। उनके लिए स्वराज केवल ब्रिटिश शासन से मुक्ति नहीं, बल्कि आत्म-नियंत्रण और सामूहिक कल्याण था। हिंद स्वराज (1909) में उन्होंने आधुनिक सभ्यता की आलोचना की, जिसमें मशीनें, बड़े उद्योग और असीमित उपभोग को मनुष्य के शोषण का साधन बताया। गांधी का मानना था कि अर्थव्यवस्था का उद्देश्य "सबका भला" (सरवोदय) होना चाहिए, न कि कुछ लोगों की समृद्धि।

उनके चिंतन में अर्थव्यवस्था राजनीति का अभिन्न अंग थी। ब्रिटिश शासन ने भारत को कच्चे माल का स्रोत और तैयार माल का बाजार बनाया, जिसके विरुद्ध स्वदेशी आंदोलन खड़ा किया। गांधी ने कहा, "स्वदेशी स्वराज की आत्मा है।" यह न केवल राजनीतिक प्रतिरोध था, बल्कि आर्थिक स्वावलंबन का आह्वान था।

2. प्रमुख गांधीवादी आर्थिक सिद्धांत-गांधीवादी राजनीतिक चिंतन की आर्थिक दृष्टि को समझने के लिए उनके प्रमुख सिद्धांतों का विस्तृत विश्लेषण आवश्यक है। ये सिद्धांत न केवल सैद्धांतिक थे, बल्कि व्यावहारिक प्रयोगों (जैसे साबरमती और सेवाग्राम आश्रम) पर आधारित थे। गांधी ने अर्थव्यवस्था को नैतिकता से अलग नहीं माना; उनके अनुसार, आर्थिक गतिविधियां अहिंसा, सत्य और सामाजिक न्याय पर टिकी होनी चाहिए। निम्नलिखित उप-खंडों में इनका विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है।

2.1 स्वदेशी और खादी- स्वदेशी गांधीवादी अर्थ-चिंतन का मूल आधार था। इसका अर्थ केवल विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार नहीं, बल्कि स्थानीय संसाधनों, कौशल और जरूरतों पर आधारित स्वावलंबी उत्पादन प्रणाली था। 1905 के बंग-भंग आंदोलन से शुरू होकर गांधी ने इसे राष्ट्रीय स्तर पर चरखा और खादी के माध्यम से लोकप्रिय बनाया। चरखा मात्र एक औजार नहीं, बल्कि प्रतीक था—यह आत्म-सम्मान, श्रम की गरिमा और आर्थिक स्वतंत्रता का प्रतिनिधित्व करता था। गांधी ने कहा था, "खादी भारतीय स्वराज की कुंजी है।" खादी और कुटीर उद्योगों ने लाखों ग्रामीणों, विशेषकर महिलाओं और दलितों, को रोजगार प्रदान किया। यह बड़े कारखानों की तुलना में श्रम-निर्यातक (labour-intensive) था, जिससे बेरोजगारी कम होती थी। गांधी ने बड़े उद्योगों की आलोचना करते हुए उन्हें "शोषण का साधन" बताया, क्योंकि वे मशीनों के जरिए मानव श्रम को विस्थापित करते हैं और पूंजी के केंद्र में संकेंद्रण को बढ़ावा देते हैं। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने भारत के हस्तशिल्पों को नष्ट कर दिया था; स्वदेशी ने उसकी भरपाई करने का प्रयास किया।

व्यावहारिक रूप से, स्वदेशी ने 1920-22 के असहयोग आंदोलन और 1930 के सविनय अवज्ञा आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आर्थिक दृष्टि से यह "लोकल फॉर लोकल" का प्रारंभिक रूप था, जो आज के आत्मनिर्भर भारत अभियान से जुड़ता है। गांधी का मानना था कि स्वदेशी से न केवल आर्थिक निर्भरता समाप्त होगी, बल्कि सांस्कृतिक और नैतिक पुनरुत्थान भी होगा। हालांकि, आलोचकों का कहना है कि यह आधुनिक तकनीकी प्रगति से मेल नहीं खाता, लेकिन

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 02 अंक– 05 जनवरी - मार्च - 2024 Impact factor– 3

गांधी बड़े पैमाने की मशीनरी के पूर्ण बहिष्कार के पक्ष में नहीं थे—वे केवल उन्हीं मशीनों का समर्थन करते थे जो मानव की सेवा करती हों, न कि उसे गुलाम बनाती हों।

2.2 न्यास सिद्धांत- न्यास सिद्धांत गांधी का सबसे मौलिक और मौलिक योगदान माना जाता है, जो पूंजीवाद और साम्यवाद के बीच तीसरा रास्ता प्रस्तुत करता है। 1930 के दशक में विकसित यह सिद्धांत कहता है कि अमीर व्यक्ति या पूंजीपति अपनी संपत्ति को ईश्वर या समाज का न्यास (ट्रस्ट) मानें। वे स्वामी नहीं, बल्कि संरक्षक (ट्रस्टी) हैं और संपत्ति का उपयोग समाज के अंतिम व्यक्ति (दलित, गरीब, किसान) के कल्याण के लिए करें। गांधी ने 1942 में प्रो. एम.एल. दांतवाला के ड्राफ्ट में संशोधन कर न्यास फॉर्मूला तैयार किया, जिसमें संपत्ति का सीमित स्वामित्व, उचित लाभ और सामाजिक उत्तरदायित्व पर जोर था।

यह सिद्धांत *हरिजन* और *युवा इंडिया* के लेखों में विस्तार से आया है। गांधी ने लिखा, "धन का उपयोग धनी व्यक्ति द्वारा समाज के हित में होना चाहिए, न कि व्यक्तिगत भोग के लिए।" यह मार्क्सवादी राष्ट्रीयकरण से अलग था क्योंकि इसमें हिंसा या जबरन छीनने की जगह नैतिक परिवर्तन और स्वैच्छिक त्याग था। पूंजीवाद की तुलना में यह शोषण को रोकता था, क्योंकि ट्रस्टी को केवल "उचित" आय मिलती। व्यावहारिक चुनौतियां अवश्य थीं—कई पूंजीपतियों ने इसे आदर्शवादी माना—फिर भी यह कॉर्पोरेट सोशल रिस्पॉन्सिबिलिटी (CSR) और आधुनिक फिलैंथ्रोपी का पूर्व रूप है।

न्यास सिद्धांत राजनीतिक चिंतन से जुड़ा था, क्योंकि गांधी के अनुसार आर्थिक असमानता हिंसा को जन्म देती है। यह अहिंसा का आर्थिक आयाम था। आज की बढ़ती असमानता (जैसे ओक्सफैम रिपोर्ट्स में उल्लिखित) के संदर्भ में यह अत्यंत प्रासंगिक है। गांधी इसे कानूनी रूप देने के पक्षधर थे, लेकिन मुख्य बल नैतिक शिक्षा पर था।

2.3 सर्वोदय और विकेन्द्रीकरण - सर्वोदय ("सबका उत्थान") गांधीवादी अर्थव्यवस्था का नैतिक शिखर था। जॉन रस्किन की पुस्तक *Unto This Last* से प्रेरित यह अवधारणा कहती है कि विकास का लाभ अंतिम व्यक्ति तक पहुंचे, न कि केवल औसत या कुल GDP में वृद्धि हो। गांवों को अर्थव्यवस्था का केंद्र बनाना था, जहां कृषि मुख्य हो, लघु उद्योग सहायक हों और सहकारिता (cooperatives) सामूहिक प्रयास सुनिश्चित करे।

विकेंद्रीकरण का अर्थ था शक्ति, संसाधन और निर्णय-प्रक्रिया का विकेंद्रीकरण—बड़े शहरों और केंद्रीकृत उद्योगों से बचना। गांधी ने "ग्राम स्वराज" की कल्पना की, जिसमें प्रत्येक गांव एक स्वावलंबी गणराज्य हो। सेवाग्राम प्रयोग और वर्धा शिक्षा योजना इसके उदाहरण थे। यहां कृषि, पशुपालन, खादी, लघु उद्योग और बुनियादी शिक्षा एकीकृत रूप से चलते थे। बड़े उद्योग केवल राष्ट्रीय आवश्यकताओं (रेल, इस्पात) तक सीमित रहते।

सर्वोदय ने भूदान और ग्रामदान आंदोलन को जन्म दिया। यह प्राचीन भारतीय ग्राम-व्यवस्था (पंचायत) और ईशावास्य उपनिषद ("ईशावास्यमिदं सर्वम्"—सब कुछ ईश्वर का है, अतः साझा उपयोग) से प्रेरित था। टॉलस्टॉय और रस्किन ने भी प्रभाव डाला, लेकिन गांधी ने इन्हें भारतीय संदर्भ में ढाला।

आर्थिक दृष्टि से यह मॉडल पर्यावरणीय संतुलन, कम ऊर्जा खपत और सामाजिक सद्भाव सुनिश्चित करता था। आधुनिक चुनौतियों जैसे शहरी पलायन, जलवायु परिवर्तन और किसान संकट में सर्वोदय एक विकल्प प्रस्तुत करता है—एमएनआरईजी या पंचायती राज व्यवस्था में इसके कुछ अंश दिखते हैं। ये तीनों सिद्धांत एक-दूसरे से जुड़े हैं: स्वदेशी आत्मनिर्भरता देता है, न्यास न्याय सुनिश्चित करता है और सर्वोदय समग्र कल्याण। गांधी ने इन्हें प्रयोगात्मक बनाया, जो आज भी नीति-निर्माण के लिए प्रेरणा स्रोत हैं।

3. स्वतंत्र भारत में गांधीवादी प्रभाव-स्वतंत्रता के बाद गांधीवादी विचार पूरी तरह लागू नहीं हुए। नेहरू की औद्योगिक नीति ने बड़े उद्योगों को प्राथमिकता दी, लेकिन प्रथम पंचवर्षीय योजनाओं में लघु उद्योग और सामुदायिक विकास कार्यक्रम गांधी की छाप दिखाते थे। जे.सी. कुमारप्पा जैसे शिष्यों ने गांधीवादी योजना तैयार की, जिसमें ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर जोर था।

भूदान आंदोलन (विनोबा भावे) और सर्वोदय आंदोलन ने गांधी के विचारों को जीवित रखा। लेकिन 1991 के आर्थिक सुधारों ने उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण को अपनाया, जिससे असमानता बढ़ी और गांव खाली होने लगे। फिर भी, खादी ग्रामोद्योग आयोग और सहकारी आंदोलन जैसे संस्थान गांधी की विरासत हैं।

4. समसामयिक प्रासंगिकता और चुनौतियां-आज भारत में बेरोजगारी, पर्यावरणीय संकट, किसान आंदोलन और बढ़ती अमीर-गरीब खाई गांधीवादी चिंतन की याद दिलाती है। "आत्मनिर्भर भारत" अभियान स्वदेशी का आधुनिक रूप लगता है—स्थानीय उत्पादन, वोकल फॉर लोकल। सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) में गांधी की "सादा जीवन, उच्च विचार" की गूंज है। कुमारप्पा की "इकोनॉमी ऑफ परमानेंस" आज क्लाइमेट चेंज के दौर में प्रासंगिक है। न्यास सिद्धांत CSR (कॉर्पोरेट सोशल रिस्पॉन्सिबिलिटी) से आगे जाकर नैतिक पूंजीवाद का मॉडल प्रस्तुत करता है।

चुनौतियां:

- वैश्वीकरण के दबाव में स्थानीय अर्थव्यवस्था टिकाना कठिन।
- युवा पीढ़ी की उपभोक्तावादी मानसिकता।

राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी।

फिर भी, डिजिटल युग में "लोकल फॉर लोकल" को टेक-सक्षम बनाकर (जैसे ई-कॉमर्स से कुटीर उद्योग) इसे लागू किया जा सकता है।

निष्कर्ष-गांधीवादी राजनीतिक चिंतन भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए एक नैतिक कंपास है। यह विकास को मात्र GDP नहीं, बल्कि मानव और प्रकृति के संतुलन से जोड़ता है। स्वतंत्र भारत ने इसके कुछ बीज बोए, लेकिन पूर्ण वृक्ष नहीं उगा पाया। आज जब विश्व पूंजीवाद संकट में है, गांधी का तीसरा रास्ता—नैतिक, विकेन्द्रीकृत और स्वावलंबी अर्थव्यवस्था—न केवल प्रासंगिक है, बल्कि आवश्यक भी। भारत को इस दिशा में आगे बढ़ना चाहिए: ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करना, न्यास को कानूनी रूप देना और शिक्षा में गांधीवादी मूल्यों को शामिल करना। तभी "सबका साथ, सबका विकास" सार्थक होगा। यह शोध सुझाव देता है कि नीति-निर्माताओं को गांधी को केवल प्रतीक नहीं, बल्कि व्यावहारिक मार्गदर्शक मानना चाहिए।

****

संदर्भ सूची :-

गांधी, एम.के. (1909). *हिंद स्वराज या भारतीय स्वराज*. नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद।
2.गांधी, एम.के. (1947). *इंडिया ऑफ माय ड्रीम्स*. नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद।
3.गांधी, एम.के. (1960). *ट्रस्टीशिप*. नवजीवन प्रकाशन हाउस, अहमदाबाद।
4.कुमारप्पा, जे.सी. (1951). *गांधीवियन इकोनॉमिक थॉट*. सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी।
5.कुमारप्पा, जे.सी. (1945). *इकोनॉमी ऑफ परमानेंस*. नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद।
6.दास, ए. (1979). *फाउंडेशंस ऑफ गांधीवियन इकोनॉमिक्स*. स्ट. मार्टिन्स प्रेस, न्यूयॉर्क।
7.नारायण, एस. (1970). *रिलेवेंस ऑफ गांधीवियन इकोनॉमिक्स*. नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद।
8.कर्माकर, ए.के. (2023). "हाउ रेलेवेंट इज द गांधीवियन पॉलिटिकल इकोनॉमी फॉर टुडेज इंडिया?" MPRA पेपर नंबर 119582, म्यूनिख।
9.पारीख, बी. (2007). *गांधी: हिज पॉलिटिकल एंड इकोनॉमिक थॉट*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
10.भारत सरकार (2020). *आत्मनिर्भर भारत अभियान दस्तावेज*.
11.राव, वी.के.आर.वी. (1982). "गांधीवियन इकोनॉमिक्स" इन *एसेज इन गांधीवियन इकोनॉमिक्स* (संपा.), दीवान और लुट्ज।
12.शर्मा, एस.के. (2008). "गांधीवियन स्ट्रेटेजीज फॉर डेमोक्रेटिक डिसेंट्रलाइजेशन"। *जर्नल ऑफ इंडियन पॉलिटिकल साइंस*।
13.हरिजन (1939-1942). विभिन्न अंक, गांधी के आर्थिक लेख।
युवा इंडिया (1920-1930). गांधी के स्वदेशी और स्वराज संबंधी लेख।

वर्ष –02 अंक –05 जनवरी -मार्च –2024 ISSN-2993-4648

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh (RESEARCH ARETE JOURNAL)

Dedicated for Research
Shodh Utkarsh

https://shodhutkarsh.com/

अतिथि संपादक -डॉ. रेणु सिन्हा

त्रैमासिक ऑनलाइन पत्रिका - शोध उत्कर्ष